http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

पंचास्तिकाय संग्रह प्रवचन

भाग 1

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

दिगम्बर जैन मन्दिर
इन्दौर
छावड़ाजी की नशीया, गांधीनगर

पञ्चास्तिकाय प्रवचन

प्रथम, द्वितीय व तृतीय भाग

प्रवक्ता:
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

प्रथम संस्करण १०००]   सन् १९७५   लागत [१३) रु०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥५॥

°°°○○°°°

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमें ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

http://sahjanandvarnishastra.org/

पंचास्तिकायप्रवचन १, २, ३, ४, ५, ६ भाग
(प्रथम भाग)

प्रवक्ता–अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥ १ ॥

जिनेन्द्रनमस्कार—जो धर्मपुंज शत इन्द्रोंके द्वारा वंदित हैं अर्थात् भवनवासी देवोंके ४० इन्द्र, व्यन्तर देवोंके ३२ इन्द्र, कल्पवासी देवोंके २४ इन्द्र, ज्योतिषी देवोके दो इन्द्र सूर्य और चन्द्र, मनुष्योंका एक इन्द्र चक्रवर्ती और तिर्यञ्चोंमें एक इन्द्र सिंह ऐसे १०० इन्द्रोंके द्वारा जो वंदित हैं, वंदनीय हैं, जिनका उपदेश तीन लोकका हित करने वाला है जो कि मधुर एवं स्पष्ट है, जिनमें अनन्तानन्त गुणोंका अनन्त विकाश है जो ससारसे निवृत्त हो गए हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार हो।

ग्रन्थवक्तव्यसे धर्मपालनका सम्बन्ध—यह ग्रन्थ पंचास्तिकाय है पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवने इस ग्रन्थकी रचना की है। इसमें जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश इन ५ अस्तिकायोंका स्वरूप मुख्यतासे बताया है और फिर प्रसंग पाकर सक्षेपमें जो अस्तिकाय नहीं है ऐसे कालद्रव्यका भी वर्णन किया है। वस्तुके स्वरूपको बतानेका प्रयोजन है मोह हटे, रागद्वेष दूर हो। उसका साधक है वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान। जो पुरुष वस्तुका यथार्थ ज्ञान करके उपेक्षा करने योग्य परद्रव्योंसे उपेक्षा करते हैं वे विकारभावसे निवृत्त होकर शाश्वत आनन्दका अनुभव करते हैं।

निजको निज परको पर जाननेका लाभ—निजको निज परको पर जाननेसे यह लाभ होता है कि चूंकि पर भिन्न हैं, अहित हैं असार हैं, पर ही हैं, सो उनसे तो उपेक्षा भाव कर लेना चाहिये, और निज जो अन्तस्तत्त्व है उसमें रुचि जगाना चाहिये इससे आत्मामें अनादिसे ही बसा हुआ जो सहज आनन्द है और सहज चैतन्य है उसका प्रकाश होता है। जिसके अपने ज्ञान दर्शनका पूर्ण प्रकाश हुआ है वह पुरुष परमात्मा कहलाता है। वह अनन्तानन्त गुणोंमें विश्राम लिये हुए रहता है। प्रभु सर्वज्ञ, वीतराग व कृतकृत्य हैं तभी हम आपके लिये आदर्श भगवान हैं। भगवान यदि हम आप लोगोंकी भक्तिको निहारकर तारने लग जायें, बातचीत करने लग जायें, तो भगवानका फिर आदर्श न रहेगा फिर तो एक प्रकारके भगवान व्यापारी ही कहलाये। यहांके छोटे मोटे व्यापारी छोटी सीमामें विकल्प करते हैं, भगवान एक सबसे बड़े व्यापारी कहलाने लगे, जो जगतको लोकको रचे, विधि बनाए। प्रभु किसीपर नाराज होकर उसका विनाश करने नहीं आते। प्रभुका स्वरूप है–सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन। प्रभु समस्त ज्ञेयोंके जाननहार हैं, फिर भी आत्मीय आनन्दरसमें लीन रहा करते हैं। यही है प्रभुस्वरूप। यह विकाश हमारा आपका सबका हो सकता है, और ऐसा ही करें सो ही बुद्धिमानी है।

व्यर्थका समागम व्यामोह—यह जगतका समागम प्रथम तो भिन्न है, अहित है, असार है, उसकी आकांक्षा न करो। फिर दूसरी बात यह है कि यह समागम आपके माननेसे आता भी तो नहीं है, आप तो केवल अपना भाव भर बनाते हैं उस भावके बनानेके बाद निमित्त नैमित्तिक योगसे यह सब कार्यपरम्परा चलती रहती है। समागम इष्ट मिले इसमें निमित्त कारण है पुण्य कर्मका उदय। उस पुण्य कर्मका उदय आये तब ही ना, जबकि उसका बंध हो। पुण्यकर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का बंध हो उसका निमित्त कारण है शुभ परिणाम। शुभ परिणामोंका कर्ता यह जीव था। निमित्तपरम्परामें तो उसका कारण भाव बना। पर भाव साक्षात् धनको कमाले, इकट्ठा करले सो नहीं होता। आत्माके भावोका धन आदिक वैभवमें स्पर्श भी नहीं होता। जो पुरुष अपने स्वरूपको सम्हालते हैं वे ऐसे परमात्मत्वका विकास प्राप्त करते हैं।

स्याद्वादपद्धतिसे सम्यक् परिज्ञान—वस्तुस्वरूपका सम्यक् परिज्ञान स्याद्वादपद्धतिसे ही हो सकता है। जैन दर्शनकी सबसे बड़ी विशेषता है वस्तुके स्वरूपका यथार्थ प्रतिपादन। स्वरूपप्रतिपादनकी यथार्थताका कारण है स्याद्वाद का आश्रय लेना। स्याद्वादका अर्थ है अपेक्षावाद। अर्थात् अपेक्षा लगाकर स्वरूपको कहना जैसे एक पुरुषका परिचय दिया जाय तो कहते हैं कि यह अमुकका पिता है, अमुकका पुत्र है, अमुकका मामा है, अमुकका भांजा है. इस एक ही आदमीमें पिता पुत्र आदिक अनेक रिस्ते बताए गए और वह सब बताना अपेक्षा लगाकर हुआ है। यदि कोई अपेक्षाको तो छोड दे और कहे कि यह पिता है, थोड़ी देरमें कहे कि यह पुत्र है तो यह विवादका विषय बन सकता है कदाचित् कोई कहे कि यह पुरुष पिता भी है, पुत्र भी है तो ऐसा कहनेसे बीचमें अपेक्षा आ गयी, मनमें अपेक्षा लगानेसे विवाद मिट गया, पर अपेक्षा तो जरा भी न लगाये या अपेक्षा उस सबकी एक ही लगाए तो विवाद हो जायेगा। जैसे मानो मोहन सोहनका पिता है और यह कहें कि यह सोहनका पिता है और पुत्र भी है, तो विवाद हो गया कि नहीं। जितने धर्म बताये जायें उतनी ही अपेक्षा लगायी जाती हैं तब यथार्थ ज्ञात होता है।

स्याद्वादपद्धतिका संक्षिप्त विवरण— अपेक्षा लगाकर धर्म लगाये तो यह स्याद्वादकी शैलीका सही रूप होता है। जैसे कहें कि यह सोहनका पिता ही है तो बात सही हो गयी। दूसरेका नाम लेकर बता दिया कि उसका पुत्र ही है, बात सही हो गयी। अपेक्षा लगाकर बातको दृढ़तासे कहना उसका नाम स्याद्वाद है। जैसे जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है। कोई यदि कह दे कि जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य भी है तो गलत हो जायेगा। क्योंकि इसका अर्थ यह निकलेगा कि द्रव्यदृष्टिसे नित्य भी है और अनित्य भी है। द्रव्यदृष्टि कहते हैं—पदार्थका जो सहज स्वतः सिद्ध स्वरूप है, जिससे रचा हुआ है उस स्वभावपर दृष्टि देनेको। जैसे दृष्टान्तमें मिट्टीका घड़ा लेलो। यह मोटा दृष्टान्त दिया जा रहा है। दशाकी मोटी दृष्टिसे घड़ेके पर्यायकी दृष्टि करना सो पर्याय दृष्टि है। यह चीज मिट्टीकी दृष्टिसे सदा रहेगी, घड़ेकी दृष्टिसे सदा न रहेगी, पर्याय न रहेगी। यों ही द्रव्यदृष्टिसे जीव सदा रहेगा, पर्यायकी मुख्यताकी दृष्टिका जीव सदा न रहेगा। तब द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य भी है यह कहना गलत है। द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य ही है, यह कहना सही है। और यह जीव पर्यायदृष्टिसे अनित्य ही है यह भी सही है तो अपेक्षा लगाकर स्वरूपको बताना स्याद्वाद है।

स्याद्वादपद्धतिमें विरोधपरिहार स्याद्वादको शैलीमें वस्तुस्वरूपका यथार्थ परिज्ञान होता है यहां यह स्पष्ट ज्ञानमें आया कि यह स्याद्वादसिद्धांत समस्त एकांतवादियोंका विरोध मिटानेमें समर्थ है। एक प्रसिद्ध दृष्टांत है। चार अन्धे किसी हाथीका स्वरूप समझने गये। एक अन्धेके हाथमें सूंढ आयी वह तो सोचता है कि हाथी मूसलकी तरह होता है, एकके हाथमें पैर आये सो वह कहता है कि हाथी खम्भेकी तरह होता है एकके हाथमें पेट आया तो वह सोचता है कि हाथी ढोलकी तरह होता है एकके हाथमें कान आये तो वह कहता है कि हाथी सूपकी तरह होता है। अब वे आपसमें एक दूसरेसे झगड़ने लगे। एक सूझता पुरुष आया, उसने पूछा—तुम क्यों लड़ रहे हो ? उन्होंने बताया कि हाथीके स्वरूपपर यहां विवाद हो रहा है हम लोगोंमें। अच्छा, अपनी अपनी बात बताओ तो सही। सबने अपनी अपनी बात बतायी। तो वह सूझता पुरुष बोलता है कि तुम सब सही कह रहे हो, झगड़ा न करो। हाथीके कान देखो तो उसकी दृष्टिसे सूप जैसा होता है सूंड पकड़ो तो उसकी दृष्टिसे मूसल जैसा होता है, पेट देखो तो उसकी दृष्टिसे ढोल जैसा होता है और पैर पकड़ो तो उसकी दृष्टिसे खम्भे जैसा होता है। अरे तुम्हारी सब बातोंको मिलाकर जो हो सो हाथी है। ऐसे ही जानो स्याद्वादकी पद्धति सब एकान्त धर्मोंका विवाद मिटाने वाली है।

विरुद्ध अभिमतमें भी अविरोधकी दृष्टि -- बौद्ध लोग कहते हैं कि जीव अनित्य ही हैं, वेदान्ती कहते हैं कि जीव अपरिणामी नित्य ही है। उन सबका समाधान जैन दर्शन देता है। दृष्टियां लगाकर वस्तुस्वरूपके प्रतिपादन

http://sahjanandvarnishastra.org/

की विशेषता जैन दर्शनमें है। कैसा यह सर्वपालक दर्शन है।

ज्ञानकी अप्रसिद्धिका कारण—जैनदर्शनमें चरित्रकी आधारशिला सत्य व अहिंसा है जो सारे विश्वको शान्त और सुखी करनेमें समर्थ है। लेकिन, समयका प्रभाव है कि भले पदार्थको भला न देखकर उसकी बुराई ही नजर आती है, और चूंकि इस जैन दर्शनके मानने वाले जो लोग हैं, कषाय तो जैसी सबमें बसी है, प्रायः वैसी उनमें भी बसी है। अन्याय और बेईमानी तो जैसे अन्य जन करते है वैसे ही ये भी करते हैं क्योंकि कषाय पड़ी हुई है। लेकिन जो इस जैन दर्शनको मानते हैं यदि औरोंकी ही तरह बेईमानी दगा आदि खोटा कुछ काम करने लगे तो जैन दर्शनके मानने वालोंकी बदनामी शीघ्र होगी, क्योंकि इनका दर्शन इनका सिद्धांत पवित्र है। इससे जरा भी चलित होनेपर धर्मकी अप्रभावना जल्दी हो जाती है. एक यह भी कारण है जिससे कि यथार्थ दर्शन लोगों को दुर्गम हो गया है।

जैनदर्शनकी वर्तमान अख्यातिके अन्य कारण—दूसरा कारण यह है जैनदर्शनकी अप्रसिद्धिका कि यह जिस उपायपर चलाना चाहता है, जिसपर चलनेके कारण यह जीव सदाके लिए शान्त और आनन्दमय हो जाय वह उपाय मोहमें कठिन हो जाता है प्रत्येक जीवको विषय कषायकी वासना बनी हुई हैं अतः ये ज्ञान ध्यानके नियम कठिन मालूम होते है, इस कठिनाईके कारण भी लोगोंने इस दर्शनका साथ छोड़ दिया है, आदिक अनेक कारण हैं जिससे आज इसकी प्रभावना, मान्यता, प्रसिद्धि इस परिचित दुनियामें कम है किन्तु जैन दर्शन तो वस्तुके स्वरूपको बताता है, जो वस्तुमें धर्म हैं उस ही को जिनेन्द्र देवने बताया है इस कारण नाम जैन धर्म पड़ गया, किन्तु वास्तवमें उसका नाम है वस्तुधर्म। जब वस्तु कभी मिट नहीं सकती, वस्तुधर्म भी कभी मिट नहीं सकता। जैसे कोई पुरुष अपने आपके आत्माको मना करे कि मैं नहीं हूं अरे वही तो मैं हूं मैं आत्मा नहीं हूं ऐसी जानकारी जिसमें हो रही है, ऐसी कल्पना जिसमें उठ रही है वही तो आत्मा है। तो जैसे अपने आपकी मनाई करनेसे अपने आपका अभाव नहीं हो जाता ऐसे ही वस्तुधर्म अथवा जैनदर्शनकी मनाई करनेसे वस्तुधर्म अथवा जैनदर्शन समाप्त नहीं हो जाता। चाहे उसके जानने मानने वाले यहां एक भी न रहें, फिर भी वस्तुधर्म सदा ही चलता रहता है।

यथार्थ ज्ञानका प्रताप—अपेक्षावाद करके जो यह सिद्धांत पद्धति चलती है उस पद्धतिसे वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है और उस ज्ञानके फलमें मोह हटना, कषाय हटना, यह संभव हो जाता है। भला थोड़ी देरको आप अपना ऐसा उपयोग बनालें कि यह भी मैं नहीं हूँ। यह देह जड है मैं आत्मा चेतन हूँ। इस देहको मैं छोड़ दूंगा देह यहां पड़ा रह जायगा। लोग इसे गाड़ देंगे, जला देंगे या पशुपक्षी चीथ लेंगे। यह मैं आत्मा सुरक्षित हूँ, परिपूर्ण हूँ इस देहसे अत्यन्त न्यारा हूँ, और जब देहसे भी न्यारा हूँ तो अन्य वैभव परिजन आदिकसे भी प्रकट न्यारा हूँ, मेरा कोई भी काम किसी परमें नहीं जाता। यह मैं आत्मा अपने आपके भाव बनाया करता हूँ। भावोंके अनुसार ही सुख दुःख आनन्द भोगता हूं। मेरा किसी भी पर पदार्थसे सम्बन्ध नहीं है। मैं किसी परका कर्ता नहीं, भोक्ता नहीं। यों अपने एकत्वकी रचना जीवमें है।

मोहविनाशकी यथार्थज्ञानसाध्यता—इस लोकमें सग्रन्थदशामें वर्तमान आवश्यकताओंके अनुकूल किसीसे राग करना ही पड़ता रहेगा लेकिन मोह करना ही पड़ेगा यह लाजमी नहीं है। भीतरमें ज्ञान जगे और वस्तुकी स्वतन्त्रताका सही पता हो जाय, ये वस्तु अपने स्वरूपसे अपनेमें ही हैं, मैं सत् अपने स्वरूपसे अपनेमें ही हूँ जहां ऐसा भान हो फिर यह विकल्प कैसे हो सकता है कि यह पदार्थ मेरा है। मोह मिट गया समझिये। लोग शान्तिके लिये अधिकाधिक सर्व प्रकारके प्रयत्न कर रहे हैं। एक यह सम्यग्ज्ञानका प्रयत्न नहीं किया गया। यह ज्ञान पुरुषार्थ इतना ऊंचा प्रयत्न है कि इस जीवका कल्याण केवल इस पुरुषार्थपर निर्भर है।

यथार्थ ज्ञान होनेपर ही अज्ञानकी अज्ञानताका प्रकाश—दुनियाकी बढ़ाई दुनियाकी इज्जत अथवा किसी प्रकारकी स्थिति बने, पर ये सारी बातें इस जीवको कुछ भी साथ न देंगी। ये तो सब स्वप्न जैसी बातें है। जैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वप्नमें देखी हुई बातें सच मालूम होती हैं, जगनेपर पता चलता है ओह ! वह तो सब झूठ था, ऐसे ही मोहके स्वप्नमें सारी बातें यहां सही मालूम हो रही हैं यह मेरी स्त्री है, यह मेरा वैभव है ये मेरे परिजन हैं, पर जब ज्ञान जगता है तो ये सारी बातें झूठ मालूम पड़ने लगती हैं। अज्ञान अवस्थामें यह मानता था कि यह मेरा वैभव है, ये मेरे परिजन हैं इत्यादि, पर जब ज्ञान जगा, अज्ञान निद्राका भंग हुआ तो वस्तुके स्वरूपका यथार्थ परिचय हो जाता है। ओह ! यह मैं अनादि कालसे ऐसी भूल ही भूल करता चला आया। यह सब झूठ है। तो सम्यग्ज्ञानमें यह चमत्कार है कि मोहको मिटा दे। मोह न रहे तो समझो कि हम धर्मपालन कर रहे हैं।

वस्तुस्वरूपके यथार्थ प्रतिपादनका ध्येय— इस ग्रंथके रचयिता पूज्य श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य देवने आत्मपवित्रता व जीवलोकपर करुणाके ध्येयसे ऐसे ग्रंथको रचा है अत: इस ग्रथमें पदार्थोंके स्वरूपका व्याख्यान किया गया है क्योंकि समस्त दुखोंके दूर होनेके उपायमें यह सर्वप्रथम आवश्यक है कि हम पदार्थोंका स्वरूप ठीक-ठीक जानलें। जितने भी क्लेश हैं वे सब मोहके हैं। मोहका अर्थ है एक पदार्थका दूसरे पदार्थसे सम्बन्ध मानना। सबन्ध माननेकी कल्पना ही तब मिट सकती है जब यह ध्यान आ जाय कि एक पदार्थका दूसरे पदार्थसे कोई सम्बन्ध नहीं है और वास्तवमें प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वरूपमें है इस कारण किसीका किसी अन्यसे सम्बन्ध है ही नहीं। इस बातका परिज्ञान हो तो मोह मिटे। मोह मिटे तो क्लेश मिटे। इस कारण इस ग्रंथमें पदार्थोंकी व्याख्या की जावेगी।

सम्यक व्याख्यानमें निश्चय व व्यवहारका प्रवेश—यह व्याख्या दो नयके आधीन रहेगी। निश्चयनय और व्यवहारनय, क्योंकि दोनों नयोंके आधारसे किया हुआ व्याख्यान ही सम्यग्ज्ञानकी निर्मल ज्योतिको विकसित करने में समर्थ है। जैसे इस देहमें विराजमान भी आत्माको यह आत्मा है, यों केवल आत्माको ही निरखना सो तो निश्चय का काम है और देहका आत्माका सम्बन्ध देखना व्यवहारका काम है। अच्छा यह बताओ कि यह मेरा आत्मा देहके बंधनमें है या नहीं। अब इसका उत्तर जाननेके लिए दोनों नयोंका आश्रय करना होगा। यदि हम निश्चय करके एकान्त करके यह जानलें कि आत्मामें आत्मा है, आत्मा देहमें नहीं है यद्यपि यह बात सही है आत्मा अपने स्वरूपमें है देहमें नहीं है फिर भी एकान्त मान लिया जाये कि किसी भी प्रकार इस आत्माका देहसे सम्बन्ध नहीं है तो यह बात सत्य न होगी, क्योंकि यह आत्मा देहमें बंधा है, देहसे बाहर कहीं जा नहीं पा रहा है। देहको छोड़कर आगे भी जायगा तो किसी देहमें बंधेगा और सुख दु:ख कल्पना जाल जितने भी क्लेश हैं वे सब इस देहके सम्बन्धसे हैं, तो देहके बधनसे कैसे मुक्त जाय। अथवा जब यही मान लिया पहिलेसे ही सर्वथा कि मैं देहमे सर्वथा ही न्यारा हूँ तो अब मोक्षकी क्या अटकी है ? जब यह बन्धनमें ही नहीं है तो मोक्ष किसका कराना है और मोक्षमार्ग भी क्या हुआ ? इस कारणमात्र व्यवहारसे या मात्र निश्चयके आश्रयसे किया हुआ व्याख्यान सम्यग्ज्ञानका निर्मल प्रकाश नहीं फैला सकता है। केवल व्यवहारनयका आश्रय करके इस सम्बन्धमें यह जाना जायगा कि यह आत्मा देहमें बधा है. देहमें बद्ध है, और साक्षात् करके यह मान लिया जाय कि आत्मा देहमें फंसा ही है इसके विपरीत, जैसा कि आत्मा स्वतन्त्र है अपने स्वरूपमें है, न माना जाय तो इस परिचयमे भी मुक्तिका मार्ग नहीं मिल सकता है। यह मैं आत्मा तो देहसे बंधा हूं. देहके परतन्त्र हूँ देह जो कराये सो करना पड़ता है तो इस परतंत्रताके भावमें मुक्तिका उत्साह कहां रहा। जिसे मुक्त करना है, जब तक उसकी असल्यित न जान ली जाय, उसका एकत्व न परिचयमें आये तो मुक्ति कैसे मिल सकती है। तो इस ग्रंथमें सम्यग्ज्ञानके निर्मल प्रकाशको उत्पन्न करने वाला व्याख्यान दो नयोंके आश्रयसे किया जायगा।

समयका स्वरूप— पदार्थका नाम समय है। समयके मायने समस्त पदार्थ। लोकरूढ़िसे समयका अर्थ काल कहा गया है, पर समयका शब्दार्थ क्या है। सम् अय। सम् उपसर्ग है, अय धातु है। सम एकत्वेन अयते गच्छति परिणमते इति समय:। जो अपने आपमें अपने एकत्वरूपसे परिणमा करे उसे समय कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपना अपना भिन्न भिन्न अस्तिकाय लिये हुए है, और सभी पदार्थ केवल अपनेमें अपना परिणमन करते हैं। जैसे मानों दो भाइयोंमें बड़ा स्नेह है तो वहां यह नहीं हो सकता कि किसी एक भाईका स्नेह दूसरे भाईमें पहुँच गया हो। वे दोनों

Version 1

http://sahjananadvarnishastra.org/

अपनी अपनी जगहमें रहकर अपने अपने ही स्वरूपमें बसकर कल्पना जगाकर अपनेमें स्नेह परिणमन कर रहे हैं। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थमें अपना परिणमन नहीं करता है प्रत्येक पदार्थ अपने ही एक स्वरूपमें परिणमा करता है, अतएव पदार्थका नाम समय है।

शब्दभेदकी विलक्षणता—भैया ! जितने शब्द होते हैं उतने ही उसमें अर्थ हैं। भले ही अनेक शब्द एक ही पदार्थके वाचक हों लेकिन शब्द भेद जितने हैं उतनी ही विशेषताओंसे पदार्थको देखा जाता है। जैसे मनुष्य, मानव, जन अनेक नाम हैं एक आदमीके वाचक, पर जो कम दिमागके हैं उनको मनुष्य न कहेंगे। मनुष्य उसे कहेंगे जो उत्कृष्ट मन वाला हो। जो मनसे बड़ी बड़ी समस्याएँ हल कर सके उसका नाम है मनुष्य। मानव मनुकी संतानको कहते। एक साधारण बात आयी है कि पूर्वकालमें जो १४ मनु हुए हैं उनके बीचमें जो थे, उनकी परम्परामे हम आप है। जन कहो इसका अर्थ इतना ही है जो जन्मे पैदा हो चाहे धनी हो, गरीब हो, मूर्ख हो, सब जन कहलाते हैं। एक ही आदमीके वाचक अनेक शब्द हैं, पर वे अपना भिन्न भिन्न अर्थ रखते हैं। ऐसे ही पदार्थके वाचक अनेक शब्द हैं पदार्थ द्रव्य, वस्तु, समय, सत्, जितने भी नाम हैं उन सब नामोंका जुदा-जुदा प्रकाश मिलता है। पदार्थका अर्थ इतना ही है जो पद है उसका वाच्य, वह है पदार्थ। वस्तुका अर्थ है जिसमें गुण बसे हों अथवा जिसमें अर्थक्रिया होती हो। जैसे गाय वस्तु है, गायसे दूध मिलता है, अर्थक्रिया होती है, और गाय जाति वस्तु नहीं है। वह अनेक वस्तुभूत गायोंके समुदायमें कल्पना किया हुआ शब्द है। जातिसे काम नहीं निकलता। काम निकलता है व्यक्तिसे, वस्तुसे। जिसमें अर्थक्रिया हो उसे वस्तु कहते है। द्रव्यका अर्थ है जो भूत कालमें अपनी पर्यायोंको प्राप्त करता रहे, आगे करता रहेगा, वर्तमानमें पर्यायोंको प्राप्त कर रहा है उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य शब्द से एक त्रैकालिक पर्यायों रूप सत् है यह विशेषता ज्ञात हुई। यहाँ समय शब्द कहा जा रहा है। इसकी यह विशेषता है कि यह शब्द बतलाता है कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें रहता हुआ अपने में ही परिणमा करता है किसी दूसरेमें नहीं।

कल्याणमें सम्यग्ज्ञानका नेतृत्व—भव्य जीवोंका उत्कृष्ट होनहार सम्यग्ज्ञानमें है। सब कुछ मिल जाय वैभव धन सम्पदा परिवार इष्टजन यश और एक आत्मामें सच्चा ज्ञान न जगे तो उसका सब कुछ पाना व्यर्थ है। यह कितने दिनोंका मौज है। फिर वही संसारका भटकना, अब भी वही भटकना। शान्ति न उसे इस समय है न अगले समयमें है। कोई बालक युवक पुरुष अच्छे काममें रहा करे, भगवानकी भक्तिकी ओर ध्यान रहे, साधुसेवामें चित्त रहे, परोपकार आदिकमें भावना बनी रहे, धर्मकार्यमें उत्साह रहे तो ऐसा जो उसका सत् आचरणकी ओर झुकना है यह झुकाव करोड़ों और अरबोंकी सम्पत्तिसे बढ़कर भी सम्पदा है। कोई बहुत बड़ा सम्पन्न हो और उसका झुकाव व्यसनोंकी ओर हो तो उसका जीवन चिन्तामग्न रहा करता है। व्यसनोंमें पर जीवोंसे सम्बंध जोड़ना पड़ता है और पर जीव अपने आधीन हैं नहीं, वह अपनी कषायके अनुसार अपना परिणमन करता है तब यहाँ मनके अनुकूल बात न होने पर व्यग्रता रहा करती है। अच्छे विचार बनाना, अच्छी ओर झुकाव रहना यह बहुत बड़ा वैभव है। वैभवका फल लोग शान्ति ही तो चाहते हैं, पर शान्ति ज्ञानके अनुसार होती है। आनन्दका सम्बंध धनसे नहीं है धन विशेष हो तो आनन्द मिले ऐसा नियम नहीं है, किन्तु आनन्द ज्ञानके ही आश्रित है। हम जैसी कल्पना करें, ज्ञान बनाएँ उस आधार पर सुख दुःख अथवा आनन्द होता है। समय शब्द इस बातका प्रकाश देता है कि तुम समस्त पदार्थोंको स्वतंत्र निरखो। ये सभी पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमें एकत्वमें रहा करते है। ऐसे इस समयकी व्याख्या इस ग्रन्थमें की जायगी जिससे मोह दूर हो परद्रव्योंसे उपेक्षा हो, ज्ञानमात्र निज अन्तस्तत्त्वका आलम्बन हो।

ग्रन्थके प्रथम अधिकारमें—इस ग्रन्थमें तीन अधिकार किए जायेंगे। प्रथम अधिकारमें ५ अस्तिकायों अथवा ६ द्रव्योंके रूपसे मूल पदार्थोंका वर्णन चलेगा। मोही जन मूल पदार्थोंसे अपरिचित रहते हैं और जो परिणमन है साफ है उससे यों परिचित रहते हैं कि यही सब कुछ है। जिसे मूल बातका परिचय हो उसके विवाद और व्यामोह नहीं रहता। जैसे लोक और समाज पद्धतिमें ही इस बातको देखो कोई सा भी विवाद या झगड़ेका साधन हो, व्यवस्था

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रबंध, समारोह आदिका साधन हो और उस प्रसंगमें मूल बातका ठीक निर्णय रहे तो विवाद नहीं हो सकता। जैसे हम आप सब लोग मिलकर एक धर्मपरम्परा बना रहे, यदि यह भान रहे कि हम लोग तो तीर्थंकर भगवानके एक छोटे छोटे मुनीम लोग हैं, क्लर्क लोग हैं हम कोई अधिकारी नहीं हैं, जैसे कि कुछ कमेटीके रूपमें अधिकारीके रूपमें और उसी प्रसंगमें हठ बन जाती है, अपने विजयके थापनेकी जिद्द हो जाती है, सबकी बात टालकर अपनी ही बात रखनेकी मनमें आती है। ये सब क्यों आते हैं ? मूल बातको भूल गए। अरे काम तो इतना ही है कि जिस प्रकार हो वस्तु-स्वरूपके यथार्थ प्रतिपादन करनेवाले इस जैन शासनकी लोकमें ज्योति आये, लोग समझें, हमारा कल्याण तत्त्वज्ञानमें है, इसके ही लिये तो हम आपने यह परम्परा बनायी है।

अवैयक्तिक कार्यमें कार्यकी प्रधानता - हम आपका कोई महत्त्व है क्या इस पर्यायके रूपसे ? जैसे कोई सरकारी काम किया जाता है तो उसमें काम करने वाले अफसर लोग क्लर्क लोग सबको अपनी करतूतकी हठ नहीं होती है कि मैंने कहा इसलिये ऐसा होगा। यदि कोई हठ करे तो वह उस कार्यका कर्ता नहीं है। वह तो यह जानता है कि मैं अलगसे कुछ चीज नहीं हूं, सरकार है सरकारका काम है। मुझ जैसे अनेकों हैं काम चलाना है। मेरा निजी कुछ नहीं है। हम तो सरकारके भलेका कार्य कर रहे हैं ऐसी बात उनके हृदयमें जागती है। ऐसे ही हम आप सोचें कि हम आपका अलगसे इस मामलेमें कोई अस्तित्व नहीं है। जब णमोकार मंत्रमे भी तीर्थंकरोंका नाम नहीं है जिनकी हम आराधना करते हैं उनके व्यक्तित्व का भी जब कोई स्थान नहीं है और हम और आप जरा जरासी बातों में अपने व्यक्तित्वकी हठ पकड़ जायें तो समझिये कि कितना पदसे विमुख चल रहे हैं। मूल तत्त्वका बोध न होनेसे अनेक विसम्वाद हो जाते हैं। इस ग्रन्थके प्रथम अधिकारमें ५ अस्तिकाय अथवा ६ द्रव्योंके रूपसे मूल पदार्थोंका वर्णन किया जायगा।

ग्रन्थके द्वितीय व तृतीय अधिकारमें —जब मूल पदार्थ विदित हो जायगा यथार्थतया, जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ प्रकारके द्रव्य हैं। इनमें जीव तो जीव है और शेष अजीव है तब दूसरे अधिकारमें जीव और अजीव इन दोनों पदार्थोंके पर्यायरूपसे ९ पदार्थोंका वर्णन चलेगा। सप्ततत्त्व अथवा ९ पदार्थ। इनके विशद बोध से मोक्षका मार्ग प्राप्त होता है। जब ६ तत्त्व ९ पदार्थोंकी व्याख्या विदित हो गयी तो उस मार्गपर चलेंगे जिससे यह उत्कृष्ट मोक्षका लाभ हो सके। मोक्षमार्गके प्रयोजन भूत ७ तत्त्वोंका परिज्ञान करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चरित्ररूप आत्मपरिणमनके मार्गसे यह कल्याणमय मोक्ष प्राप्त होगा। उसकी ओर प्रतिपादित समस्त विषयोंकी चूलिकाओंमे यह वर्णन चलेगा।

मूल उपदेष्टाकी लोकोत्तरता— अपूर्व कल्याणकारी महान वक्तव्यको प्रारम्भ करनेसे पहिले कुन्दकुन्दाचार्य देव मंगलाचरणमें कह रहे हैं कि शत इन्द्रोंसे वंदनीक और तीन लोकका हित करने वाले, मधुर स्पष्ट जिनका उपदेश है तथा जो अनन्त गुणोंके पुंज हैं, जिन्होंने इस संसारको जीता है उन जिनेन्द्र भगवानको मैं नमस्कार करता हूं। आज भी जितना यह परमागम है इसका मूल स्रोत जिनेन्द्र देव हैं। पाणिनीय व्याकरणमें सबसे पहिले यह बताया है कि इस व्याख्याकी रचना और उद्भवके मूल ये १४ सूत्र है अइउण् ऋलृक् आदि। ये १४ सूत्र महादेवके डमरूसे निकले ऐसा उनका कहना है उससे यह बात प्रकट हुई है कि कोई मनुष्य अपने मुखसे बात कहे और उससे पहले कोई स्रोत न हो तो मुखसे कही हुई बात प्रामाणिक नहीं होती। कोई प्राकृतिक विलक्षण प्रामाणिक ढंगसे बात हो, फिर उसके आधारसे मुखसे कितने ही बार उसको लोग बोलें, ठीक वह सब प्रामाणिक हैं। १४ सूत्रोंको महेश्वरके डमरूसे निकला बताया गया है। अब जरा परमागमकी ओर दृष्टि दो जिससे ये समस्त निष्पक्ष वीतराग मार्गका प्रकाश करने वाला जो कुछ शास्त्रका समूह है इसका मूलमें आनेका स्रोत क्या था ? तो वह है जिनेन्द्र देवकी दिव्य ध्वनि। ये जिनेन्द्र देव वीतराग, इन्द्रवन्द्य, अनन्तज्ञानी व हितोपदेशी हैं।

उपदेशकी प्रामाणिकता—कोई पुरुष यों ही बोलकर उपदेश शुरू करे और उससे पहिले उपदेशका और

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई विलक्षण स्रोत न हो तो उसमें प्रामाणिकता नहीं आती। जिनेन्द्रदेव चार घातिया कर्मोंसे रहित वीतराग निष्कषाय केवल ज्ञानसे सर्व लोकालोकको जाननेवाले हैं। साथ ही उन्होंने साधु अवस्थामें या इससे पहिले जो संसारके प्राणियोंके उद्धारकी भावना की थी उससे जो पुण्यबंध हुआ था उसकी प्रेरणासे और भव्य जीवोंके सौभाग्यसे जिनेन्द्र देवके सर्व अंगोंसे एक ऐसी विशिष्ट ध्वनि निकलती है कि उस ध्वनिको झेलनेवाले सर्वोत्कृष्ट लोकके ज्ञानी गणधरदेव ही झेलते हैं, और उस परम्परासे चला आया हुआ जो यह उपदेश है यह निर्बाध रहता है। इसी कारण मंगलाचरणमें ऐसे उपदेष्टा जिनेन्द्रदेवको प्रथम नमस्कार किया है और चार विशेषण देकर उनकी प्रामाणिकता जाहिर की है शत इन्द्रों द्वारा वंदनीक भगवान जिनेन्द्रदेवका उपदेश हितकारी है। उनमें अनन्त गुण हैं और उन्होने संसारपर विजय प्राप्त कर ली है ऐसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो।

अनादिनियोग—अनादिसे चले आ रहे शत इन्द्रों द्वारा वन्दनीक, अनादिसे चले आरहे जिनेन्द्रदेवको हमारा शत शत नमस्कार हो। इस लोकमें धर्म और अधर्म सभी प्रकारका प्रवर्तन अनादि कालसे चला आ रहा है। यह संसारी जीव जैसे मोह मद आदि कलुषित आशयोंसे परिणमते चले आ रहे है ऐसे ही धर्मार्माजन धार्मिकमार्गके नेता ये भी अनादि कालसे चले आ रहे हैं. संसार अनादि कालसे चला आ रहा है। तीर्थंकर प्रभु भी अनादि कालसे होते चले आ रहे हैं, और उन तीर्थंकर भगवंतोंका विनय करने वाले इन्द्रादिक देव भी अनादिसे ही इनकी पूजा करते चले आ रहे है। वस्तुधर्म जैनधर्म अथवा आत्मधर्म कहो, वह भी अनादि कालसे चला आ रहा है।

धर्म और धर्मनेताकी परम्परा—धर्म नाम है स्वभावका। पदार्थमें जो स्वभाव है उस स्वभावका नाम धर्म है, और उस स्वभाव मात्र वस्तुको जाननेका नाम है धर्मपालन। ऐसा धर्म कबसे चला आ रहा है, वस्तु अनादि से है और धर्म भी अनादिसे है और इस धर्मका पालन भी अनादिसे चला आ रहा है। यह जिनेन्द्र देव यह व्यक्तिगत नहीं है, किन्तु जो रागद्वेष मोहको जीते सो जिन है। ये जिन अनादिकालसे चले आ रहे हैं और ये इन्द्र जो कि इनकी वंदना करते हैं वे भी अनादिकाल से प्रवर्तमान परम्परामें चले आ रहे हैं। इस गाथामें जो इंदसदवंदियाणं विशेषण दिया है जिनेन्द्रदेव का, उसमें इतना ही जानना कि सदा काल अनादिसे अनन्त काल तक जीवोंके देवाधिदेव ये जिनेन्द्र देव हैं, और इनको सभी इन्द्र असाधारण रूपसे विशेष रूपसे नमस्कार करते हैं और ये समस्त लोकके द्वारा नमस्कार किये जाने योग्य हैं।

भगवत्तत्त्व—अभी नाम तो लो नहीं किसी भगवानका, किन्तु भगवानकी विशेषता व स्वरूप ही बताते जावो तो सब लोगोंको रुच जायगी वह विशेषता और जहां किसी भगवानका नाम ले लिया, महावीर ऋषभदेव आदि तो कुछ तो पक्षमें रहेंगे जो उनके माननेवाले है, बाकी सब हट जायेंगे। यह तो एक मजहबकी बात है। जरा नाम तो लीजिए नहीं कुछ, किन्तु बताते जाइये हमारे आदर्श वे हैं, जिनमें रंच भी रागद्वेष मोह नहीं रहा और जिनके ज्ञान इतना विराज रहा है कि समस्त विश्वको एक साथ जानते हैं। जो शुद्ध विकासरूप हैं, परम ज्योतिस्वरूप हैं, अनन्त आनन्दमय है ऐसा भगवान हम लोगोंका आदर्श है पूज्य है उसकी भक्तिसे ही सारे संकट टलते हैं। सब लोग बड़े प्रेमसे सुनेंगे और इनकी ओर भक्ति जगेगी। अच्छा नाम तो लीजिए नहीं और वर्णन करते जाइये, हमारा भगवान बड़ा खिलाड़ी है, अनेक स्त्रियोंमें रमता है और रस रसायन चुरा-चुराकर खूब मस्त होकर खाता है नाम न लीजिये किन्तु केवल बात ही बतावो तो उसे सुनना लोग पसन्द न करेंगे तो जो गुणविकास है, जो निर्दोषता है वह उपासनीय है और ऐसा उपास्य देव ही वास्तवमें देवाधिदेव है, असाधारण है, नमस्कारके योग्य है।

सत्यकी अमिट सत्यता—जो तत्त्व उपास्य है उसका नाम तो कुछ रखना पड़ेगा। शरीरका नाम नहीं, ऋषभ, महावीर, राम, हनुमान, ये नहीं फिर भी कुछ तो कहना पड़ेगा प्रभु कहो, भगवान कहो, जिन कहो। कुछ कुछ शब्द तो बोले जायेंगे। अब पक्षमें आकर उन ही शब्दोंको कोई रागद्वेषमें ढाल दे तो उसका इलाज क्या। प्रभुका अर्थ क्या है ? जो उत्कृष्ट रूपसे हो उसे प्रभु कहते हैं। प्र उपसर्ग है भू धातु है। जो उत्तम विकासरूपसे है, परम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विकासमय है उसका नाम प्रभु है। अब प्रभु किसीका नाम नहीं हुआ। भगवानका अर्थ ज्ञानवान है जो उत्कृष्ट ज्ञान वाला हो उसे भगवान कहते हैं। यह कुछ व्यक्तिका नाम नहीं हुआ। जिन किसे कहते हैं ? जो रागद्वेष मोहको नष्ट कर डाले उसका नाम जिन है। जिन किसी व्यक्तिका नाम तो नहीं हुआ, और जो रागद्वेष मोहको जीत चुका उस जिनने जो मार्ग बताया उसका नाम है जिन मार्ग, जिनधर्म, इसमें भी कोई व्यक्तिका नाम नहीं हैं, किन्तु ऐसा साधारण भी मार्ग किसी नामसे तो पुकारा ही जायगा, पर उसे एक विशिष्ट समूह वाला मान बैठें कोई तो यह सब मोहका ही विलास है।

वीतरागता, सर्वज्ञता व हितोपदेशिता—यह प्रभु, यह जिनेन्द्र, यह रागद्वेष मोहके विजयका उपाय और ये रागद्वेषके जीतने वाले अनादि कालसे होते चले आ रहे हैं। ये देवाधिदेव ही असाधारण नमस्कारके योग्य हैं जिनेन्द्र प्रभुमें तीन विशेषताएं संक्षेप रूपसे बतायी गयी हैं। वे वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं और हितोपदेशी हैं याने निर्दोष हैं पूर्णगुणसम्पन्न हैं और हितका मार्ग बताने वाले हैं। इस ही आधारपर णमोकार मंत्रमें सर्वोत्कृष्ट परमेष्ठी सिद्ध भगवानसे भी पहले णमो अरिहंताणं कहकर अरहंतोंका स्मरण किया है। प्रभु समस्त जीवलोकके लिए समस्त संसारी प्राणियोंके लिए आत्मतत्त्वकी प्राप्तिका उपाय बताते हैं इसलिए वे हितोपदेशी हैं।

उपदेशकी सार्वता प्रभुकाउपदेश एक शुद्ध आत्मतत्त्वकी प्राप्ति करानेके लिए है। तीन लोकके समस्तऊर्द्ध लोकमें देवताजन हैं, मध्य लोकमें तिर्यञ्च और मनुष्य हैं अधोलोकमें भवन व व्यन्तदेव तथा और नीचे नारकी जीव हैं। इन समस्त जीवोंके लिए इनके भलेके लिए बाधा रहित ज्ञानस्वरूप मात्र आत्मतत्त्वका उपदेश किया है। देवता लोग तो समवशरणमें आकर भगवानकी दिव्यध्वनिका उपदेश सुनते हैं, तिर्यञ्च और मनुष्य भी सुनते हैं। नारकी जीवोंको यहांके जीव जाकर, जिन नारकियोंसे स्नेह है और जिस देवको उसके उद्धारकी वाञ्छा है तो वह जाकर सुनाता है। यों प्रभुका उपदेश समस्त जीवोंके हितके लिये है और वह उपदेश मधुर है। जो परमार्थ तत्त्वके रसिया हैं जिन्हें विकल्प परिहार करके निर्विकल्प निज ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमें सहज आनन्द आता है उन परमार्थिक रसिक पुरुषोंके मनको हरण करने वाले वचन हैं, अर्थात् मनकी प्रसन्नता लाने वाले ये वचन हैं, इस कारण प्रभुका वचन मधुर है, साथ ही उनके वचन अत्यन्त विशद हैं, स्पष्ट हैं, उसमें शंका आदिक कोई दोषका स्वभाव नहीं है।

भगवद्वाणीकी चरम गंभीरता—भगवानका वचन हम आप लोगोंकी तरह किसी पुरुषका लक्ष्य रखकर और किसी एक प्रकरणको क्रममें रखकर नहीं होता है। इस प्रकारके व्याख्यान तो जिसके कुछ न कुछ राग हो वही कर सकता है किसीकी बात सुनना और उसके प्रश्नका उत्तर देना यह राग बिना सम्भव नहीं है। भला राग है, धर्म का अनुराग है, पर रागका कुछ अंश हो तब उसके प्रश्नोत्तर हो पाते हैं और तब ही वचनविन्यास करके शब्द वर्णका क्रम बन कर बोला जाता है। प्रभु अरहंतदेव वीतराग और सर्वज्ञ हैं। उनके अब मन भी नहीं रहा। भले ही शरीरमें द्रव्यमन रहे, किन्तु केवल ज्ञान होनेपर केवल ज्ञानके द्वारा समस्त विश्वको एक साथ स्पष्ट जानते हैं। मनका भी काम नहीं होता। तब उनके तो उपदेश देने की भी इच्छा नहीं है। वह उपदेश देना नहीं चाहते। इस सम्बंधमें कोई विकल्प ही नहीं है, पर तीर्थंकर प्रभुने पहिले समयमें पूर्व जन्ममें या पूर्व कालके संसारके समस्त प्राणियोंके उद्धारकी वाञ्छा की थी, इन प्राणियोंको अपने आपके स्वरूपका बोध हो और संसारके समस्त संकटोंसे ये दूर हो जायें ऐसी जो निरन्तर वाञ्छा बनायी थी उसमें इन्हें विशिष्ट पुण्यप्रकृतिका बंध हुआ था। जो दूसरोंके उपकारकी इच्छा रखता है उसके पुण्यका बंध होता है, यों समझ लीजिए कि जो दूसरोंके उपकारका आशय रखता है उसकी महिमा फैलती है। समस्त जन उससे स्नेह करते हैं, उसका आदर करते हैं, यही तो पुण्य हुआ। तो प्रभुके ऐसा विशिष्ट पुण्यका उदय हुआ था कि अब वीतराग होनेपर भी उस पुण्यप्रकृतिके उदयसे उनके समस्त शरीरसे मुखसे भी एक मधुर कर्णप्रिय ध्वनि निकलती है और उस ध्वनिको सुनकर लोग अपनी अपनी भाषामें अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार धर्मतत्त्वका ज्ञान करते हैं, तिर्यञ्च भी तो तत्त्वज्ञान कर लेते है दिव्यध्वनिको सुनकर और मनुष्योंमें चाहे वे किसी भी भाषाको बोलनेवाले हों दिव्य ध्वनिको सुनकर अपनी योग्यतानुसार उसकी महिमा और मर्म पा लेते हैं। प्रभुके वचन तो मधुर हैं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

मधुरता व हितकरताका समन्वय—देखिये हम आप लोगों को आज के पाये हुये ठाठबाठ समागम या प्रेमीजनोंमें वार्तालाप इनमें ही समय न खोना चाहिये। यह वार्तालाप हितरूप नहीं है और वास्तवमें मधुर भी नहीं हैं, कड़वा है। कोई ऐसी औषधि हो कि खाते समय तो मीठी लगे पर थोड़ी देर बाद मुंह कड़वा हो जाये, ऐसे ही जानों कि ये सांसारिक सुख हैं। यह प्रेमीजनोंसे जो वार्तालाप होता है प्रेमका परस्पर आदान प्रदान होता है से सब कटु चीजें हैं, मधुर नहीं हैं। कुछ कालको तो भले ही सबको प्रिय लगती हैं। किन्तु इनका परिणाम कठोर है। इसही भवमें अनेक घटनायें भोगनी पड़ती हैं और परभवमें भी इस प्रीति के कारण यातनायें भोगनी पड़ती हैं। ये बचन हितकर नहीं हैं किन्तु प्रभु के वचन जो निष्पक्ष हैं, प्रकृतिकी प्रेरणासे उत्पन्न हुये हैं। भव्य जीवों के भाग्य से हुये हैं वे बचन मधुर हैं। उनके तो दिव्यध्वनि है। जोसर्वसाधारणके नहीं पाया जाती है। उनके वचन समग्र वस्तुओंके यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले हैं।

वस्तुस्वरूपका दर्शन - जैन मार्ग में किसी की ओर से कोई विधान नहीं बनाया गया, किन्तु वस्तुओंमें जो बात, जो स्वरूप पाया जाता है उसका प्रतिपादन है ,और कहो यह आत्मा अपने इस आत्मस्वरूप में आ जाये, मग्न हो जाय परम समाधि प्राप्त हो जाय उसके उपायमें परकी अपेक्षा और निजका आलम्बन जैसे बने उस विधिका वर्णन है। यहाँ पक्षका तो कहीं रंच भी नाम नहीं है, किसी भी मनुष्यका यथार्थ मार्ग बतावो, समझावो सबको रुचेगा, अरुचिकर कोई बात ही नहीं है, और साथ ही शंका संदेह उत्पन्न करने वाली भी कोई बात नहीं है। ऐसा हितकारी निर्मल स्पष्ट जिसका उपदेश है ऐसे जिनेन्द्रदेवको भक्तिपूर्वक नमस्कार हो।

आत्मत्वके नाते शान्तिका प्रयत्न—हम आप आत्मा हैं, हम आपको शान्ति चाहिए, तो आत्माके ही नाते से शान्तिके मार्ग में हमारा प्रयत्न हो इस दिशामें कोई विवेकी अपने उपयोगका कदम बढ़ाये तो वह यथार्थ स्वरूपका ग्रहण करके रहेगा। जहाँ मूल में ही यह आशय बना हो कि मैं अमुक मजहबका हूं, अमुक कुलका हूं, अमुक धर्मका हूँ उसको अब आत्मासे नाता नहीं रहा, पर्यायसे नाता हो गया, और पर्यायका नाता रखकर ऐसा निष्पक्ष जैन धर्म भी पाये तो भी वह लाभ नहीं उठा सकता। आत्माका नाता रखकर चाहे कोई किसी भी कुल धर्म मजहबमें उत्पन्न हुआ हो वह संतोष मार्ग को आखिर ग्रहण करके ही रहेगा। जिन्हें कल्याणकी वाञ्छा है उनका यह कर्तव्य है कि पर्यायके नाते को भुला दें, धर्म ग्रहण करने की प्रतीतिमें और आत्माका ही नाता लगाकर उसमें बढ़े।

अनन्त गुणमयता —ये प्रभु जो आत्मकल्याण पा चुके हैं ये अनन्त गुणमय है, इनके गुणोंका अन्त नहीं आ सकता। कैसा है इनका चैतन्यस्वभाव। यह शुद्ध ज्ञानप्रकाश चैतन्य शक्तिका विलास किसीक्षेत्र की सीमाको नहीं रखता। यह ज्ञान यहाँ तक ही जाने इससे आगे न जाने ऐसी सीमा भगवानके ज्ञानमें नहीं है। जहाँ कर्म शरीर इन्द्रियां इन सबका अभाव हो गया और जो केवल ज्ञानस्वरूप रह गया। ज्ञानका काम निरन्तर जानते रहनेका है। तो उस ज्ञानमें यह सीमा कौन डालेगा कि यह केवलज्ञान सिर्फ यह ज्ञानप्रकाश इतने क्षेत्र तक जानेगा आगे न जानेगा ऐसी सीमा हो ही नहीं सकती ज्ञानमें। हम आप लोगोंके जो ज्ञानकी सीमा बनी हुई है, इतनी दूर तक की देखें सुने, जाने यह सीमा ज्ञानके नाते से नहीं बनी है, किन्तु ज्ञानमें बाधा डालने वाले जो रागद्वेष है उनके कारण बने हैं। प्रभुके ज्ञानमें क्षेत्रकी सीमा नहीं है। प्रभुके ज्ञानमें कालकी भी सीमा नहीं है, जैसे हम आप लोग गुजरे हुए समयकी कितने दिनकी बात जानें इसकी सीमा है। किसीका ज्ञान विशिष्ट है वह १८, २० वर्षकी जानता कोई दो वर्ष की जानता, कोई पिछले वर्षकी भी भूल जाता। हमारे आपके ज्ञानमें समयकी सीमा है क्योंकि, रागद्वेषमय वाञ्छाएं हैं, उसमें उपयोग चला जानेसे यह ज्ञान शुद्ध विकासमें नहीं रहता है। यह औपाधिक भावोंका आवरण है, अतः हम आपके ज्ञानकी कला की सीमा लग गयी है लेकिन प्रभुके ज्ञानमें समय की सीमा नहीं है।

असीम ज्ञातृत्व—ज्ञानका काम जानना है और जानना सत् पदार्थोंका होता है। जो भी सत् हो वह जिस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकार भी पहिले रहा हो, जिस प्रकार आगे रहेगा, जिस प्रकार वर्तमानमें रह रहा है उस सबका सम्पूर्ण ज्ञान एक झलक में जान लेता है । इससे पहिलेकी बात जाने, इससे और पहिले की बात न जाने ऐसी सीमा केवलज्ञानमें नहीं होती है। यह कालकी सीमासे भी परे है, यों उत्कृष्ट चैतन्यशक्तिका उत्कृष्ट विकास किसमें है और इसही प्रकार आनन्द दर्शन शक्ति समग्र गुण असीम विकसित हो गए हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेवको यहाँ नमस्कार किया है देखिये कितनी निर्मल दृष्टि लगी है प्रभु भजनमें। कोई व्यक्ति भी नहीं देखा जा रहा है, किन्तु एक शुद्ध ब्रह्मविकास ही निरखा जा रहा है। जो परिपूर्ण ब्रह्म विकास है वह हमारा प्रभु है। इस लगनको प्रभुभक्तिमें लगाये।

प्रभुभक्तिका जयवाद—अब आजकल जैन शब्द संकुचित बन गया है। चीज वही है जो जिनेन्द्रका स्वरूप बताया जा रहा है, और हम भी वही हैं जिसे जैन कहकर पुकारा जा रहा है, पर हम किसी भी शब्दका आलम्बन न लें, अपने आपको जैन हैं इसका भी विकल्प त्याग दें और निरखें अपने आपमें कि यह मैं ज्ञानपुंज आत्मा हूँ और मेरा आदर्श मेरा सुधार ज्ञानपुंज है यों यह ज्ञान ज्ञानकी भक्ति करता है। और इस प्रकार वह देव और यह भक्त कितना निकट हो जाता है। ऐसी भक्ति लोकमें जयवंत हो। यह प्रभु परम अद्भुत ज्ञानके विकास वाला है अतः योगियोंके द्वारा भी वंदनीय ये है ऐसे देवेन्द्र योगीन्द्र नरेन्द्र सभीके द्वारा वंदनीय ये जिनेन्द्रदेव हैं इनकी उपासनाके प्रसादसे भव-भव के पाप कट जाते हैं, अपने आपमें निर्मलता प्रकट हो जाती है। यह सब चिन्ता शोकका बोझ समाप्त हो जाता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस ग्रन्थ रचनाके प्रारम्भमें मंगलाचरणमें ऐसे निर्दोष सर्वगुणसम्पन्न जिनेन्द्रदेवको नमस्कार कर रहे हैं।

जितभवता—कुन्दकुन्दाचार्यदेव मंगलाचरणमें जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करते हुए अंतिम विशेषण कह रहे हैं यह जिनेन्द्र जितभव है जिसने इस संसारको जीत लिया है, जन्म मरण रूप भवको विनष्ट कर दिया है वह जितभव कहलाता है। जितभव कहनेका यह लक्ष्य है कि यह प्रभु कृतकृत्य है। इन्होंने जो कुछ करने योग्य कार्य है वह कर लिया है। करने योग्य कार्य केवल शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा रहने का है। यह कार्य ये कर चुके हैं। शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा निरन्तर रहा करते हैं। तो जो कृतकृत्य हो गया हो उसका ही तो शरण अकृतकृत्यपने को युक्त हो सकता है। हम आप संसारी प्राणी अकृतकृत्य हैं। जो करने योग्य कार्य है उसे नहीं कर पाये हैं। ऐसे जीवोंका शरण जो कृतकृत्य हो वही हो सकता है। जो जितभव हो, कृतकृत्य हो उसको एक इस दृष्टिसे देखो, इन्होंने वस्तु स्वरूपका यथार्थ ज्ञान पाया और उस शुद्ध ज्ञानका ही उपयोग बनाया इससे ये कृतकृत्य हुए हैं।

स्वतन्त्रताका निर्णय—प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, सहज स्वरूपमें यह ज्ञायकस्वरूप, यह पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और यह कालाणु है, ये सब अपने स्वरूपसे है और परके स्वरूपसे नहीं है। ये प्रत्येक पदार्थ अपने आपके कर्ता हैं, किसी परके कर्ता नहीं हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपके स्वामी हैं, किसी परके स्वामी नहीं हैं, ऐसी यथार्थ ज्ञानदृष्टिके बलसे जिसके यह निर्णय और पुरुषार्थ बन गया है अब उसे किस भी पर पदार्थमें कुछ काम करनेको पड़ा ही नहीं है। जहां यह दृष्टि बनी ऐसा निर्णय बनाया कि मैं तो केवल अपनेमें अपना परिणमन किया करता हूँ। मुझे परमें कुछ करना योग्य है ही नहीं। बस यही कृतकृत्य बननेका एक मूल साधन है। जो पुरुष इस ज्ञानकी कृतकृत्यता के प्रसाद से यथार्थ कृतकृत्य हो गए हैं वे प्रभु ही संसारी प्राणियोंके लिए शरण कहे गए हैं।

इंदसदवंदियाणं यों ग्रन्थकर्ता ने जिनेन्द्र भगवानको ४ विशेषणोंसे याद किया है यह प्रभु सौ इन्द्रोंके द्वारा वंदनीक है। इस विशेषण से कई बातें जाहिर होती हैं। एक तो विशिष्ट पूजाके योग्य ये जिनेन्द्रदेव ही हैं यह सिद्ध होता है, दूसरे जिसके चरणोंमें सब जातिके इन्द्र बंदना करते हैं उनके प्रति सब जीवोंका झुकाव अपने आप होता ही है इसमें भक्तिमें विशेषता बतायी गयी है।

तिहुवणहिद मधुरविसदवक्काणं दूसरा विशेषण दिया गया है त्रिभुवनहित मधुरविशदवाक्य तीन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लोकोंके लिए हितकारी मधुर और विशद जिनका उपदेश है, तीन लोकके लिए उनका उपदेश हितकारी इसलिए है कि उनके उपदेशमें उस शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्तिका उपाय कहा गया है। आत्मा स्वभावतः सहज आनन्दमय है। इस शुद्ध आत्माकी दृष्टि जगे यही, शुद्ध आत्माके आश्रित हुआ ज्ञान ही इस ज्ञानमयको पायगा। ज्ञान भी ज्ञानस्वरूप है और जिसे पाता है वह भी ज्ञानस्वरूप है। उसकी दृष्टि होना, इस ज्ञानस्वरूपका ज्ञान होना यही शुद्ध आत्माकी प्राप्ति कहलाती है। इसका समस्त उपाय बताया है और इस शुद्ध आत्माकी प्राप्तिके द्वारा यह कभी सर्व प्रकार से शुद्ध हो जाय। शरीरके सम्पर्क से भी मुक्त हो जाय भावकर्म से भी मुक्त हो जाय, द्रव्यकर्मसे भी मुक्त हो जाय ऐसी सर्वथा शुद्ध आत्मा की प्राप्तिका उपाय जैन दर्शनमें कहा गया है, इस कारण यह जिन उपदेश हितरूप है।

प्रभुवाणीकी विशदता - प्रभुका वचन अत्यन्त विशद है। बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें सभी दर्शनके ग्रन्थोंमें जब कोई प्रवेश करता है तो उसे यह समझमें आ जायगा कि अहो यथार्थ तत्त्वका निरूपण जैन दर्शनके शास्त्रोंमें कितनी सरल शैलीसे कहा है। कठिन समास और अप्रसिद्ध शब्दोंके द्वारा न कह कर जैन शास्त्रोंमें सरलसे सरल शैलीमें बताया गया है। जैन ऋषीसंत जीवोंकी करुणा से ओतप्रोत थे। उनका केवल यही भाव था कि जनता को समझमें आ जाय तत्त्व और कुछ चाह न थी, ठोस तत्त्वज्ञान भी था। ज्ञानका विषयभूत जो कुछ परमें है वह भी ठोस विदित था। इस तत्त्व ज्ञान का फल है अपूर्व परम आनन्द होना इस तत्त्वज्ञानके प्रसाद से रागद्वेष रहित विकल्प रहित केवल ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप समाधि उत्पन्न होती है। उस समाधिसे जो सहज अपूर्व आनन्द जगता है उस आनन्दके रसिक जो भव्यजन हैं उनके मन को प्रसन्न करन वाला प्रभुका उपदेश है। यह उपदेश बहुत विशद है, साफ स्पष्ट है। न इसमें कहीं संशय है, इसमें कोई विपर्यय है और न इसमें किसी प्रकारका अनिश्चय है।

शुद्ध जीवास्तिकायकी ख्याति—प्रभुके उपदेशमें मुख्यतया क्या बात बातायी गयी है। शुद्ध जीवास्तिकाय शुद्ध पुद्गल अस्तिकाय, धर्म अधर्म आकाश ये सदा शुद्ध ही हुआ करते हैं। इन पंच अस्तिकायोंका वर्णन है, और पंच अस्तिकायोंके वर्णनका प्रयोजन है एक शुद्ध जीवास्तिकायका दर्शन होना। यह मैं आत्मा अपने आप अकेला अपने सत्त्वके कारण कितने स्वरूप हूं इसीको शुद्ध जीव स्वरूप कहा करते हैं। इसमें मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत सात तत्त्वोंका वर्णन है। प्रभुके उपदेशमें जीव, अजीव अथवा बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष व्यवहार व परमार्थ दोनों विधियोंसे है। जीव उसे कहते हैं जिसमें चेतना हो, जिसमें ज्ञान दर्शन हो। जो जानता देखता है उसका नाम जीव है, और इस प्रसंगमें अजीवका मतलब है कर्म। आश्रव बंध आदिक यह जो पर्याय बताया है उसके मूलमें दो तत्त्व कहे हैं-जीव और अजीवका अर्थ है यहाँ कर्म। ये दो मूल बातें हैं। जीवमें कर्म आ जायें उसका नाम आस्रव है, और जीवमें आये हुए कर्म बहुत दिनों तक जीवके साथ रहे, उनकी स्थिति पड़ जाय, इसका नाम बंध है। जीवमें कर्म न आ सकें। कर्मोंका आना रुक जाय इसका नाम सम्वर है और पहिलेसे बंधे हुए कर्म जीवसे अलग हो जायें, झड़ जायें इसका नाम निर्जरा है, और समस्त कर्मोंका जीव से सर्वदाके लिए न्यारा हो जाना इसका नाम मोक्ष है। मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत ये ७ तत्त्व हैं। ७ तत्त्वोंके श्रद्धान को सिद्धान्त ग्रन्थोंमें सम्यग्दर्शन कहा है।

आत्महित—जीवका पूर्ण हित मोक्षमें है, अर्थात् जो दंद फंद लिपट गए हैं इस जीवके साथ जीवातिरिक्त अन्य चीजें जो लग गयी हैं ये अन्य चीजें जुदी हो जायें बस इसीमें इस जीवकी भलाई है। धर्म पालन करनेका उद्देश्य भी यही है कि हम इन औपाधिक तत्त्वोसे दूर हो जायें। हम जैसे स्वयं अपने आप हैं सहज वैसे ही रह जायें यही जीवकी सबसे बड़ी भलाई है। जब अज्ञान मोह सताता है तो इस जीवके पर द्रव्योंके प्रति दृष्टि अधिक गढ़ जाती है और परकी चिन्ता, परका शोक परकी लगन इनमें ही उपयोग गुजरता रहता है, किन्तु यह तो बताओ कि कितने अनेक पर पदार्थ हम आपने भव-भव में पाये होंगे, आज जो कुछ पाया है और जितना वैभवकी हम अपनी इच्छा में निदान बनाते हैं इतना और मिल जाय, उससे भी कई गुणा वैभव हम आपने भव भवमें पाया है। जितने चला, लोक में कीर्ति आज चाह रहे है। उससे भी कई गुणा अधिक कीर्ति, चला हम आपने अनेक भवमें पायी हैं। जब वह भी साथ नहीं रहा तो वर्तमान का समागम वैभव चला मेरे काम क्या आयगा। इस विनश्वर तत्त्वकी दृष्टिमें हित नहीं हैं, हित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो मोक्षमें है ।

संकट व संकटनिवर्तन—यह वैभव घोरखधंधा है, सार कुछ नहीं है। फसे तो फसना बढ़ता ही जाता है। सुलझाना कठिन हो जाता है। पर ज्ञानमें सब सामर्थ्य है। हम आप सब के पास ऐसी उत्कृष्ट निधि मिली है कि जिसके कारण हम आपको चिन्ता करने की बात नहीं रहती है। किसी भी दिन, किसी भी समय कितनी भी कठिन परिस्थिति आ जाय और कल्पनामें कितनी भी बड़ी विपदा मान ली जाय, फिर भी इस विवेचक ज्ञानीमें इतनी सामर्थ्य है कि उन विभावोंको क्षणमात्रमें हटाया जा सकता है। जैसे बहुत संचित बड़े इंधनको जलाकर भस्म कर देने की सामर्थ्य एक अग्नि कणिका में है इस ही प्रकार समस्त संसारके सकटोंका इंधन जला देनेमें समर्थ हमारा ज्ञान है।

संकट और संकटविनाशक ज्ञान—हे शान्तिके इच्छुक पुरुषो ! इस महा कल्याण भूत निजज्ञानके निकट आवो, किसी परवस्तु के निकट रहनेसे तो कुछ आनन्द न मिल पायगा। एक अपने ज्ञानस्वरूपके निकट रहें तो इसमें आनन्द मिलेगा। ज्ञानमें ऐसा चमत्कार है कि सर्व विपदावोंको दूर कर सकता है। अरे इतना ही तो जानना है कि वह मैं आत्मा अपने गुण पर्यायोंरूप हूं अपने ही निज प्रदेशों में हूँ। केवल अपने भाव परिणमन का ही कर्ता हूँ और ज्ञान-शक्तिमय हूँ। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपमें परिपूर्ण सत् हूँ। इसकी कहीं अरक्षा नहीं है। यह पूर्ण सत् है। जो सत् होता है वह कभी मिट नहीं सकता। मिटने का ख्याल ही मत लावो। हम कभी मिट न सकेंगे। जो पर चीज है वह कभी रह न सकेगी। जो मेरा स्वरूप है वह कभी मिट न सकेगा। ऐसे शुद्ध परिपूर्ण आकिञ्चन्य ज्ञानमात्र अपने आपका बस जाना, इससे संकट नहीं रहते हैं। संकट तो विकल्पोंमें हैं, कल्पनामें हैं और कल्पनामें ही आकुलता है। भव-भवमें बांधे हुए कर्मोंके उदय आते हैं, और उन उदयोंका निमित्त पाकर यहां विभावोंकी सृष्टि होती है तिसपर भी ज्ञानका सबसे अनूठा न्यारा काम रहा करता है। यदि हम इस उपयोगके फंदमें उपयोगको न फसायें और ज्ञानको जागरूक बनायें रहें तो कोई क्लेश अनुभवमें न आ सकेगा। घरमें १० प्राणी हों तो दसों के साथ कर्म लगे हुए हैं। किसी के विपरीत कोई दूसरा कर नहीं सकता। जिस जीवका जो सांसारिक होनहार है वह उस जीवके कमाये हुए पाप पुण्यके अनुसार होता है, इस बात पर श्रद्धा हो तो किसी भी स्थितिमें व्यग्रता नहीं आ सकती है।

अपूर्व लाभका विवेक—जो बात अन्य भवमें नहीं हो सकती है उसकी सिद्धि कर लेना ही तो यहां का विवेक है। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार परिग्रह और इनकी वेदनाको शमन करनेके उपाय ये अनेक भवोंमें मिल जाते हैं पशु पक्षी क्या पेट भरकर मौज नहीं मान पाते। वे भी मौज मानते हैं। भरे पेट वाले गाय अथवा बैल बैठे बैठे अपना मुंह चलाकर कैसा मौज मानते हैं। सभी पशुपक्षी भरे पेट की हालतमें कैसी लीला केलि करते रहते हैं। यह आहारका सुख तो पशु पक्षीको भी प्राप्त है। भय संज्ञा भी सबके है। यह मनुष्य भयको दूर करनेका प्रयत्न करता है और दूर करनेके प्रयत्न में सफलता हो जाय तो मौज मानते हैं। ऐसे ही ये पशु पक्षी भी हैं, पर कोई भय आ जाय तो इस भयको मिटानेका यत्न करते हैं और वहां यत्न बन जाय तो ये भी अपने अन्तरङ्गमें खूब मौज मानते हैं। मैथुनकी बात भी अन्य प्राणियोंमें भी है, मनुष्योंमें भी है उस सम्बंधमें कोई सिद्धिपाले तो इससे क्या हो जायगा ? अरे जो बात अन्य भवोंमें न मिलसके और मनुष्य भवमें ही मिल सकती है उसके ही करने का लक्ष्य रखना।

निःसंगबुद्धिका लाभ—परिग्रह संज्ञा प्रत्येक भवमें रहती है। मनुष्य जरा विशिष्ट बुद्धि वाला है सो परिग्रहको अनेक ढंगों से रखता है। इसके लिए बैंक है, घर है, व्यापार है, अनेक तरह की प्रक्रियाएँ है। यह परिग्रहोंका संचय करलेता है पशु-पक्षियोंमें जितनी योग्यता है उतनेही रूपमें वे संग्रह करपाते हैं, बन्दर इतना ही संचय कर पाते हैं कि जल्दी जल्दी मुखमें भर लिया और एक हाथमें भर लिया तीन पैरोंसे भागते जाते। इतना ही संचय कर पाते हैं बन्दर। मनुष्य ज्यादा संचय कर लेता है पशु भी केवल खाते समय जो सामने है उसको बचाते हैं कोई दूसरा जानवर बिगाड़ने आजाये, खाने आजाय तो थोड़ा सींग भी मारनेका यत्न करते हैं वे इतना ही परिग्रहण रख पाते हैं और कीड़ा मकोड़ा पेड़ वगैरह जो सामने आया बस उसी का परिग्रहणकर पाते हैं, परपरिग्रह सज्ञासे छूटा कोई नहीं है, यह चीजभी

http://sahjanandvarnishastra.org/

भव-भवमें मिल जाती है, इसके बढ़ावेमें भी क्या बड़प्पन है। बड़प्पन तो अपने उस तत्वमें है जो यहां ही सिद्धहोपाता है अन्यभवमें नही, वह तत्व है शुद्ध जीवस्वरुपका गाढ परिचय होना, और पर द्रव्यकी उपेक्षा कर लेना। यह बात यदि न प्राप्त कर सके तो दु:खी कौन होगा यह खुद ही दु:खी होगा।

सुगम सत्य मार्गका ही शरण:—भैया ! होनहार ठीक है तो सबको सीधे सच्चे रास्ते पर आना पड़ेगा। जैसे लोकमें कोई पुरुष हठकरे तो वह आखिर वह कब तक यों करेगा ? उसे भी सीधेरास्ते पर आना ही पड़ता है और तब ही उसका गुजारा और शान्ति हो सकती है ऐसेही यहांपर वस्तुओंकी चिन्ता, शोक अधम, उदण्डता हो तो कहाँ तक यह जीव इनको निभा सकेगा। अन्तमें सीधे सरल सत्य मार्गपर इसे आनाही पड़ेगा जब यह सुखी हो सकता है। प्रभुका उपदेश ऐसेही सप्ततत्व और ९पदार्थ आदि के वर्णनका पूरक है और इस ही तत्वज्ञान से हम आप शन्ति लाभले सकते है। अत: यह समस्त कथन विशद है और सर्व जीवोके लिए हितकारी है। जीवमें ये कर्म आते है तब यह जीव मोह राग और द्वेष करता है। जितनी डिग्री में जितनी तीव्रता में यह जीव मोह राग द्वेष करता है उतनी ही अधिक स्थितिके कर्म बंधते हैं, जिन्हें कर्मबन्ध न चाहिए उनका कर्तव्य है कि वे सम्यग्ज्ञान बनाएं और कषाय मंद करें। इससे कर्मोंका सम्बर होगा, कर्म का आना रुक जायगा और इस ही अपने शुद्ध आत्मतत्वके उपयोगसे पहिलेके बंधे हुए कर्म खिर जायेंगे और खिरते-खिरते निकट ही कोई समय ऐसा आयगा इस सम्यग्दृष्टि जीवका कि सारे कर्म दूर हो जायेंगे।

पूजा और अभिप्रायका समन्वय—भला बतलावो तो सही जो कर्मोंसे अत्यन्त दूर है। निष्कर्म है, अकिञ्चन हैं ऐसे भगवान को तो हम पूजा वंदना करने आयें और चिन्ता यह बढ़ायें कि कैसे मेरा घर बढ़े, परिजन बढ़े, इज्जत बढ़े, यश बढ़े तो यह कितना विरुद्ध काम है। यह सब ढोंग धतूरा हुआ कि नहीं ? पूजते तो हैं निर्मलको और मल संचय की धुन बनाये हैं तो वह पूजना किस कामका हुआ ? कुछ तो ध्यान दीजिए। इसके पूजनेका यही तो प्रयोजन है कि यह भावना बनाएं कि हे प्रभो ! अपूर्व शान्ति और आनन्दकी स्थिति तो तुम्हारी है। मुझे यह स्थिति कैसे कब प्राप्त होगी। शुद्ध देवकी पूजा अपनी शुद्धताके लिए है यही लक्ष्य बनायें प्रभुदर्शनमें। हे प्रभो ! सत्य आनन्दमय तुम ही हो। मेरेमें यह आनन्द शीघ्र प्रकट हो। मेरी ऐसी ही सद्‌बुद्धि बने कि मैं मोह रागद्वेषसे रहित होकर ऐसे ही उत्कृष्ट आनन्दको पाऊँ। इन सब परमार्थभूत तत्वोंका उपदेश प्रभुने किया है। उनके निर्मल और स्पष्ट वचन हैं। ऐसे तीनों लोकका हित करने वाले उपदेशके नायक जिनेन्द्रदेवको मेरा बारम्बार नमस्कार हो। इस प्रकार मगलाचरणमें कुन्दकुन्दाचार्य देव निर्दोष प्रभुका ध्यान कर रहे हैं।

सर्वभाषामयता—भगवान की वाणी स्पष्ट रहा करती है मुख्य भाषाएं ६ हैं। कर्नाटिकी, मागधी, माड़वी, लाट, शौण और गुजरात। इन ६ भाषावोंमें जरा विशेष विशेष फर्क डालकर इनमें सम्बधित तीन भाषाएं और हो गयी हैं। जैसे कर्नाटिकी, तैलगू और तामिल आदि मिलती जुलती हैं, ऐसी प्रत्येक बड़ी भाषामें तीन-तीन भाग हैं, यों १८ तो महा भाषायें हैं और १८ मुख्य भाषावोंमे सम्बधित छोटी-छोटी ७०० भाषाएं हो गयी हैं। इन ७०० भाषावों के अन्दर बहुत सी भाषावोंके रूपसे एक साथ सभी जीव अपने-अपने भव में भगवानकी वाणीका स्पष्ट अर्थ ग्रहण करते हैं इसलिए प्रभुकी वाणी अत्यन्त स्पष्ट है। भाषाएं कभी-कभी समय पाकर इतना आदल बदल बना देतीं हैं कि एक नई भाषा बन जाया करती है।

सर्व भाषामें स्पष्टता:—आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्वकी यह बात कही जारही है कि ऐसी-ऐसी भाषाएं थीं, और किसी-किसीके मतसे तो भगवान महावीर स्वामीको हुए १४ १५ हजार वर्ष हुए भगवान महावीर स्वामीके समय के सम्बन्धमें दो तीन धारणाएं हैं जैसे धवलामें उल्लेख किया है, एक सिद्धान्तसे तो १४—१५ हजार वर्ष हो जाया करते हैं। इस सिद्धान्तसे तो ५—६ हजार वर्ष रह गये हैं पंचमकालके। और मुख्य तो ढाई हजार वर्ष ही प्रसिद्ध है। अब तो नई नई अनेक भाषाएं हो गयी है। सर्वजीवोंको भगवान की वाणी उन-उनकी भाषामें स्पष्ट ज्ञान कराती है इसलिए प्रभुका वाक्य स्पष्ट है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वहितकारिणी वाणी –प्रभुकी वाणी तीन लोकका हित करने वाली मधुरताको लिए हुए है। प्रभुकी वाणी सब आत्मावोंके हितके लिए है जहाँ मनुष्योंको उपदेश देकर ज्ञान और वैराग्यकी बातमें बढ़ाकर मनुष्योंके हित-की बात भरी है वहां मनुष्योंको दयाका उपदेश देने के कारण जो कीडा मकोड़ा और स्थावरोंका भी रक्षा होती है तो भगवानकी वाणी उन कीड़ों मकोड़ोंके हितके लिए भी हुई। यों प्रभुकी वाणी समस्त आत्मावोंके लिए हितकारी होती है। भगवानकी दिव्यध्वनिमें वर्ण और अक्षर हम आप जैसे नहीं निकलते है। ऐसे वर्ण अक्षरों का निकलना राग और विकल्प विना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रभुकी वाणीनिरक्षर बतायी गयी है जिसकी धुन है ओंकार रूप, निरअक्षर मय महिमा अनूप जिसकी ध्वनिमें गम्भीर ऊँ की आवाज है।

प्रभुकी वीतरागता—कहां तो प्रभुकी इतनी बड़ी वीतरागता दर्शायी गयी है और कहां लोग यह कहते है कि प्रभु लोगोंके पीछे भागते फिरते हैं, उनको प्रभु बचाते हैं, उनकी रक्षा करते हैं। कहीं छिपे-छिपे कर रहे हैं, कहीं प्रकट कर रहे हैं, ये सब खेल कराये जाते हैं। भगवान ऐसे कोई खेल नहीं करते हैं पर भक्तजन कल्पना में भगवानके ऐसे खेल कराया करते हैं। प्रभुमें तो इतनी उत्कृट वीतरागता है कि वह हम आपकी तरह वचन अक्षरोंसे बोलते तकभी नहीं हैं। वर्णोंसे अक्षरों से बोलेंतो उसमें राग और विकल्प सिद्ध होता है। कोई प्रश्न करे और प्रभु उस प्रश्नका उत्तर दें तो यह तो एक रागकी बात हुई। जब किसी चर्चामें आनन्द माना है तभी तो सुनेगे और फिर उसका जवाव दें तो कुछ प्रेम है आपसे प्रीतिहै, वात्सल्य है तभी तो जबाव देते हैं किन्तु प्रभुमें न राग है न द्वेष अब वे न किसीका प्रश्न सुनते है और न किसीको उत्तर देते हैं। प्रभुका स्वरूप तो यों समझो जैसे हम मन्दिरमें पाषाण आदिक की मूर्ति देखते हैं तो यह मूर्ति न कुछ बोलती है न उठती है. हम आपको ऐसी मूर्ति दिखती है जैसे मानो कुछ चेष्टा न करती हो, ऐसे ही प्रभु भी कोई राग भरी चेष्टा नहीं करते। सिर्फ इतना अतर समझो कि मूर्तिसे दिव्यध्वनी नहीं खिरती और प्रभुके दिव्यध्वनी खिरती है।

प्रभुकी चरम निर्दोषता:—प्रभुसे कोई कुछ बात करें, निजी व्यवहार करें एसा नहीं है. पुराणोंमें जो आता है-श्रेणिकने भगवान से यों प्रश्न किया और उन्होंने यह उत्तर दिया, तो ऐसा नहीं होता श्रेणिकने प्रश्न किया गौतम गणाधरसे। उत्तर दिया गौतम गणधरने. किन्तु जिसकी समाजमें कोई पहुंच है नाम उसीका लिया जाता है जो बड़ा है, जिसका मंडप हैं, जिसकी सभा है, उसमें भगवानके गणधरसे कोई पूछें तो कहा यों जायगा कि भगवानसे पूछा और भगवानने उत्तर दिया, एक बात। दूसरी बात यह है कि श्रेणिकने भगवानसे ही प्रश्न किया हो तो वहाँ भगवानकी दिव्यध्वनी सुनकर श्रेणिक को अपने आप अपनी भाषामें उत्तर मिल जाता है किन्तु यह कहा जा सकता है कि श्रेणिक ने भगवानसे प्रश्न किया और प्रभुने उत्तर दिया। बीतरागतामें आंच रंच भी नहीं आ सकती। ऐसे ही अपने को उनके बारेमें सोचो तो बात ठीक बैठ सकती है।

प्रभुदेहकी सहज ध्वनि:–प्रभुकी ध्वनि जब खिरती है उस ध्वनिमें जैसे अन्य अंगोंसे ध्वनि निकलती है इस ही प्रकार मुखसे भी निकलती है वह ओंठ चलाएँ, ओठोसे बोलें, मुंह चलाएं यह बात नहीं होती। उनका उपदेश किसी वाञ्छा को लेकर नहीं होता, अथवा वे उपदेश किसी इच्छासे नहीं किया करते हैं। उनकी वाणीमें पूर्वापर कहीं दोष नहीं है। कोई यथार्थ घटनाका वर्णन करे तो उसे कहीं न हिचक आयेगी, न सोचना पड़ेगा और न कभी पूर्वापर विरोध आयेगा कोई किसी छोटी घटना को किसी अन्य रूपमें पेश करना चाहे तो उसे कोई जगह अटक भी आयेगी सोचना पड़ेगा और उसमें पूर्वापर विरोध भी आयगा। पहिले क्या कहा था और अब क्या कर रहे हैं। प्रभुवीतराग हैं वैसा ही उनकी दिव्यध्वनिमें वर्णन है. इस कारण कोई दोष नहीं हैं जैसे हम आपकी वाणीमें स्वासोच्छ्वासके कारण कहीं क्रम रुक जाता है। कोई लगातार ५ मिनट बोल नहीं सकता, आधा मिनट बोले फिर रुके फिर बोले बिना स्वांस के बाहर किए कुछ भी बोला नहीं जा सकता। केवल बोलते रहनेमें एक मिनटमें ही दम घुटने लगतीहै। स्वांस ले ली फिर ३०–४० सेकेण्ड तक बोलते रहते हैं। पर भगवान के तो दिव्यध्वनि खिरते रहनेका ६ घड़ी लगातर, मेघगर्जना-वत् प्रभुकी दिव्यध्वनि खिरती रहती है। ६ घड़ी सुबह, ६ घड़ी दोपहर, ६ घड़ी साय और ६ घड़ी रातको भी दिव्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ध्वनि खिरती है। अगर रातको भी दिव्यध्वनि खिरती है तो वह उनके बोलनेका दोष नहीं है क्योंकि उनके तो सर्वांग ध्वनि खिरती है। उनके तो शरीरका लगाव नहीं रहा, यहां तो शरीरका बन्धनहै। भव्य जीवोंकी भक्ति है और पुण्य प्रकृतिका उदय है।

प्रभुदर्शनमहिमा—जहां प्रभु विराजे हुए हैं उस स्थानके निकट जो जीव पहुंचता है। वह समस्त संकटोंसे छूटकर एक आनन्द के स्थानमें पहुँचता है उसे चिन्ता तक आदि नहीं रहते हैं, और कोई साधारण रोग हो, बुखार हो, सिरदर्द हो तो भी दूर ही जाता है। अब किसीकी टांग टूटी हो, सम्भव है कि वह भी ठीक हो जाता हो। तो जिसकी इतनी महिमा है, जिसकी वाणीमें इतना ओज है कि जिसका ध्यान करके भक्तिका प्रारम्भ ही किया जाये तभीसे अनेक चमत्कार होने लगते हैं। ऐसी प्रभुकी वाणी विशद है। तीन लोकका हित करने वाली है और मधुर है।

सर्वज्ञता—प्रभु अनन्त गुण सम्पन्न हैं, हमारे ज्ञान गुणकी सीमा है कि कितना भूत काल और भविष्यकालकी जान सकें, कितने क्षेत्र तककी जान सकें। यह सीमा है, क्योंकि आवरण साथ लगा है रागद्वेष साथ है। कर्मोदय साथ है, किन्तु प्रभु भावकर्म और घातियाकर्मोंसे दूर हो गये हैं। अतः उनका ज्ञानगुण असीम हो गया है। वह तीन कालकी समस्त बातें जानते हैं। देखिये जाननेका जब हम उद्यम करें तब कुछ हो जाय प्रकट, मगर पूर्ण प्रकट नहीं हो सकता। हम जानने का उद्यम छोड़ दें पूरी तरहसे तो ऐसी स्थितिमें हमारा ज्ञान हमारे केन्द्रपर आ जायगा और उस पुरुषार्थमें यह बल है कि मेरा ज्ञान असीम फैल जाता है। भगवानको अनन्त ज्ञान गुण वाला बतानेसे यह जाहिर हो जाता है कि प्रभुकी सेवामें बड़े-बड़े ऋद्धिधारी गणधरदेव आदिक इन्द्र भी पहुंचते हैं और उनकी वंदना करते हैं। ऐसे ये संसारसे विमुक्त हुए जिनेन्द्रदेव ही हम आपके शरण हैं। जिनेन्द्र किसे कहते? संसारके अनेक समस्त विषय व्यसन विपरीत संकटोंको जो जीतते उसे जिन कहते हैं, और जिनको जिनेन्द्र कहते हैं। इस गाथामें प्रभु जिनेन्द्रको नमस्कार किया गया है।

प्रभुवन्दनमें नयदृष्टियां—मैं भगवानको नमस्कार करता हूं ऐसी दृष्टिमें उस भक्त और भगवान इन दो का सम्बंध बना है और दो का सम्बंध बनकर जो कथन होता है उसे व्यवहारनय कहते हैं। व्यवहारनयसे भक्त भगवान का वंदन करता है और निश्चयनयसे क्या करता है? निश्चयनय एकको निरखता है, व्यवहारनय दो को निरखता है। निश्चयनयसे भक्त क्या कर रहा है इसका उत्तर पानेमें यह कोशिश न करें वर्णन करनेका कि वह भगवानका कुछ कर रहा है यों तो व्यवहारनय बन जायगा। यह भक्त भगवानके सम्बधमें अपने ज्ञान परिणमन से ज्ञानकी महिमा जान रहा है और उस गुण महिमाको जानकर अपने में एक अद्भुत आल्हाद उत्पन्न कर रहा है। भक्त सुख उत्पन्न कर रहा है तो उसमें जो प्रमोद हुआ, जो आनन्द हुआ उस आनन्द रूप परिणमन कर रहा है। यह है अशुद्ध निश्चयनय से भगवान की वंदना। अशुद्ध निश्चय क्यों कहा कि वह जो खुशी होती है, गुणोंमें प्रमोद होता है वह प्रमोद भी अशुद्ध अवस्था है। शुद्ध अवस्था तो रागद्वेष रहित केवल ज्ञानप्रकाशकी होती है और उस समय किसी सम्यग्दृष्टि भक्त के जिस अंशमें यह शुद्धोपयोग प्रकट होता है इस शुद्धोपयोगमें बने रहनेका नाम है एक देश शुद्ध निश्चयनयकी वंदना। इन तीन प्रयोंसे तो वंदना की बात कही जाती है और जो सर्वदेश शुद्ध निश्चयनय है उसमें वंदना ही नहीं है, क्योंकि सर्वदेश शुद्ध हैं अरहंत भगवान। वे वंदनाका कहां विकल्प करते हैं। परमशुद्ध निश्चयनयमें भी वंदना नहीं है। परम शुद्ध निश्चयनय वस्तु के स्वभावको देखता है, उसमें विकल्प ही नहीं है। वहां वंदना ही क्या होगी। नयोंकी दृष्टिसे वंदना इस तरह होती है इस वंदनासे हम यह भाव ग्रहण करते हैं कि जैसे अनन्त ज्ञान आदिक गुणोंसे युक्त प्रभु कृतकृत्य और आनन्दमय हुए हैं और उनका जैसा शुद्ध जीवहितकार्य है, जैसी उनकी आत्मभूमि है यह ही वास्तवमें उपादेय है, और ऐसा होना हमारे स्वभाव में पड़ा हुआ है।

वक्तव्यका दिग्दर्शक प्रारंभिक बोधकी आवश्यकता- मंगलाचरणमें केवल मंगलकी ही बात नहीं निरखना चाहिए, किन्तु इसमें यह भी देखो कि इस ग्रन्थके प्रारम्भमें जो मंगलाचरण रूपकी बात कही गयी है उनमें इतनी बात भी जाहिर होती है इसमें निमित्त क्या है, इसका हेतु क्या है इत्यादि जैसे इस ग्रन्थका प्रारम्भ किया है तो आपको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जब तक ग्रन्थके निमित्त हेतु नाम परिणम व कर्ता कौन है, क्या है, बात न ज्ञात हो तो इस ग्रन्थके बारे में कुछ विशद परिज्ञान नहीं हो सकता। जैसे अपने शरीर के बारेमें जितनी अधिक बातें ज्ञात हो उतना ही भेद विज्ञानमें इसे मदद मिलतीं हैं। मल, मूत्र, हड्डी, पीप, कैसे कैसे नसाजाल, अंग अवयव ऐसी विचित्रता अच्छी प्रकार ज्ञात हो तो लो ऐसे इस ढांचे से भिन्न यह ज्ञान प्रकाशमात्र जीव द्रव्य हूं ऐसा सोचने में विशेष स्पष्टता होती है। यों ही किसी उपदेश के बारेमें मंगलसहित और बातें ज्ञात हों तो उस ग्रन्थकी महिमा और उस ग्रन्थका वक्तव्य जानकर स्पष्टता रहती है। इस बातका भी वर्णन किया जायगा।

मंगल—अब प्रथम मगलकी बात देखिये। मगल नाम है जो मंगको ला देवे। मग मायने सुख। जैसे लोग कहते हैं हम तो चगेभगे हैं। चगे मायने स्वस्थ मगे मायने सुखी। जो मंगकोलादेवे उसे मंगल कहते हैं, अथवा जो पापों गला देवे पाप गलयति इति मंगल। लोग नमस्कार करते हैं तो तीन प्रकार के देवतावोंमें से नमस्कार करते हैं। कोई देवता इष्ट है, कोई अधिकृत है, कोई देवता अभिमत है इष्ट देवताके मायने वह जो जिसें अपने सुखमें रुच गया है, जो इसे लाभप्रद है वह है इष्ट देवता। अधिकृत देवता का अर्थ है कि जो अपनी कुल परम्परा से चला आया है। लोक परम्परामें प्रत्येक घरसे कोई एक विशिष्ट देवता मान लिया जाता है कि पहले उसकी मनौती करलें वह अधिकृत देवता है और अभिमत देवता वह है जिसे श्रद्धापूर्वक मानते हैं अपने कल्याण के लिए ज्ञानी जीवोंको तो जिनेन्द्र देव ही इष्ट देवता हैं। यह ही अधिकृत देवता है और यह ही अभिमत देवता है।

मगलाचरणका प्रयोजन व विधान – ग्रन्थोंकी आदिमें मंगलाचरण करनेके अनेक प्रयोजन होते हैं। प्रथम तो यह है कि यदि किसी प्रभुका स्मरण किया तो इसमें नास्तिकता नहीं रहती। श्रद्धा तो है, किसी देवकी ओर दृष्टि तो है, जोयथार्थ देव हो उस पर दृष्टि पहुँचे तो नास्तिकता दूर हो जाती है। दूसरी बात शिष्टाचार की पूरी होती है। तीसरी बात पुण्यकी प्राप्ति होती है, और चतुर्थ बात है उस कार्यकी निर्विघ्न माप्ति होती है। यद्यपि अच्छा काम करने के लिए कोई मंगलाचरण भी करे तो करे तो भी ठीक है। कुछ गलत नहीं है, क्योंकि अच्छा काम तो स्वय मंगलरूप है, उस मंगलके लिए क्यों मंगलाचरण करना। लेकिन जब श्रद्धा विशेष होती है तो मंगलीक कामके लिए भी मंगलाचरण किया जाता है। जैसे सूर्य स्वयं प्रतापी और तपस्वी है लेकिन नन्हा सा दीपक जलाकर सूर्यकी आरती लोग उतारते हैं। कोई पूछे कि भाई सूर्य तो स्वयं तेजस्वी है। तुम उसके आगे जरा सा दीपक क्यों जलाते हो? श्रद्धा तपस्वीसूर्यके आगे भी दिया जलवा देती है। समुद्र पानी से भरा हुआ है। फिर भी लोग समुद्रके बीच समुद्रका ही जल समुद्र को ही चढ़ाकर करता है तो यह भक्तिकी बात है। तो ऐसे हो मंगलीक जितने कार्य हैं उन कार्योंमें भी मंगलाचरण किया जाता है। तो यह ग्रन्थ सारा मंगलरूप है, क्योंकि इसमें मोह संकटोसे छुटकारा पानेका उपाय बताया है। इस ग्रन्थको बनानेके पहिले आचार्य देव यह मंगलाचरण कह रहे हैं।

त्रिविध नमस्कार—यहां जिनेन्द्रदेवको ग्रन्थकर्ताने नमस्कार किया है। नमस्कार तीन तरह से होता है— एक आशी: नमस्कार, एक वस्तु नमस्कार और एक नमस्कारके रूपसे नमस्कार। आशी: नमस्कार तो आशीर्वाद लेने अथवा आशीर्वाद देने का नमस्कार है। पर आशीर्वाद देनेकी हालतमें जिनके प्रति पूज्यता और बड़प्पन का भाव रहता है उनको नमस्कार किया जाता है। हे जिनेन्द्र! जयवंत हो। तो भगवानको अपने लोग आशीर्वाद दे रहे हैं हे भगवान जयवंत हो। भगवान तो जयवंत है ही, उनको जयवंत होनेका जो आशीर्वाद भक्त देता है, वह पूज्यतासे प्रभावित होकर देता है, छोटा मानकर नहीं देता है। उनके गुणोंको निरखकर मन ही मन प्रसन्न होना यह भी नमस्कार है और हाथ जोड़कर सिर नवाकर बचनों द्वारा विनय प्रदर्शित करना यह भी नमस्कार है।

मगलाचरणमें अनेक प्रतिबोधन—मंगलाचरणसे अनेक बातें और भी स्पष्ट हो जाती हैं। यह ग्रन्थकर्ता किस पद्धतिसे किस विषयको कहेगा यह बात उसके मंगलाचरण में ही झलक जाती है। जिस देवत्वको नमस्कार किया जा रहा हो उसके अनुकूल ही व्याख्यान होगा, यह बात पहिले से जच जाती है। मंगल दो तरहके होते हैं-एक मुख्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मंगल और एक गौण मंगल। मुख्य मंगलाचरण तो जो मंगलमय आत्मा है, संतोषपूर्ण विकासमय उन दोनोंके बीच विनय स्मरण में सब मुख्य मंगल हैं और लोकमें जो बात मंगलरूपसे प्रसिद्ध है, जैसे मंगल कलश रखना, वंदनवार दरवाजे पर बनाना ये सब गौण मंगल है। जैसे पूजापाठ विधानोंके अवसरमें लोग मुख्य मंगल भी अनेक करते हैं। सजावट करना, मंगलकलश उत्पन्न करना आदिये गौण मंगल भी होते हैं, और मुख्य मंगल तो है ही। मुख्य मंगल न पाकर तो इस गौण मंगल की कीमत नहीं है।

मंगलाचरणके लाभ—मंगलाचरण मंगलरूप अपना आचरण या मंगलमय प्रभुका स्मरण यह तो ग्रन्थकी आदि में ही क्या करना। आदि में करना, मध्यमें भी करना, अन्तमें भी करना, जब चाहे तब करना, और मंगलाचरण की जरूरत उत्कृष्ट धार्मिक कार्योंमें उतनी अधिक नहीं है जितनी अन्य कामोंमें प्रसंगमें है। धार्मिक कार्य तो स्वयं मंगलरूप हैं। घर गृहस्थीके अनेक काम-दूकान करना, मकान बनवाना विवाहकार्य प्रारम्भ करना और घरमें अनेक काम होते हैं उन सब कामों में उस प्रभुस्मरण की अत्यन्त अधिक आवश्यकता है, क्योंकि वे सब अमंगल काम हैं, और अमंगल कामोंमें हमारे आत्माकी सावधानी रहे एतदर्थ वहां मंगलकी अधिक आवश्यकता है। मंगलमयका आश्रय होनेसे अनेक विघ्न दूर हो जाते हैं, क्षुद्रदेव वहां विघ्न नहीं कर सकते हैं। अभीष्ट तत्त्वकी प्राप्ति होती है प्रभुको गुणोंका कीर्तन करने से। कोई छात्र विद्याभ्यास करता है तो उसे विद्या प्रारम्भके पहिले भी मंगल करना चाहिए, जिससे कि उसके कार्यमें कोई विघ्न न आये। मध्य मध्यमें भी मंगलाचरण करना चाहिये ताकि प्रगति हो और जब विद्याका फल फल पाया है तो उस कृतज्ञतामें भी मंगलाचरण करना चाहिए।

मंगलाचरणका उद्देश्य व प्रतीक—मंगलाचरणका उद्देश्य है कि उस मंगलमय ज्ञायकस्वरूप निज अंतस्तत्त्वको पहिचानूं, उसकी ओर दृष्टि बनाऊं, यही मात्र एक मुख्य प्रयोजन है, जो इस प्रयोजनकी ओर ले जाने का प्रतीक हो, जिसके देखनेसे हमें अपने आत्माकी सुध हो वह सब लोकके मंगल कहे जाते हैं। जैसे पूर्ण कलश पानीसे भरा हुआ हो वह घड़ा यह याद दिलाता है कि जैसे यह जलपूर्ण कलश भरपूर बीचमें जहाँ रंच भी शून्य नहीं रहा इसप्रकार भरा हुआ है ऐसे ही यह आत्मा ज्ञानरससे पूर्ण भरा हुआ है, बीचमें एक प्रदेशमात्र भी शून्यता नहीं है तो आत्माकी सुध दिलाने का कारण हो सकने से यह जलसे भरा हुआ कलश माना जाता है।

मंगल वन्दनमाला—वंदन माला जो घर पर लटकायी जाती है वह शब्द मात्रसे वंदनका स्मरण दिलाती है। उस बंदनमालाके नीचेसे जाय अर्थात् घरमें प्रवेश करे तो जिनेन्द्र देवका वंदन करें। जब नीचेसे निकले तब प्रभुकी वंदना करना चाहिए और जब घरसे बाहर निकले तो वंदनमालाके नीचे से ही निकलना होगा तब प्रभुकी वंदना करना चाहिए, इसी कारण अपने घरके मुख्य दरवाजेपर बंदनमाला लटकानेका अब तक रिवाज है। अब आधुनिक ढंगमें तो लोग नहीं लटकाते हैं, उससे पत्ते गिरेंगे, कभी कुछ कूड़ा होगा या कोई भाई पुराने टाइपके लोग कहेंगे बुद्धू कहेंगे इससे अब दरवाजे पर बंदनमाला नहीं लटकाते, पर यह पुराना रिवाज है और यह स्मरण कराती है कि तुम घरमें प्रवेश करो तो प्रभुवंदन करके करो। घरसे बाहर निकलो तो प्रभु बंदन करते हुए निकलो।

छत्रादिक मंगल—छत्रको भी लोग मंगल कहते हैं। यह छत्र भी सिद्धालयका स्मरण कराती है। सिद्धशिलाका का आकार क्षत्राकार है और उसके ऊपर सिद्ध भगवान विराजे हैं, तो सिद्ध प्रभुके स्मरणका एक जरिया होनेसे क्षत्र भी लोकमें मंगल माना जाता है। किन्तु यह सब गौण मंगल है। मुख्य मंगल तो अपनी आंतरिक श्रद्धासे जो प्रभुके गुणोंका स्मरण होता है वह कहा जाता है, उसमें भी प्रयोजन प्रभुका स्मरण है। और साक्षात् मंगल भी करते हैं उसमें भी प्रयोजन प्रभुके स्मरणका है।

निबद्ध मंगल—इस ग्रन्थ में जो यह मंगलाचरण है यह निबद्ध मंगल है। किसी ग्रन्थको बनानेसे पहिले नवीन बनाकर भी मंगलाचरण किया जासकता है या अन्य प्रसिद्ध किसी ग्रन्थका मंगलाचरण करके भी ग्रन्थ प्रारम्भ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किया जा सकता है। जो स्वयं मंगलाचरण बनाकर ग्रन्थका प्रारम्भ किया जाय उसे निवद्ध मंगल कहते हैं, और जो किसी ग्रन्थका मंगलाचरण करके अपनी रचना की जाय उसको अनिवद्ध मंगल कहते हैं।

मगलाचरणकी आवश्यकता—कोई जिज्ञासु ऐसा प्रश्न कर सकता है, कि मंगलाचरण करनेकी जरूरत क्या है? जो बात कहना है, उसे तुरन्त शुरू कर देना चाहिए उसके उत्तरमें कुछ लोग यह कह सकते हैं मंगलाचरण करनेसे विघ्नोंका नाश होता है। इस पर शंकाकार यह कह रहा है कि कोई मंगलाचरण करते हैं तो उनको भी विघ्न आ जाता है और कोई मगलाचरण न करें तो उनको भी विघ्न नहीं आता जिस कामको उन्होंने ठाना है उसमें वे सफल हो जाते हैं इसलिए नमस्कार मगलचरण करने को क्या जरूरत है? समाधान उसका यही है कि मंगलाचरणमें पुण्यकी वृद्धि है और कषायोंपर विजय होती है जिससे समता भाव प्रकट होता है और उस समता परिणामके साथ जिस रचना का हम प्रारम्भ करेंगे उसमें विघ्न न आयेंगे। विघ्न प्राय: दूसरे लोगोंसे नहीं आता है, किन्तु खुदके चित्तमें अधीरता हो जाय, खुदका ही चित्त किसी कषायसे भर जाय तो विघ्न आया करते हैं। तो मंगलाचरणसे कषायोंकी मंदता और समता का विकास पैदा होता है, इस तरह मंगलाचरण विघ्नोंका नाशक है, फिर मंगलाचरण करके तो पुण्यबंध किया। अब कदाचित् किसी कार्य में विघ्न आ जाय तो वह पूर्वकृत पापोंका ही प्रसाद है। यों तो देवनमस्कार और पात्र दान पूजा आदि कर्तव्योंके करने पर भी विघ्न हो जाते हैं। वहाँ यह जानना चाहिए कि यह पूर्वकृत पापों का ही फल है, धर्मदोष नहीं है। और जब कभी नमस्कार दान पूजा आदि किसी भी प्रकार का धर्म नहीं किया जा रहा वहां भी उनका कार्य निर्विघ्न होता हुआ दिखता है तो समझना चाहिए कि उनका पूर्वजन्मकृत्य: धर्मका फल है पापका फल नहीं है। यों मंगलाचरण आवश्यक है। उसी लोकनीतिको लेकर कुन्दकुन्दाचार्य देवने भी इस शास्त्रकी आदिमें यह मंगलाचरण किया है।

ग्रन्थका निमित्त—हाँ यह संकल्प किया गया था कि ग्रन्थके बारेमें ६ बातों पर प्रकाश अवश्य होना चाहिए। एक मंगल दूसरा निमित्त तीसरा हेतु चौथा परिणाम ५वाँ नाम और छठवां कर्ता। इन ६ बातोंमें से मंगलका तो वर्णन किया गया है, अब निमित्तका वर्णन सुनिये। यह ग्रन्थ रचना जो की जा रही है। इस शास्त्रोंकी जो रचना की जा रही है इसका निमित्त क्या है? वीतराग सर्वज्ञकी दिव्यध्वनि भी एक शास्त्र है, वह महाशास्त्र है, उसका कारण तो है भव्य जीवका पुण्य और उनकी ही बाँधी हुई जो तीर्थंकर प्रकृति आदिक पुण्य वर्गणाएं हैं उनका उदय। तो मूल निमित्त तो भव्य जीवका पुण्य है और हम लोगोंके बीच जो शास्त्र आए हैं इन शास्त्रोंका निमित्त गणधरदेव हैं। उनका निमित्त है भगवानकी दिव्यध्वनि। इस तरहसे इस विशुद्ध निमित्तकी परम्परा है।

ग्रन्थका हेतु—इस ग्रन्थकी रचनामें कारण क्या है। तीसरी बात पूछी जा रही है, तो कभी ऐसा होता है कि कोई साधुमहाराज किसी साधुपर या श्रावकपर प्रसन्न होकर उसके उद्धारके अर्थ, उसके प्रतिबोधन के अर्थ शास्त्रकी रचना करते हैं और उस शास्त्र रचनासे वे लाभ उठाते हैं, और जो जो उसका अध्ययन करते हैं वे भी सब लाभ उठाते है और जो जो उसका अध्ययन करते हैं वे भी लाभ उठाते है। यह पंचास्ति नामक ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य देवने शिव-कुमार महाराजको समझाने के लिए बनाया है। जैसे ज्ञानार्णव की शास्त्रकी रचना भर्तृहरीके प्रति बोधके लिए शुभचन्द्राचार्य ने बनाया है, तो यह इसका निमित्त हुआ।

ग्रन्थका फल:—अब इसके बनानेका प्रयोजन अथवा फल क्या है? फल २ प्रकारके हुआ करते हैं-एक प्रत्यक्षफल और एक परोक्षफल। ग्रन्थका प्रत्यक्षफल तो यह है कि ज्ञान दूर हो जाय। ग्रन्थका वक्तव्य सुनने से उसी समय क्या मिलता है? अज्ञान दूर हो गया वस्तु के स्वरूपका वर्णन किया तो वस्तुके विषयमें जो अज्ञान लगा था वह मिट गया। यह तो प्रत्यक्ष फल है और परोक्षफल अर्थात् बादमें होने वाला फल मोक्ष और स्वर्ग आदिक है किसी को स्वर्गकी प्राप्ति होती है किसीको मोक्षकी प्राप्ति होती है। जिसको अब स्वर्गको प्राप्ति हुई है उसको कुछ समय बाद मोक्ष की प्राप्त हो जायगी। यह तो मोक्ष हैं परोक्षफल और केवल स्वर्ग की प्राप्ति ही फल नहीं। मनुष्यों में भी सम्राट चक्री ऊंचे

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऊंचे कोई नायक हो जाना यह भी इस ज्ञान का फल है। इस तरह हेतु का वर्णन हुआ।

ग्रन्थका परिमाण और नाम:—परिमाण क्या है, अर्थात् कितने श्लोकप्रमाण इस ग्रन्थकी रचना है। इस पचास्तिकायग्रन्थमें कुल १७० गाथाएं हैं। १७० गाथा प्रमाण इस ग्रन्थका प्रमाण है, इस ग्रन्थका नाम रक्खा है पंचास्तिकाय। नाम दो प्रकारसे रक्खे जाते हैं। जिसका नाम रक्खा जा रहा है उसमें जो गुण हों उस गुणके अनुरूप नाम रखना और एक अपनी इच्छासे नाम रख देना। जैसे कोई है तो बड़ा कमजोर और नाम रख दिया बहादुरसिंह तो यह इच्छासे रक्खा हुआ नाम है। जैसे गुण है वैसा नाम धरना अन्वर्थ है। जैसे सूर्यका नाम तपन रक्खा है। सब कुछ उससे तप जाता है सड़क, मकान आदि सो यह अन्वर्थ नाम है। कोई है तो भिखारी और नाम रख दिया लक्ष्मीचंद अथवा कोई है तो धनिक और नाम रख दिया फकीरचंद तो यह अन्वर्थ नहीं हैं। इस ग्रन्थका नाम है पंचास्तिकाय। यह इच्छानुकूल रक्खा हुआ नाम नहीं है, किन्तु अन्वर्थ नाम है, इसमें ५ अस्तिकायों का मुख्यरूपसे वर्णन है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इनका मुख्य रूपसे वर्णन है, कालद्रव्यका भी इसमें वर्णन है यो छहों द्रव्योका वर्णन है पर मुख्यरूपसे जीवके लिए वर्णन करना था जीव अस्तिकाय है। अतः इसका नाम सब द्रव्योंका वर्णन करके भी अस्तिकायकी मुख्यतासे पचास्तिकाय है।

ग्रन्थका कर्त्ता:—अब छठवी चीज है कर्त्ता। इसका कर्त्ता कौन है। कर्त्ता ३ प्रकारके होते हैं। मूल कर्त्ता, उत्तर कर्ता और उत्तरोत्तर कर्ता। मूलकर्ता तो इस काल की अपेक्षा श्री वर्द्धमान भगवान है। आज जो कुछ भी जैन शासन का तीर्थ चल रहा है यह सब महावीर प्रभुका है। कर्ता महावीर स्वामी हुए। करीब ढाई हजार वर्ष हो गए हैं तथापि जब तक ऐसा यह धर्म चलेगा तब तक तीर्थ महावीर स्वामी का कहलायेगा। यह पचम काल है इसके अन्त तक जैन शासन रहेगा।

कुशल:—इसके बाद छठा काल आयगा। छठे कालमें लोकमें बिल्कुल अनाचार फैल जायगा। अग्नि नहीं रहेगी। रोटी बनानेका सिस्टम खतम हो जायगा। फिर लोग कैसे गुजारा करेंगे ? तो पशु लोग कैसे गुजाराकर लेते हैं। क्या कभी गाय बैल अपना पेट भरने के लिए रोटी पकाते हैं ? तो जैसे पशुवोंका जीवन चलता है वैसे ही मनुष्यों का जीवन चलेगा। मारना खाना बस यही जीवन रहेगा और इस जीवनका प्रारम्भ तो अबसे ही चालू है देखिये मछलियों को, बकरा बकरियोंको यों ही पकड़कर लोग मार देते हैं ये सारी चीजें छठे कालके स्वागतकी तैयारी की सूचक है। यह पंचमकाल है। इस कालके पहिले चतुर्थ कालके अन्तमें महावीर स्वामी हुए, और उनकी देशना की परम्परामें यह जैन शासन चल रहा है, तो मूल कर्ता तो समस्म दोषोंसे रहित केवलज्ञान केवलदर्शन अनन्तसुख अनन्तशक्ति से सम्पन्न भगवान महावीर है। और उत्तर कर्ता श्री गौतम स्वामी गणधर देव हैं। यह गणधर देव चारों ज्ञानके धारी थे, सातों ऋद्धियों के धारी थे। उत्तरोत्तरकर्ता तो अनेक आचार्य हुए हैं। इस ग्रन्थके रचयिता श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव उत्तरोत्तर कर्ता कहलाते है। इस प्रकार इन ६ ज्ञातव्योंका वर्णनमें अन्तिम ज्ञातव्यकर्ता का व्याख्यान किया है।

कर्ताकी प्रमाणतासे वचनकी प्रमाणता:—कर्ताके प्रमाणसे उसके वचन भी प्रमाणिक है। कोई किसी पुस्तकको लेकर पढ़ने बैठता है तो पढ़ने वाला उस पुस्तकके पढ़नेके पहिले यह जाननेकी जिज्ञासा करता है कि इस पुस्तकको लिखा किसने है बिना इस बातको जाने उसे उस पुस्तकके पढ़नेमें मन नहीं लगता है। पुस्तकके ऊपर किसी अच्छे लेखक का नाम पढ़ लिया तो वह उस पुस्तकको बड़ी उत्सुकतासे खरीद लेता है, क्योंकि उसके मनमें बैठ जाता है कि यह अच्छी ही पुस्तक होगी। ऐसे ही धार्मिक ग्रन्थोंके कर्ताका नाम मालूम हो कि इसे किसने बताया है तो यदि किसी योग्य प्रमाणिक व्यक्तिका नाम पड़ा है तब तो वह उस ग्रन्थको छुवेगा, उसे पढ़ेगा और यदि किसी योग्य प्रमाणिक व्यक्तिका नाम उसमें नहीं पड़ा है तो वह उसे न पढ़ेगा। कर्ता को प्रमाणिकता आनेमें वचनोंमें भी प्रमाणिकता आती हे। इस प्रकार नमस्कारके रूपमें यह प्रथम गाथा सम्पूर्ण हो रही है। इस मंगलाचरण के बाद अब आचार्य देव किस बातका वर्णन करेंगे, उस वक्तव्य विषयका संकेत देते हुए द्वितीय गाथाको कह रहें हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं स णिव्वाणं ।
ऐसो पणमिय सिरसा समयमियं सुणह वोच्छामि ॥२॥

सद् वचन रत्न—वीतराग सर्वज्ञदेवोंकी दिव्यध्वनिकी परम्परासे वीतराग श्रमणजनोंके मुखसे निकले हुए अर्थको अर्थात् वस्तुके प्रत्येक प्रतिपादित वचनोंको सिरसे प्रणाम करके मैं इस समयको कहूंगा, हे भव्य जीवो ! तुम उसको पूर्वक सुनों यह ऋषि संतोंका वाक्य चार गतियोंके दुःखका निवारण करने वाला है, और निर्वाण की प्राप्तिका उपाय-भूत है। प्रणाम करने के लिए वही कहा जाता है अथवा पूजा जाता है जिसके मार्गके अनुसार चलकर अपनेको सफलता प्राप्त होती है। ये प्रभु वीतराग सर्वज्ञदेव जिनकी मूर्ति स्थापित करके हम रोज पूजते हैं, अभिनन्दन करते हैं उन्होंने जो मार्ग अपनाया था अहिंसा महाव्रत सत्यमहाव्रत अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रहत्याग महाव्रत, इन ५ महान् व्रतोंसे और अनेक तपश्चरणोंसे अपने आत्माको संयत करके अपने आपके स्वरूपको केन्द्रित करके जिसने आत्मविकास पाया है उन प्रभुके मार्गपर जो चलेगा वही निहाल होगा।

सर्वज्ञोपदेशमें हितकारिताके कारण: आप सर्वज्ञदेवका उपदेश इसलिए हितकारी है कि उनके उपदेशमें वही बात कही गयी है। जिस बातका पालन करके उन्होंने स्वयं विकास पाया है। कोई नदी को पार करके दूसरे पार पहुंच जाय तो उसको अधिकार है कि वह उस पार खड़े हुए लोगों को मार्गका इशारा करे। इस रास्तेसे चलना तो तुम इस पार आ जावोगे। जो नदीमें कभी घुसा भी नहीं, देखा भी नहीं, उसे क्या अधिकार है कि मुसाफिरोंको बताये कि देखो इस रास्तेसे निकलना तुम उस पार पहुंच जावोगे। प्रभु अरहंत देव और वीतराग श्रमण साधुसंत जन यह मार्ग अपनाकर उस पार पहुंच चुके व जारहे हैं उनको अधिकार है कि हम सब संसारी प्राणियोंको एक मार्ग बताये कि इस मार्गसे जावो। श्रमणोंमें महाश्रमण तो है सर्वज्ञ वीतराग और साधुसंतजन भी श्रमण कहलाते हैं। यह आगम वास्तविक स्वरूपका प्रतिपादन करता है। यह यद्यपि अनेक शब्द रचनावों से भरा हुआ है तो भी इसके बनानेका मर्म केवल वस्तु स्वरूप है।

आप्तवचनोंके आश्रयका महत्त्व:—जो इस आगमके अनुसार अपनी प्रवृत्ति करते हैं उनके नरक, तिर्यंच मनुष्य और देव चार गतियोंका निवारण हो जाता है। अतः आगमका अध्ययन सफल है। साक्षात् फल तो यह है कि जब वस्तु स्वरूपपर दृष्टि पहुंचती है तो परतन्त्रता दूर हो जाती है, और शुद्ध आत्मत्व की उपलब्धिरूप निर्वाण की प्राप्ति होती है, स्वतंत्रता मिल जाती है। आचार्य देव कह रहे हैं कि इस ग्रन्थमें पदार्थोंका स्वरूप बतावेंगे। जिस स्वरूपको सुनकर आपका उपयोग ऐसा निर्मल होगा। ऐसे विविक्त आत्मत्वकी ओर अभिमुख होगा कि चार गतियोका भोगना छूट जायगा। आगममें मुक्तिका उपाय दिखाया गया है इस द्रव्यागमको प्रणाम करके तुम सुनों इस शास्त्रको प्रणाम करके मैं कह रहा हूं।

समयकी त्रिविधता—समय का प्रतिबोध तीन प्रकारसे है शब्दसमय, अर्थसमय और ज्ञानसमय। समयका मतलब है वस्तु। वस्तु इतना शब्द बोल दिया जाय तो यह हुआ शब्दसमय। जिस समय वस्तु शब्द एक कागजपर लिखकर आपसे पूछें कि बतावो यह क्या है? तो आप क्या कहेंगे ? यह वस्तु है। पर वह वस्तु तो नहीं है। वह तो लिखा हुआ है। वह शब्द वस्तु है। चीज उठाकर पूछें कि यह क्या है ? तो आप कहेंगे कि यह वस्तु है। यह है अर्थ वस्तु। और वस्तुके सम्बंधमें जो ज्ञान किया जाता है वह है ज्ञानवस्तु। प्रत्येक बात तीन प्रकार से होती है, शब्द अर्थ और ज्ञान। जैसे घर, घर भी तीन प्रकारसे हैं। शब्दघर, अर्थ घर और ज्ञानघर। घ और र ऐसे दो वर्ण लिखे जायें कागज पर और पूछा जाय कि बतावो यह क्या है ? आप कहेंगे घर है ? तो रह लो उस घरमें, रोटी बना लो। अरे वह तो शब्द घर है, और यह जो मिट्टी पत्थरका बना हुआ है यह क्या है ? यह है अर्थ घर, इसमें अर्थ क्रिया होगी। रह लो, ठहरा लो यह सब कुछ इस घर में होगा, और इस घरके बारेमें जो समझ बनी है, कि यह घर है ऐसी समझका भी नाम घर

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। यह समझ है ज्ञानघर।

अपना सम्बन्धित समय—अच्छा भैया ! यह बतलावो कि आपका प्रेम शब्द घरसे होता है यह था अर्थ घरसे होता है, या ज्ञान घरसे होता है ? वह प्रेम आपका शब्दघरमें है क्या जो कागज में घ और र लिख दिया इसमें प्रेम है क्या ? इस शब्दघरसे कोई प्रेम नहीं करता तथा यह ईंट चूनेसे उठा हुआ जो घर है इस घरसे तो प्रेम कोई कर ही नहीं सकता। यह आपका भ्रम है जो मानते हो कि हमारा घरसे प्रेम है, इस ईंट पत्थर से आपका प्रेम हो ही नहीं सकता, क्योंकि आप पृथक एक आत्मपदार्थ हैं। यह घर पृथक् पौद्गलिक स्कंध है। एक पदार्थका काम दूसरे पदार्थमें नहीं होता, आपका जो प्रेम पर्याय है, जो भीतरमें प्रेमरूप परिणमन होता है यह प्रेमरूप परिणमन आपमें हो सकता है, आपकी कोई परिणति, आपका कोई प्रेम आपको छोड़कर दूसरे वस्तुमें नहीं जा सकता है। यह पदार्थके स्वरूपकी विशेषता है। तो आप अर्थ घरमें प्रेम कर ही नहीं सकते। तब जितना भी आप प्रेम कर रहे हैं वह ज्ञान घरमें प्रेम कर रहे हैं, अर्थात् घरके बारेमें जो अपनेमें कल्पना बनायी है उस कल्पनासे आप प्रीति कर रहे हैं। ऐसे ही सभीमें घटा लो पुत्र तीन तरहके होते हैं-शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र, ज्ञान पुत्र। जो दो टांगका है आप के घरमें, जो उछलता, मचलता है वह है अर्थपुत्र। और पु और त्र एक कागजपर लिख दिया जाय तो वह हुआ शब्द पुत्र और पुत्रके बारेमें जो आपकी कल्पना हुई है, यह मेरा पुत्र है, इस प्रकारका जो ज्ञान बना है यह है ज्ञान पुत्र। अब यह बतलावो आपको प्रेम किस में है ? शब्द पुत्रमें तो है नहीं जो कागजमें लिखा है, और अर्थ पुत्रसे तो आप प्रेम कर ही नहीं सकते। यह आपका भ्रम है 'क जो यह मानते हो कि मैं अर्थ पुत्रसे प्रेम कर रहा हूँ। आपएक स्वतत्र पदार्थ हैं। यह आत्मा एक स्वतंत्र पदार्थ है। आपकी कोई भी परिणति आपका द्रव्य आपकी शक्ति आपकी पर्याय कुछ भी आपके प्रदेशको छोड़कर बाहर नहीं जा सकती है। यह है वस्तुका अटलस्वरूप, तो आपमें जो प्रेम होता है वह प्रेम आपके चारित्र गुणकी विकृत पर्याय है। वह प्रीतिरूप परिणमन आपमें ही समायेगा। आपसे बाहर किसी भी जगह आपका प्रीतिरूप परिणमन नहीं पहुँच सकता है। आप अर्थ पुत्र से कभी प्रेम कर ही नहीं सकते। चाहे आप कितना ही विकल्प करें और कितना ही आप अपना भाव बनाएं, अर्थ पुत्रमें आपका प्रेम कभी हो ही नहीं सकता। फिर आप कहेंगे-वाह सारी दुनिया पुत्रसे प्रेम कर तो रही है ? कोई नहीं कर रहा है। एक किसी पदार्थ का ख्याल बनाकर अपने आपमें जो कल्पना जाल रचा है उस कल्पना जालमें प्रेम किया जा रहा है, दूसरेमें कोई प्रेम कर ही नहीं सकता।

ज्ञानकी निकटता—भैया ! आपका निकट सम्बन्ध इस ज्ञानसे है, न शब्द से है न पदार्थसे है, पर काम तीनोंसे पड़ता है। शब्द घरके माध्यमसे अर्थ घर बताया जाता है ज्ञानघरकी प्रसिद्धि के लिए, याने उसे कल्पना जाल कैसा रच रहा है इस बातके बतानेका माध्यम शब्द है और वस्तुकी ओर संकेत है। ऐसे ही इस शास्त्रमें अर्थ समयका व्याख्यान होगा अर्थात् जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल इन ६ द्रव्योंका वर्णन चलेगा। किसलिए ? एक इस ज्ञानकी सिद्धिके लिए ? हम वस्तुके स्वरूपका सही ज्ञान करें और यथार्थ जानकर परद्रव्योंसे उपेक्षा करके अपने आपके निज अंतस्तत्वकी अनुभूति करें, इस वास्ते इस ग्रन्थमें ५ अस्तिकायों और ६ द्रव्योंका वणन चलेगा।

आगमका प्रसाद—इस आगमके प्रसादसे हम अपने यथार्थ मर्मको जाननेमें समर्थ हो जाते हैं और फिर रागद्वेष रहित होकर निर्विकल्प ज्ञानस्वभावमें ठहरकर चारों गतियोंके दुःखोंको दूर कर लेते हैं, उससे निर्वाणकी प्राप्ति होती है, निर्वाणमें ही अनन्त आनन्द है, इस कारण अनन्त आनन्दका कारणभूत होनेसे इस जैन शासनको नमस्कार करना बिल्कुल युक्त है। हमें प्रभुकी भक्तिमें प्रभुमें साक्षात् भक्ति तो करना ही है, पर प्रभुका जो उपदेश आदिक है उसे रुचिपूर्वक सुनना यह भी प्रभुकी भक्ति है और प्रभुके मार्गपर जो चल रहे हैं ऐसे साधुसंतोंकी सेवा करना यह भी प्रभुभक्ति ही है, हम आपको चाहिए कि प्रभुकी वाणीका प्रतिदिन कुछ न कुछ स्वाध्याय करें, सुने, और जो ग्रन्थ हमारी समझमें सुगमतया आ जायें उन ग्रन्थोंका स्वाध्याय करें। क्योंकि, ग्रन्थको लेकर बैठ जानेसे कोई सिद्धि न होगी, आपका दिल उचट जायगा, आप उसमें फिर उत्साहहीन हो जायेंगे। आप ऐसे ग्रन्थोंका स्वाध्याय करें जिससे आपको तत्काल बोध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो और सन्मार्गके लिए प्रेरणा मिले।

सदवचनश्रवणका लाभ—एक कोई पुरुष जैन धर्मसे ईर्ष्या रखने वाला यह नियम बनाये था कि मैं कभी भी जैन ग्रन्थोंकी बात न सुनूँगा अपने घरसे बाजरकी रास्तामें जाने से एक जैन मंदिर पड़ता था। वहाँ प्राय: सुबहके समय शास्त्र होता था। एक दिन वह बाजार जा रहा था तो जैसे मन्दिर के सामने कानोंमें अंगुलीं लगाकर निकलता था वैसे ही उस दिन भी निकल रहा था, ताकि कोई शब्द न सुन पड़ें। समयकी बात कि उसके पैरमें एक काँटा लग गया। उस काँटे को हाथसे निकालने के लिए वह बैठ गया। कानोंसे अंगुली हटाली तो उसे कुछ शब्द सुननेमें आ गए-क्या ? देवतावोंके शरीरकी छाया नहीं पड़ती है। भूतप्रेत आदिक भी देवता हैं इनके शरीर की छाया नहीं पड़ती। जैसे अपना लोग धूपमें या प्रकाशमें चलते हैं तो छाया पड़ती है ऐसी छाया उनके नहीं पड़ती, इतनी बात उसने सुन लिया और आगे बढ़ गया। भाग्यकी बात कि उसी दिन रातको उसके घरमें चार चोर आए चोरी करने और वे भूतप्रेत जैसा चेहरा बनाकर आये यह जताते हुए कि हम भूत हैं। पहिले तो वह डरा लेकिन बादमें उसने देखा कि इनकी तो छाया पड़ रही है, ये भूत नहीं हैं, ये तो चोर हैं। वह बलवान तो था ही। डंडा उठाया और सब चोरोंको भगा दिया। तो वह सोचता है कि एक दिन जैन शास्त्रके कुछ शब्द कानमें पड़े तो उसके फलमें आज हमने अपनी सम्पदाकी रक्षा करली, नहीं तो आज पूरे लुट जाते। हम तो भूत के डर से घर छोड़कर बाहर होते और ये सब कुछ लूट ले जाते। तो जैन शास्त्रोंको हमें प्रतिदिन सुनना चाहिए उससे हमें अनेक लाभ होंगे। फिर उसने जैन शासन ग्रहण किया और प्रतिदिन शास्त्र सुनने लगा।

जिनशासनका अपूर्व लाभ—अब आप पूछेंगे कि जैन शासनके जैन आगमके सुननेसे और अधिक लाभ क्या होगा, दूकान चल रही है, सब काम अच्छे चल रहे हैं, और लाभ क्या होगा, अरे और लाभ यह होगा कि आपको अपने आत्माके यथार्थस्वरूपका भान होगा, परद्रव्योंसे उपेक्षा होगी, अपने आपमें आत्ममग्नता होगी। भव-भवके कर्म झड़ेंगे, पुण्यरस बढ़ेगा, पापक्षय होगा। स्वर्ग और मुक्तिके निकट पहुंचेंगे। शान्ति संतोष आनन्द से भरपूर हो जायेंगे, इससे बढ़कर और क्या चाहिये है ?

दुःखका मूल कारण—जीवको दुखका कारण केवल एक मोह है, यह मोह अनेक विषयोंमें हुआ करता है। किसीका घरमें मोह है, किसीका इज्जत नाममें मोह है, किसीका यश कीर्तिमें मोह है, किसी का काम काजमें मोह है, लेकिन ये समस्त मोह इस मोही जीवको बरबाद करनेपर तुले हुए हैं। प्रथम तो हम आपका इस शरीरमें मोह है। एक इस शरीरमें मोह न रहे तो आपको किसी भी वस्तुमें मोह न रहेगा।

शरीर त्यागमें भी शरीरमोहकी संभवता—यहां प्रश्न किया जा सकता है कि जो सुभट जन विना वेतन वाले खुशी खुशी एक अपनी किसी की भक्तिसे संग्राममें लड़ते हैं, पुराणोंमें बहुत-बहुत लिखा गया है। बड़े बड़े संग्राम हुए, राम रावणके समयमें अनेक राजा अनेक सेवक मिल गये थे, क्या उन्हें वेतन दिया जाता था ? वे उल्टा अपना ही खर्च करते थे। सेवा सहित आकर किसी पक्षमें मिलकर वे लड़ाई लड़ते थे, संग्राम करते थे। संग्राममें अपनी जान तक गवा देते हैं। उन्हें तो शरीर का मोह नहीं है ना। उन्हें भी शरीरके मोहके कारण ही मोह होता है। वे अपने बारेमें शरीरमें दृष्टि लेकर ऐसा बराबर समझ रहे हैं। संग्राममें यदि जान चली जाय तो जाय पर नाम तो अमर रहेगा। किसका नाम ? इस शरीर को ही दृष्टिमें लेकर नामकी कल्पना की तो शरीर का ही तो सम्बध हुआ।

देशप्रेममें वलि होनेमें शरीरमोहकी सभवता—अच्छा यह भी बात नहीं हो, किन्तु यह हो कि हमारा देश सुरक्षित रहेगा, हमारे देशोपर किसी शत्रुका अधिकार क्यों हो, इस ख्यालमें भी सोचिए कि मूलमें शरीरका किस प्रकारसे मोह है—यह हमारा देश है, यह भाव तभी बनेगा जब इस शरीरको मानेंगे कि यह मैं हूं। देशके पीछे भी कुरबानी करनेमें शरीरके मोहकी बात आ ही गई है। जिसका जितना भी मोह किया जाता है वह सब शरीरके मोहके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आधारपर है। शरीरका मोह न रहे तो फिर किसी भी वस्तुमें मोह नहीं हो सकता है। इस कारण इस मोहके महान् संकटोंको मिटानेके लिए शरीरके मोहके त्याग करने का यत्न करें।

मोहत्यागकी भेदविज्ञानसाध्यता—मोह का त्याग भेद विज्ञानसे ही हो सकेगा। यह शरीर जड़ है। अनेक परमाणुवोंसे बना हुआ है। अपरमार्थ है, मैं आत्मा इस मूर्त शरीरसे न्यारा अमूर्त केवल ज्ञानघन हूँ। ऐसा अपने आपमें ज्ञानस्वरूप की प्रीति करना यह उपाय है शरीरका मोह त्यागनेका ये कामादिक चाहे करने पड़े, चाहे किसी ढगसे रहना पड़े, प्रत्येक परिस्थितिमें यह कर्तव्य है कि शरीर और उन वस्तुवोंसे कामोह छोड़कर अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप को देखो और उसे यह मैं आत्मा हुँ ऐसा मानो। ज्ञानभावनाके बिना यह मोह सकट दूर नहीं हो सकता है इसलिए इस ज्ञानभावनाको तब तक भाते जाइए जब तक इन शरीरादिक परद्रव्योंसे न्यारे न हो जावो।

अमृत तत्त्व—यह भेद विज्ञान एक अमृत है। लोग कहा करते है कि अमृत पी लो तो अमर हो जावोगे। वह अमृत कैसा होता होगा, कोई पेय पदार्थ पानी जैसा है या कोई फल जैसा है या सतुवा जैसा है, न जाने कैसा होता होगा। लोग कहते हैं कि उसके खा लेने से अमर हो जावोगे। अरे उसे खा लिया गया तो वह तो खुद मर गया। जो खुद मर जाये वह दूसरेको क्या अमर करेगा। अमृत मायने जो खुद न मरे। अरे अमृत कोई अन्य चीज नहीं है। अमृत तो एक ज्ञानभावना है। मैं ज्ञान मात्र हूं, ऐसी बराबर भावना करके अपने आपको मात्र ज्ञानस्वरूप ही अनुभवना इस ही का नाम है अमृतका पीना है, जो मरे नहीं वह है अमृत, अ और मृत, इसी को मिलाकर अमृत बना है। जो मर जाय उसका तो नाम मृत है और जो न मरे वह अमृत है। मेरे आत्माका जो सहज ज्ञानस्वरूप है वह ज्ञानस्रुप कभी भी नहीं मरता है। वह अनादि अनन्त सदा एक स्वभाव रूप रहता है, ऐसा अविनाशी एक स्वभावरूप ज्ञानतत्त्व का अनुभव करना यही वास्तवमें अमृतका पान करना है। इस अमृत तत्त्वका पान इस ग्रन्थमें कराया जायगा। एक निज शुद्ध ज्ञानस्वरूपकी भावनाका उपदेश होगा। अतः ऐसा अपूर्व लाभ देने वाले इस जिनेन्द्र उपदेशको मन, वचन, काय शुद्ध करके ध्यान पूर्वक सुनो ऐसा आचार्यदेव इस द्वितीय गाथामें कह रहे हैं।

समवाओ पचण्ह समउत्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ ख ॥३॥

शान्ति और अशान्तिका साधन—संसारके प्रत्येक जीव शान्ति चाहते हैं। शान्तिका जो सत्य उपाय है उस ही का नाम धर्म है। शान्तिका सत्य उपाय क्या हो सकता है इस सम्बधमें इस तरह विचार करो कि आखिर अशान्ति क्यों है। किन कारणों से हमें अशान्ति है? उन कारणोको न होने देना यही तो है शान्ति का उपाय और यही है धर्म जीवोको अशान्ति जो बात जैसी है उसको वैसा न मानकर उल्टा माननेके कारण है। अशान्तिका उपाय मिथ्याज्ञान है। पदार्थ मेरा नहीं है उसे मानें कि यह मेरा है तो वह तो मेरा रहनेका है नहीं क्योंकि मेरा है ही नहीं। भिन्न द्रव्य है, स्वरूप न्यारा है, यहां हम मान बैठे हैं कि मेरा है, तो जब उसका विपरीत परिणमन हुआ तो हम दुःखी होगे ही। दूसरी बात यह मन, यह उपयोग किसी पर पदार्थमें जाय तो इतने ही मात्रसे दुःख होने लगता है। पर पदार्थों में अपना उपयोग गया इसही में दुःख हो गया, वे चाहे अपने अनुकूल भी रहें पर उस उपयोगका जाना दुःखका कारण है। हमें ऐसा साधन मिले, ऐसी बुद्धि जगे कि पदार्थ जैसे हैं वैसे ही हमारे ज्ञानमें रहें, बस यही धर्म है, इसका विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थमें किया गया है।

वस्तु स्वातन्त्र्यः—संसारमें जितने भी पदार्थ हैं जो भी सत् है वे अपने ही स्वरूपसे सत् है, किसी दूसरे पदार्थका गुण शक्ति परिणाम उधार लेकर कुछ सत् नहीं होता, जो भी है वह अपने ही कारण अपने ही स्वरूपसे अपने ही आपमें परिपूर्ण रूपसे है, यही है वस्तुका स्वरूप। मैं आत्मा हूँ तो अपनेही अस्तित्व के कारण अपने ही स्वरूपसे अपने आप हूँ। किसी दूसरे पदार्थकी आशा और दया पर मेरा अस्तित्व नहीं हैं, ऐसे ही हम आप सब जितने भी जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं इनका सत्त्व अपने आपके कारण अपने आपमें परिपूर्ण रूपसे है।

पुद्गलोंकी स्वतंत्रता:—ऐसे ही जगतमें दिखने वाले ये भौतिक पदार्थ जिनका नाम पुद्गल है वे सब स्वयं सत् हैं पुद्गल शब्दका अर्थ है जो मिलकरके पूर जाय, बड़ा हो जाय और बिछुड़ करके गल जाय, खण्ड-खण्ड हो जाय छिन्न भिन्न हो जाय उसे पुद्गल कहते हैं। ये दृश्यमान सभी पदार्थ मिलकर बडे हो जाते हैं बिछुड़कर खण्डित हो जाते हैं। ये सब पुद्गल है इनमे वास्तविक चीज एक एक अणु हैं जो कभी मिटता नहीं है। ये स्कंध संयोग समूह स्कन्ध तो मिट जाते हैं ये पदार्थ नहीं हैं। इनमें रहने वाले जो एक एक अविभागी अणु हैं वे पदार्थ हैं, वे प्रत्येक परमाणु अपनेही स्वरूपसे अपने आपमें परिपूर्ण रूपसे हैं ऐसा पदार्थ का स्वतन्त्र स्वरूप है, इसी कारण किसी पदार्थका कोई पदार्थ मालिक नहीं। कोई भी जीव किसी भी पदार्थका कर्ता एव भोक्ता नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें अपना ही काम करते हैं।

परके भोक्तृत्वका अभव:—जिस समय हम आप भोजन करते हैं भोजनके समयमें जो भोजनके रसका ज्ञान हुआ उस रसमें है हमारा अनुराग सो हम उस रसके ज्ञानके कारण खुश हो रहे हैं। वहाँ हमने अपने ज्ञानको भोगा, भोंजनको नहीं भोगा है, क्योंकि मैं आत्मा अमूर्त हूँ। आकाश की तरह, उसमें भोजन चिपकता भी नहींहै। यह तो उस समय केवल ज्ञानका करने वाला रहता हे। यह मीठा है यह खट्टा है ऐसी यह केवल कल्पना बनाता है, साथ ही लगा है इसके अनुराग सो उस रागसे उस कल्पनाका सुख भोगता है. चीज का सुख नहीं भोगता है, प्रत्येक जीव केवल अपने भाव को करते हैं और अपने भावको भोगते हैं। कितना वैभव हो यह जीव वैभव को नहीं भोगता, किन्तु पूर्वकृत पुण्यका उदय है वह वैभव समागम निकट आया है. इस स्थिति में वैभवके सम्बन्ध में जो यह जीव कल्पना बनाता है, उचित है, बहुत है, कम है, मेरा है, उन कल्पनावों का कर्ता यह जीव है, बाह्यपदार्थो का कर्ता नहीं है। इन ही कल्पनावों को भोगने वाला यह जीव है, धन वैभव सम्पादका भोगने वाला यह जीव नहीं है।

स्वातन्त्र्यविज्ञानसे मोहविनाश:—प्रत्येक पदार्थ जिस रूपभी परिणमता है वह अपने स्वरूपमें परिणमता है, ऐसी स्वतंत्रताका जब ज्ञान होता हैं तो वहाँ मोह नहीं रहता है। मेरा दुनियामें क्या है ? यह देह तक भी मेरा नहीं है। ये राग और द्वेष जो मुझमें उत्पन्न होते हैं ये भी मेरे नहीं हैं, होते हैं और मिट जाते हैं। मैं तो शाश्वत रहने वाला सत् पदार्थ हूं। यो जब पदार्थका भली भांति ज्ञान होता है तो शान्ति मिल जाती है।

शान्तिमुद्रा—हमारे आदर्श प्रभु हैं। इन प्रभुकी मूर्ति शान्तिप्रधान मुद्रामें होना चाहिए। प्रभु मूर्तिके समक्ष उनकी शान्तमुद्रा निरखें। यद्यपि मूर्ति पाषाण की है, धातु की है पर हम केवल मूर्तिपर ही दृष्टि नहीं देते हैं। मूर्तिको नहीं पूजते हैं किन्तु जिनकी मूर्ति स्थापित की है उनका ख्याल करके उनहीको पूजते हैं। शान्तमुद्रा निरखने से मनमें यह भाव जागृत होता है, ओह ! शान्ति है तो इस अवस्थामें है। जब तक पर पदार्थकी कल्पनाएँ चलती रहेंगी, व्यग्रता बनी रहेगी। ये प्रभु पूर्वमें सम्राट थे, तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे, हजार हजार इन्द्र और देवेन्द्र राजा महाराजा सभी उनकी सेवामें रहा करते थे किन्तु वहां उन्होने वास्तविक सुख नहीं पाया है इस कारण वे सबसुखसमृद्धि त्यागकर एक आकिञ्चन्य केवल ज्ञानस्वरूपमें उपयोग लगाने लगे, शान्त अपने आपमें मग्न हुए। शान्तिका मार्ग तो यही है। इतनी बात जब अपने मनमें उत्पन्न होती है तो आप अनुभव करने लगेंगे कि शान्ति मिलती है अथवा नहीं।

आत्मसयमनमें आनन्द:—बाह्य पदार्थोमें हमारे तृष्णा जगे, रागद्वेष जगे तो वह अकल्याणके ही लिए है। उससे सुख नहीं मिल सकता है हम किसी भी परिस्थितमें हो कही बैठे हो, लेटे हो, जिस क्षण भी आंखे बन्द करके समस्त इन्द्रियोका व्यापार रोककर बाह्य समस्त पदार्थोंसे अपने को भिन्न निरखकर जब ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभवेंगे उस समय जो आनन्द मिलेगा उस ही आनन्दमें यह सामर्थ्य है कि भव-भवके पापकर्मो को दूर कर देंगे। इसका उत्थान इसके परिणामोंके आधीन है। किसी दूसरे से मिन्नत करके, प्रार्थना करके चाहें कि कोई दूसरा मेरा उत्थान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करदे तो वह नहीं कर सकता है प्रभुका तो यह उपदेश है कि हे भव्य जीवों यदि तुम शान्ति चाहते हो तो मेरा भी ख्याल छोड़ो मानो प्रभुकी ओर से यह सन्देश है, यद्यपि पहली अवस्थामें मेरा ध्यान मेरी शक्ति करोगे तो तुम्हें सहारा मिलेगा लेकिन यह भी एक रागकी परिणति है ध्यानभी करता रहेगा कोई भक्त तो वह उत्कृष्ट समाधिमें नहीं आसकता क्योंकि उसकी दृष्टिमें कंसे आ गया. मैं पूछ रहा हूँ भगवान को इस भक्तका उपयोग अन्य जगह बना है इस कारण उत्कृष्ट समाधि उसे नहीं मिलती है प्रभुका तो यह उपदेश है कि उत्कृष्ट शान्ति यदि चाहते हो तो मेरा भी आलम्बन छोड़ दो और एक शुद्ध ब्रह्मस्वरूप का आलम्बन ग्रहण करो।

स्वयंमें विधान – जब पदार्थका स्वरूप विदित होता है तो शान्तिका मार्ग मिलता है। इसी कारण जैन दर्शनमें अध्यात्मकी प्रधानता है। जो पदार्थ जिस तरह का है उस तरह से वर्णन करने की इसमें प्रधानता है। जैन दर्शन कोई नियम अलगसे बनाकर या कोई बात अलगसे बनाकर या कोई बात अलगसे गढ़कर भक्तोंसे पालन नहीं कराता है किन्तु भक्तको स्पष्ट बताता है कि तुम देख लो, सोच लो, जान लो कि पदार्थ किस स्वरूपमें है। तुम क्या हो और किस चक्रमें पड़े हो, कौन से बन्धन लगे हुए हैं। वे बन्धन कैसे लगे है, उनसे छूटनेका उपाय क्या है ? सब कुछ विचार लो, इन सबके चिन्तवनसे तुम्हें मदद मिलेगी। करता है अपनेमें अपना ही काम अपनी शान्तिके लिए।

सत् सेवा – लोग कहा करते हैं कि भगवान घट-घटमें विराजमान है। वह घट-घट क्या है ? हम आप सब इन सबमें जो विराजमान भगवान है, प्रभु है, ऐसी प्रभुता हम आप सबमें मौजूद है। प्रभुके गुणोंका स्मरण करके और प्रभुके पथ पर जो चल रहे है, ऐसे साधुसंतोंकी सेवा करके हम अपने आपमें अपने अंतस्तत्त्वको देखें, इसकी उपासनामें रहें, यही है शान्ति पानेका उपाय। यह शिक्षा हमें देव, शास्त्र, गुरु की सेवासे मिल जाती है। ऐसी प्रभुता पानेका जो उद्यम करता है रागद्वेषको तजकर समता भावसे जो रहा करता है जिसका ज्ञान ध्यान और तपस्या ही प्रयोजन है, सदा इस शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव पर ही दृष्टि दिया करता है, ऐसे साधु सतोंकी हर प्रकारसे सेवा करके एक उत्साह जगता है कि हम भी विकल्प त्यागकर निर्विकल्प ज्ञानानन्दघन परम अमृत रसका पान करें तो सुखी होंगे। यदि वैभव सम्पदा में ही निरन्तर ध्यान बनाये रहे तो उनकी बुद्धि व्यग्र हो जायगी, और कुछ क्षण सारे परिग्रहका बोझ उतारकर अपने ज्ञानसे अपने आपमें से इन सब वैभवोंका परिग्रहोंका बोझ उतार दें और केवल ज्ञान ज्योतिस्वरूप अपनेको निहारलें तो उससे कल्याण होगा समझिये।

बहुप्रदेशीमें अस्तिकायपना—इस ग्रन्थका नाम है पञ्चास्तिकाय, ५ अस्तिकाय हैं। अस्तिकायका अर्थ है बहु प्रदेशी पदार्थ। जैसे जीव, यह अंगुलीसे लेकर सिर तक बड़े विशाल क्षेत्रमें फैला हुआ। यह एकप्रदेशी नहीं है, एक-प्रदेश नाम है सबसे छोटे आकाशके हिस्सेका, जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके। जैसे एक इंच है तो अभी १० हिस्से उसके और हो सकते हैं एक सूत भरके १० हिस्से और हो सकते हैं। यों हिस्से करके जो अविभागी हिस्सा रह जाय, जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके उसे कहते है एक प्रदेश। जो बहुप्रदेशी हो उसे अस्तिकाय कहते हैं। ये पदाथ, ये भौतिक सब चीजें ये बहु प्रदेशी हैं, ये अस्तिकायें हैं।

धर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल ये सब गमन करते हैं तो इनके गमनमें सहायक जो एक सूक्ष्मस्कंध है धर्मद्रव्यनामका वह सहायक होता है। वह समस्त लोकमें फैला हुआ है। यदि ऐसा ईथरतत्त्व न हो, धर्मद्रव्य न हो तो हम आप चल फिर न सकें। हम आप अपनी ही शक्तिसे चलते हैं पर जैसे मछली में चलने की क्रिया बिना जलके नहीं आ सकती ऐसे ही बिना धर्मद्रव्यके हम आपमें चलने की क्रिया नहीं आ सकती। मछलीके चलने में जल प्रेरणा नहीं करता, पर जलके निमित्त से मछलीमें चलने की शक्ति आ जाती है। जल मछलीको चलानेमें सहायक है। स्पष्ट दीखता है कि जलके बिना मछली नहीं चलती है ऐसे ही लोकमें हम आप जीव और पुद्गल अजीव जाना क्रियाएं कर रहे है। ये सब अपने आपके परिणमनसे अपनी शक्तिसे क्रियाएं करते है, ठीक है, फिर भी यदि धर्मद्रव्य न हो तो हम आप चल नहीं सकते है। हमारे ऋषि संतोंने अपने ज्ञानसे यह सब कुछ बताया है और इस सम्बन्धमें वैज्ञानिक लोग भी ऐसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्भावना करते हैं।

अधर्मास्तिकायादिकः— इस ही तरह चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरना चाहते हैं तो उनका निमित्त सहायक अधर्मद्रव्य है, यह भी लोकाकाश भरमें व्यापक है, असंख्यात प्रदेशी है, यह भी अस्तिकाय है। आकाश यह भी अस्तिकाय है, बहुप्रदेशी है, असीम है, एक काल नामका द्रव्य जो एक-एक प्रदेश पर एक-एक ठहरा हुआ है, वह एक-एक प्रदेश ही है, वह अस्तिकाय नहीं है यों ६ जातिके पदार्थ इस दुनियां के अन्दर हैं।

छह द्रव्य जातियां—जीव जाति वे पदार्थं इनमें जितने भी जानने देखने की शक्ति रखने वाले पदार्थ हैं वे सब जीव जाति में आ जाते हैं। पुद्गल जाति के पदार्थं जितने भी जो पदार्थ रूप रस, गंध, स्पर्श वाले हैं, चाहे वे हमें मालूम पड़े या नहीं, पर जिनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं वे सब पुद्गल जाति के पदार्थ हैं। काम में ये दो ही पदार्थ आ रहे हैं अधिक-जीव और पुद्गल। फिर धर्मद्रव्यकी जाति का पदार्थ एक ही है, वही जाति है, वही व्यक्ति है, धर्मद्रव्य नामका पदार्थ भी एक ही है और काल नामक द्रव्य एक-एक परिपूर्ण यों असंख्याते है। आकाश असीम है। ये समस्त पदार्थ अपने आप ही स्वयं अपना परिणमन करते हैं। पदार्थ का ऐसा स्वरूप है।

मूल श्रद्धानका परिणम—भैया ! वस्तु की स्वतन्त्रता जब ज्ञात होती है तो यह जीव मध्यस्थ हो जाता है। किस में राग करना। किसी पदार्थ में क्यों राग करना। ये पदार्थ मुझ से भिन्न हैं, इनका मुझ से सम्बन्ध नहीं है। मेरे परिणमन करने से ये परिणमते नहीं है। मैं इनसे न्यारा हूँ, ऐसा अपने आपकी ओर ही यह रहता है। रागद्वेष नहीं करता। प्रयोजनवश चूंकि पर गृहस्थीमें कमाना भी पड़ता है रागद्वेष भी आता है तिस पर भी धन्य है वह ज्ञानी गृहस्थ जो अपने अन्तरंगमें यह समझ रहा है कि ये सब पदार्थ असार और भिन्न हैं, किन्हीं पदार्थोंपर मेरा स्वामित्व नहीं है। रक्षा करते हुए भी, संचय करते हुए भी उनको अपनेसे भिन्न मानना यह यह कितना स्वच्छ ज्ञान है और इस ज्ञानके प्रतापसे यह जीव सुखी रहता है।

त्रिविधसमयका समन्वय—कल गाथामें समयका अर्थ टाइम नहीं किन्तु समय मायने समवाय समूह। इस ग्रन्थमें शब्द समवाय के द्वारा इस ज्ञानस्वरूप ज्ञानसमवायकी प्रसिद्धिके लिए पदार्थसमूह का वर्णन किया जायगा। हम किन्हीं भी पदार्थोंको जानेंगे तो उसका माध्यम शब्द है। उन शब्दोंके द्वारा हम समझाते हैं, समझते हैं और अपने अन्तरंगमें इन शब्दोंका अन्तर्जल्प भी करते हैं और मिथ्यादर्शनका विनाश होने पर हमें पदार्थका सही सही बोध हो जाता है इसका नाम है ज्ञान समय और जिन समग्र वस्तुवोंका बोध किया जाता है ये सब हैं अर्थ समय। यों पदार्थका स्वरूप जानना सही जानना अत्यन्त आवश्यक है। कोई पुरुष अपने धर्म में हुए किन्हीं पुराण पुरुषोंका सम्बध भी न रक्खे, उनका ध्यान उपासना भी न रक्खे और यहाँ जो कुछ वस्तु है उस वस्तुके सही स्वरूपके जाननेमें रत रहे तो वह भी धर्मपाल रहा है। रूढ़िवाद या दादावाक्यं प्रमाण का स्थान नहीं है। जो यथार्थ बात हो उसे जान लो, इस ही का नाम धर्म है।

आत्मपदार्थ—मैं क्या हूं ? कोई एक ज्ञान वाला पदार्थ हूं। यह मैं कहां से आया हूं ? लोग तो यों जानते हैं कि यह कुछ दिनों को ५० वर्ष से ६० वर्ष से जिसकी जितनी आयु है यह आया है। अरे इतने वर्षों से उस मनुष्यभव में आये हैं, किन्तु इससे पहिले भी मैं कुछ सत् था, अचानक कहीं से किसी दिन आ गया होऊ यह बात नहीं है। कुम्हार घड़ा बनाता है तो उस घड़े का उपादान जो मिट्टी है वह तो पहिले से थी। कोई भी चीज बन उसका उपादान भूत कुछ न कुछ किसी भी रूपमें पहिले से होता ही है। जो एकदम असत् है, है ही नहीं उसका सत् क्या बने। जो नहीं है इसमें से किसी जाति का सत् बने यह व्यवस्था ही नहीं है।

समवाय में असमवाय—समस्त पदार्थ लोक और अलोक दो भागों में विभक्त है। लोक में तो सब कुछ आ गया और अलोक में केवल आकाश ही आकाश है। यों इतना ऊपर लोकाकाश के बीच यह लोक है। इस लोक के बीच मध्यलोक है, जिसमें हम आप बस रहे हैं। यह सब पदार्थों का झमेला चल रहा है जिसपर भी कोई पदार्थ किसी

http://sahjanandvarnishastra.org/

दूसरे पदार्थरूप बनकर नहीं रहता है। ऐसी स्वतन्त्रता का ज्ञान हो जाय इसी के मायने है धर्म पालन।

विवेक और विवेकका लाभ—धर्मपालन से फल क्या मिलता है? मैं सब पदार्थों से जुदा अपने आपकी श्रद्धा कर रहा हूं और मैं ज्ञानसे रचा गया हूँ, आनन्द से रचा गया हूँ सो ज्ञान और आनन्द ही मात्र अपने को जान रहा हूँ, और ऐसा सबको जानता हुआ निजमें रम जाऊ मग्न हो जाऊं, अन्य किसी पदार्थ में मैं न मग्न होंऊ तो यही इसका सच्चा आचरण है। ऐसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रसाद से यह जीव संकटों से छूटता है, और अपने शुद्ध आनन्दको भोगता रहता है। सभी जीव शान्ति चाहते हैं। शान्ति होगी भेदविज्ञान से। मैं सबसे न्यारा हूं, अकिम्चन हूँ, मेरा कहीं कुछ नही है। ज्ञानानन्द स्वरूपमात्र अपने आपको जानें तो शान्ति मिलेगी। किसी पर पदार्थ की पकड़ करे तो उसे शान्ति नहीं मिल सकती है। इस शुद्ध लाभका प्रयोजन भगवानकी मुद्रासे मिल जाता है। हम बड़ी शुद्ध निगाह से प्रभूके दर्शन करें और अपने आप में यह भाव भरें कि हे प्रभू! मेरा कब वह समय आये कि सर्व विकल्प कल्पना जालों से छूटकर केवल आत्मारामसें ही मग्न होऊँ।

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आयास।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइआ अणुमहता ॥४॥

अस्तिकायत्व—इस गाथा में ५ अस्तिकायों की जाति के नाम बताये गये हैं, जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। ये ५ अस्तिकाय हैं। ये अपने-अपने अस्तित्व में नियत है और अपने अस्तित्व से अभिन्न है, अर्थात् उन की सत्ता सदा उनसे जुदी नहीं है। कहने में आता है कि जीवमें अस्तित्व है पर इस तरह नहीं है जैसे कि मटके में दही है, मटका न्यारी चीज है, दही न्यारी चीज है, इस तरह न जानना कि जीव एक अलग बात है और उसमें अस्तित्व भरा है। जीव है इस ही विशेषताका नाम जीवका अस्तित्व है, जैसे इस पुस्तकमें अस्तित्व क्या है? क्या यह पुस्तकसे अलग है? तद्रूप है। तो सभी पदार्थ अपनी सत्तामें तन्मय है, इसमें जो अनेक प्रदेश हुये उन्हें अस्तिकाय कहते हैं, कालद्रव्य सिर्फ एक प्रदेशी है, लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य ठहरा है। वह एकप्रदेशी है और परमाणु भी एक प्रदेशी है लेकिन उसे अस्तिकायमें गिना है। कालद्रव्य भी एक प्रदेशी है, उसे अस्तिकाय नहीं गिना। परमाणु एक प्रदेशी है उसे अस्तिकाय उपचार से गिना है, वास्तवमें नहीं है, याने अनेक कालद्रव्य मिलकर एक स्कन्ध बन जायें यह नहीं हो सकता और अनेक परमाणु मिलकर एक स्कन्ध बन जायें यह हो जाता है तो स्कंधों की दृष्टि से पुद्गल को अस्तिकाय कह दिया।

विभावव्यञ्जनपर्यायमें पृथक पृथक अस्तिकायपना—जीव द्रव्य अर्थात् जो कुछ भी चैतन्यस्वरूप है वह जीव अस्तिकाय है। कैसा यह एक पिंडरूप विलक्षण पदार्थ है कि जो बिखरता नहीं है, चैतन्यस्वरूप है एक अखण्ड रहता है, चिदात्मक है, जिसमें ज्ञानका परिणमन चलता हैं और रागादिक भावोंका भी परिणमन चलता है। कभी रागादिक भाव भी होते हैं जिनमें ये सब भावात्मक विकास विकार हो रहे हैं। वही जीव है जो जो कुछ यह दृश्यमान है और जो दृश्यमान हो सकता है यह सब पुद्गल अस्तिकाय है जीवको जीवसे कोई हानि नहीं होती। इस जीव में पुद्गल मिल जाय, जीवके विकार में पुद्गल तत्त्व आये तो उससे जीवकी हानि है। जीव-जीव कई मिलकर एक पिंडमें नहीं आते, पर जीव और पुद्गल ये मिलकर कभी एक पिंड में आ जाते हैं। यद्यपि परमार्थ दृष्टि से जीवमें पुद्गल नहीं पुद्गलमें जीव नहीं, पर बन्धन दिख रहा है कि जीव शरीर कर्म ये तीनों पर्यायरूपमें एक बन्धन रूप हैं। पर एक जीव दूसरे जीवसे मिलकर बन्धन रूप हो जाय यह नहीं होता है।

जीवसंभ्रम—अब जीवका भ्रम देखिये। जीव कभी दूसरे जीवसे एक हो नहीं सकता व्यवहार दृष्टि से भी। लेकिन इस जीवको जीवमें मोह है। पुद्गलसे भी बढ़कर जीवका जीवमें मोह है, स्त्री पुत्रादिकमें मोह है, तो घर वैभव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सभी में मोह होना पड़ता है, तो जैसे जीवसे कभी कुछ भी सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, अत्यन्त न्यारा रहता है उसमें कितना व्यामोह है, जीवको अन्य जीवमें व्यामोह होने का कारण है कि इस जीवको अपने शुद्ध स्वरूप का परिचय नहीं है। यह अपने को भी यथार्थ जीवस्वरूपमें मानता नहीं है, इसेखुद अपने आपमें भ्रम है। यह शरीररूप अपने को मानता है या जो विचार विकल्प तर्क वितर्क उत्पन्न होते हैं उनरूप अपने को मानता है। कभी जड़रूपभी अपने को मानता हैं। जब अपने स्वरूप का परिचय ही नहीं है तो उसे अपने में सतोष कैसे होगा जब सतोष इसे हो नहीं सका और संतोष इसे चाहिये है तो अब यह बाहरी पदार्थों में संतोष ढूंढता है। बस उन बाहरी पदार्थों में हमारे सरीखे ये जीव हैं, जिन के वचन सुनकर प्रीति बढ़ाते हैं, और ये पुद्गलद्रव्य चूकि ये हमारे इन्द्रियज्ञानमें आश्रय है, विषय साधनों के आश्रय है अतएव इनमे मोह होता है अपने आपका परिचय न होना ही पर पदार्थों में व्यामोह होनेका कारण है। हम आपका निकट सम्बन्ध व्यावहारिक सम्बन्ध जीव और पुद्गलसे है। धर्मद्रव्य की कौन खबर रखता है।

निष्क्रिय और सक्रिय द्रव्य व क्रियाका निमित्त:—न धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये विपरीत हैं जीव और पुद्गलसे। जो क्रियाशक्ति हो वे दोनों द्रव्य है जीवऔर पुद्गल अन्यद्रव्य न चलते है न गतिपूर्वक ठहरते हैं। जीव में क्रिया है और पुद्गलमें क्रिया है। जीव और पुद्गल की क्रिया में जो उदासीन निमित्त है वह धर्मद्रव्य है। धर्मद्रव्य लोकाकाश मे स्थिरतासे व्याप्त है। जैसे पानी मछली को चलानेमे सहायक है, पर पानी चलकर मछली को चलानेमें सहायक हो सो नहीं। इस प्रकार धर्मद्रव्य पुद्गलके गमनमें सहायक है, पर यह खुद चलकर जीवको चलाता नहीं है। धर्मद्रव्य अमूर्तिक है, खुद जानता नहीं है, ऐसा जाव नहीं है, धर्ममें रूप, रस गंध स्पर्श नहीं है इस कारण पुद्गल भी नहीं है। पुद्गल होता है रूप, रस, गंध, स्पर्श वाला। यह धर्मद्रव्य अमूर्तिक है और अपने स्वरूपमे निरन्तर परिणमता रहता है। वह किस तरह परिणमता है यह बताने के लिये कोई शब्द नहीं है। आगममे बताया है कि षड्गुणवृद्धिहानि रूपसे परिणमता है। एक यह वैज्ञानिक तथ्य है कि कुछ भी चीज किसी दूसरे रूप बदले तो उस बदल के समय बहुत उथल पुथल होती है। अनेक बार वृद्धि और हानि होती है। एक सकल से दूसरी सकल तक पहुँचने में अनेक वृद्धि हानियाँ हो जाती हैं। वे कभी तो समझमे आती है कभी नहीं आती है। तो यो धर्मद्रव्य निरन्तर प्रतिसमय परिणमता रहता है और उसका वह परिणमन अपने अगुरुलघुत्व वृद्धि हानिरूप है। कवल अन्दाजसे यह जान लो कि कोई भी चीज चाहे समान रूप परिणमे और चाहे असमान रूप परिणमें पर प्रत्येक परिणमन के लिये यह षड्गुण हानि वृद्धि होती है, एक बहुत बड़ी उथल-पुथल हो जाती है जो हम आपको विदित नहीं हो पाती।

अधर्मास्तिकाय—अधर्मद्रव्य चलते हुये जीव पुद्गलके ठहरने में सहायक है। अधर्मद्रव्य का स्वभाव दूसरा है, धर्मद्रव्यका स्वभाव दूसरा है, पर जैसे धर्मद्रव्य अमूर्तिक है ऐसे ही अधर्मद्रव्य अमूर्तिक है, जैसे धर्मद्रव्य लोकाकाश में व्याप्त है ऐसे ही अधर्मद्रव्य लोकाकाश में व्याप्त है। जैसे धर्मद्रव्यका षड्गुण हानि वृद्धिरूप परिणमन है ऐसे ही अधर्मद्रव्यका षड्गुण हानि वृद्धि रूप परिणमन है। सारी बात एक समान होकर भी निमित्त भेदसे भेद है। धर्मद्रव्य तो जीव और पुद्गल के गमनमें सहकारी है और अधर्मद्रव्य जीव और पुद्गलको ठहराने में सहकारी है। ये पदार्थ ऐसे नहीं हैं कि इन्हें लोग जल्दी जान जायें इन्हें तो साधु संतों ने अपने ज्ञान से समझकर बताया है।

आकाशास्तिकाय—५वाँ अस्तिकाय है आकाश। आकाश अवस्तुका नाम नहीं नथिंग नहीं, किन्तु वह सत्तात्मक है। उसमें परिणमन है। उसका प्रदेश है। यों जल्दी दिखने में लगता है कि आकाश तो इस पोलका नाम है जहाँ कुछ नहीं है, उसी का नाम आकाश है, पर आकाश कुछ नहीं का नाम नहीं है। आकाश अमूर्तिक है, अनन्त प्रदेशी है। उसमें भी निरन्तर परिणमन होता रहता है, वह सद्भूत चीज है। यह आकाश एक है, जितने आकाश के क्षेत्रमें जीव पुद्गल आदि सभी द्रव्य रहते हैं उसका निमित्त है लोकाकाश। और जहां सभी द्रव्य नहीं हैं केवल वही आकाश है उसका नाम है अलोकाकाश।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लोकाकाश का प्रमाण—लोकाकाश का प्रमाण ३४३ घनराजू है। जहां हम बसते हैं यह जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजन के विस्तार का है। २ हजार कोशका एक योजन होता है, उससे दूना एक तरफ समुद्र है। समुद्र इस द्वीपको घेरे हुये है। सभी द्वीप समुद्र अपने-अपने पूर्ववर्ती द्वीप समुद्रको घेरे हुए है। उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र, उससे दूना द्वीप उससे दूना समुद्र यों चलते जाते हैं. और ऐसे द्वीप समुद्र हैं अनगिनत। गिनती की जहां तक हद है अनुमान रूपसे भी उससे भी ज्यादा। अब कितना विस्तार हो गया। इतना सारा विस्तार एक राजू अभी नहीं है एक राजू से थोड़ा कम है, ऐसा एक राजू तो एक ओर रहा एक ही राजू मोटा हुआ, एक ही राजू चौड़ा हुआ, एक राजू लम्बा हुआ इतने का नाम है एक घन राजू। ऐसे-ऐसे ३४३ घन राजू प्रमाण लोक हैं और इससे बड़ा लोकाकाश है, जब कोई ठोस चीज है तो उस ठोस चीजका कहीं न कहीं अन्त जरूर है। ठोस चीज असीम नहीं हो सकती। जब यह पृथ्वी ठोस है तो इसका कहीं अन्त जरूर है। यह सारा विश्व समूह ठोस है, बीचमें पोल भी है। यह ठोस चीज पडी हुई है तो इसका कहीं न कहीं अन्त अवश्य है। जिसके आगे कोई ठोस न मिले उतना है लोकाकाश और उसके बाद है अलोकाकाश इस लोकमें ठीक बीचो बीच एक त्रसनाली है। यह एक राजू प्रमाण मोटी, १४ राजू लम्बी है, इसके आसपास बाकी ३४३ में से १४ राजू घटाने पर ३२९ घन राजू जो बचता है क्षेत्र उसमें केवल स्थावर जीव हैं, त्रस जीव नहीं, उस त्रसनाली में जो ठीक मध्य क्षेत्र है असख्यात द्वीप समुद्र वाला उसमें केवल ढाई द्वीपमें मनुष्य है, उसके बाहर तिर्यञ्च हैं। ऐसी यह विराटरचना लोककी प्राकृतिक है।

लोककी स्वत.सिद्धता—इस लोक को कोई बनाने नहीं आता। जब यह बात समझमें नहीं आती तब लोग यह कह देते हैं, क्योंकि प्रभु अनन्त सामर्थ्य वाला है ना, इसे भगवानने बनाया। एक भगवान सारी दुनियाको बनाए और ध्यान रक्खे तो उसका तो बड़ी आकुलतापूर्ण काम हुआ किस किसकी खबर रक्खे, किसको क्या करे और, बात यह है सही भी कि यह सब भगवानकी सृष्टि है, पर इसको यों देखिये-जितने भी जीव हैं सब जीवोमें भगवान बसा हुआ है। सभी कहते हैं, पर इन जीवोसे न्यारा कोई एक भगवान इन सब जीवोंमें बसे ऐसा नहीं है, किन्तु सब जीव चैतन्यस्वभावी है, भगवत्स्वरूप है। प्रत्येक जीव अपने स्वभाव और शक्तिमें भगवान हैं। यह आत्माभगवान जब विकृत होता है तो निमित्त नैमित्तिक योग पूर्वक ऐसी सृष्टि हो जाती है जैसे कि हम आप बैठे हैं, तो यह है भगवान की ही लीला, पर यह आपमें आपके भगवानकी लीला हममे हम भगवान की लीला है, और जब यथार्थ भेद विज्ञान पाता है तो उस ज्ञानप्रकाशमें अपने को सबसे न्यारा निरख कर सुरक्षित बना लेता है, फिर इसकी लीला मोक्ष मार्गकी चलती है। कर्मोंसे शरीरसे न्यारा होता हुआ यह पूर्ण केवल हो जाता है।

सामान्य और विशेषः—इन सब पदार्थोंमें सामान्य और विशेष दोनो अस्तित्व देखो। केवल है की निगाहसे देखो तो इसमें सब पदार्थ आ गए। यह सामान्य अस्तित्व और नाम लेकर व्यक्तिगत बात आये तो वह विशेष अस्तित्व है। ये सभी पदार्थ निरन्तर उत्पन्न होते है, निरन्तर बिलीन होते हैं और सदा बने ही रहते हैं। देखिये ये पदार्थ उस स्वरूप पड़े हुए हैं कि बनते है बिगड़ते हैं और बने रहते है। जैसे इसका उपादान, इसके निमित्तका सद्भाव अथवा अभेदरूप योग रहता है उस प्रकारसे सभी पदार्थ परिमणते रहते हैं। परिणमनमें क्या होता है? नई चीज बनना पुरानी चीज मिटना और वहीका वही रहे। तो जब यह पदार्थमें ही स्वरूप पड़ा है फिर इसके रचने वाला कोई होगा यह विचारनेकी क्या आवश्यकता है। सभी पदार्थ स्वयं हैं। आपका आत्मा, यह अपने आप है। हम है, ऐसे नहीं कि हमारी सत्ता सदा न्यारी ही और हम न्यारे हों।

वर्णनकी नयद्वयायत्तता—नय दो होते हैं-एक द्रव्यार्थिकनय और दूसरा पर्यायार्थिकनय। जैसे कहते हैं जीवमें ज्ञान भरा हुआ है तो क्या ऐसा है कि जैसे बोरेमें गेहूं भरे हैं वैसा ज्ञान भरा है? क्या बोरेमें गेहूं की तरह जीव ज्ञान भरा हुआ है? अरे जीवमें तो ज्ञान लबालब भरा हुआ है और यह बात तो कहनेकी है कि जीवमें ज्ञान भरा हैं। अरे जीव ज्ञानको ही कहते हैं। ज्ञानमय ही जीव है। आममें हरा रूप है तो क्या आम अलग चीज है, हरा अलग चीज

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, अरे हरे रूप ही आम है, ऐसे ही जीवमें ज्ञान अलग नहीं हैं। जीव ज्ञानमय ही है, जीवकी सत्ता अलग नहीं है। सत्तामय ही जीव है। एक कहने का ढंग है। द्रव्यार्थिक दृष्टि तो अभिन्नतासे प्रतिपादन होता है और पर्यायार्थिक दृष्टि भिन्नतासे प्रतिपादित होती है। जीवमें ज्ञान है यह पर्यायका कथन है और जीव ज्ञानमय है यह द्रव्यदृष्टिगत कथन है। जीव सत्तामय है यह द्रव्यदृष्टिका कथन है जीवमें अस्तित्व है यह पर्यायदृष्टिका कथन है पर्याय नाम भेदका है, द्रव्य नाम अभेदका है। जितने उपदेश होते हैं वे सब दोनों नयोंके आधीन होते हैं। कोई द्रव्यदृष्टिका ही हठ करले अपने वर्णन में तो वह जैन पद्धतिका उपदेश नहीं है। पर्यायदृष्टिसे अस्तित्व गुण कथञ्चित भिन्न निरखे तो द्रव्यदृष्टिसे तो अस्तित्व न्यारा नहीं है, किन्तु यह पदार्थ स्वयं ही सत् होता हुआ अस्तित्व वाला है। सत्ता से सब अभिन्न है।

कायत्वका विवरण—ये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश अस्तिकाय है। इस अंशमें अस्तित्वका तो वर्णन किया और कायका अर्थ यहाँ बहुप्रदेशी है। यह अणुवोंसे महान है। संक्षिप्त अंशका समुदाय है। जैसे किसीका बुखार थर्मामीटर से मापा १०१ डिग्री बुखार है तो उसका अर्थ है कि बुखार में एक-एक अंश माना जाय तो ऐसे-ऐसे १०१ अंश बराबर-बराबर हैं, मगर किसीका बुखार एक अंश भी बराबर रहा, कभी ५० अंश भी रहा, ६० अंश भी रहा फिर भी गरमी का माप है। जिसके १०१ डिग्री बुखार है उसमें एक अंश कुछ माप होता होगा। एक और एक मिलकर २ अंश हो गये। इस प्रकार १०१ अंश ऐसी ही जीवमें असंख्यात प्रदेश हैं। कभी यह जीव एक दो आदिक प्रदेश रूप नहीं रह सकता। सदा असंख्यात प्रदेशी रहेगा। वहाँ प्रदेश का अर्थ है आकाश के एक छोटे हिस्से बराबर जिसमें केवल एक परमाणु रह सके, ऐसे-ऐसे असंख्यात प्रदेश हैं, मानो इस समय पैरों से लेकर सिर तक इतने लम्बे चौड़े में हमारा आत्म है। तो यह जीव कितना लम्बा चौड़ा है, इसको कोई यह कहेगा कि यह १० फुटका है वर्ग के हिसाब से तो उसमें एक फिट कुछ चीज है। एक फिट में एक इंच कोई माप है। एक इंच में एक सूत कोई माप है और एक सूतमें भी अनगिनते माप हो माप हो सकते हैं। उनमें सबसे छोटा जो माप हो, जिसका कोई दूसरा भाग न हो सके उसका नाम एक प्रदेश है ऐसे-ऐसे अनगिनते प्रदेशों वाला यह जीव है। यही सब आगे बतावेंगे। यों प्रदेश समूह रूप होने का नाम है अस्तिकाय। ये ५ द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं।

अणुमहत्त्व—अस्तिकाय का दूसरा नाम अणुमहान् है। अणुका अर्थ यहाँ प्रदेश लिया है। चाहे वह मूर्त पदार्थ हो चाहे अमूर्त पदार्थ हो उनका जो निर्विभाग अंश है वह कहलाता है अणु। अणु शब्द का अर्थ निर्विभाग अंश है शब्दकी दृष्टि में। ये सब पदार्थ लोकाकाश में है। धर्मद्रव्य में असंख्यात अणु हैं, अधर्मद्रव्य में असंख्यात और आकाश में अनन्त, सबमें अणु कह सकते हैं, पर रुढ़ि हो जाने से कुछ अचक ही मालूम होती है। तो अणुका अर्थ है प्रदेश। उन प्रदेशों में जो महान् है अर्थात् प्रचयात्मक है उसे अणुमहान् कहते हैं। अणुमहान् का अर्थ है अस्तिकाय। जो अणुवो में महान् है ऐसा अर्थ करने पर दो अणु वाला स्कंध नहीं आया। जो प्रदेश से महान् है वह अणुमहान् पर इसका अर्थ यों भी कर सकते कि जो दो अणुवों से महान् है, इसमे दो पुद्गल परमाणुवों का स्कंध है वह अणुमहान् हुआ, अस्तिकाय हुआ। तीसरा अर्थ यों लगाया कि जो अणु हैं, और महान् हैं उन्हें अणु महान् कहते हैं। जो निर्विभाग अंशों से अंशों का प्रचयात्मक है उसे अणुमहान् कहते हैं। ऐसा अर्थ करने पर व्यक्ति और शक्ति दो चीजें आ गयी तो जो शुद्ध परमाणु है पुद्गल का वह व्यक्ति रूपसे तो अणु है और शक्तिरूप से महान् है, क्योंकि अणु में ऐसी शक्ति है कि वह स्कंध बन सकता है। यों जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश में ५ पदार्थ अस्तिकाय हैं, अणुमहान् हैं।

कालद्रव्यकी एकप्रदेशिता—इन ५ अस्तिकायों से छूट गया जो काल द्रव्य है वह अस्तिकाय नहीं है। यद्यपि वह अस्ति है? है, वास्तवमें है, लेकिन कालद्रव्यमें प्रदेशप्रचय नहीं हैं न तो कालद्रव्य जीवादिक पदार्थोंके है, न व्यक्तिरूप प्रदेश प्रचयात्मक है और न परमाणुकी तरह शक्तिरूपसे प्रदेश प्रचयात्मक है। कालद्रव्य न तो एक प्रदेशसे अधिक वाला है और न कभी भी कालद्रव्य मिलकर प्रचय रूप बन जाय ऐसा है। कालद्रव्यके स्वरूप को जाननेके लिए रत्नोंकी राशिका दृष्टान्त दिया है। जैसे रत्नोंकी राशि एक जगह घुल मिलकर पास पास पड़ी है, पर एक रत्न दूसरे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रत्नरूप नहीं हो पा रहा है ऐसे ही कालद्रव्य, लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक कालद्रव्य है। वे कभी भी मिल जायें पर पुद्गल स्कंधकी तरह या जीवके विभाव व्यञ्जन पर्यायकी तरह एकमेक नहीं हो सकते हैं। इस ही कारण कालद्रव्य को अस्तिकायमें ग्रहण नहीं किया है। वह अस्ति तो है पर काय नहीं है। अब इन ५ अस्तिकायोंमें अस्ति शब्दका क्या अर्थ है और काय शब्दका क्या अर्थ है, इस विशेष कार्यको बतला रहे हैं।

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जयेहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं ॥५॥

पदार्थकी अविभागिता—जिन पदार्थोंका नाना गुणों और नाना पर्यायोंसे सहित अस्तित्व भाव है वे ५ अस्तिकाय होते हैं, जिनके द्वारा ये तीन लोक उत्पन्न होते हैं। अस्तिकायोंमें नाना गुण और नाना पर्यायोंमें साथ आत्मभाव है, अभिन्नता है पदार्थ तो प्रत्येक एक पूर्ण स्वतंत्र है और वह अविभागी है, एक का कभी विभाग नहीं होता और एकसे पहिले कोई संख्या नहीं है। आधा चौथाई ऐसी जो मान्यता है वह वास्तविक एक आधा चौथाई नहीं है, किन्तु वह एक जो अनेक से मिलकर कल्पनामें आया है इसका आधा चौथाई किया जाता है। तो पदार्थ प्रत्येक अविभागी हैं और वे अपनी शक्तिमें अपनी परिणतियोंमें तन्मय हैं।

द्रव्यकी गुणपर्यायमयता—पदार्थ है तो उसका कोई न कोई स्वभाव होना ही चाहिए। वह ही स्वभाव गुण है और जब गुण है, शक्ति है तो उसका कोई न कोई परिणमन होना ही चाहिए। वह परिणमन पर्याय है तो पर्याय भी पदार्थसे जुदी नहीं है। हालांकि पर्याय अगले समयमें न रहेगी, अगले समयमें नवीन पर्याय होगी फिर भी जब जो पर्याय है, तब वह पर्याय उस पदार्थ उस पदार्थमें तन्मय है, अथवा यों कहो कि पर्यायका पदार्थसे अलग सत्त्व नहीं है, वह पदार्थ जिस देशरूप वर्त रहा है उस देश का नाम पर्याय है। पर्यायसे जुदा सत्त्व नहीं और गुणका भी पदार्थ जुदा सत्त्व नहीं। पदार्थ जिस स्वभावको लेकर रहता है उस ही का नाम गुण है, इह कारण गुणका भी पदार्थसे कोई जुदा अस्तित्त्व नहीं है और कभी तत्व पर्यायोंसे जुदा द्रव्यका अस्तित्व नहीं है। द्रव्यका लक्षण जैन दर्शनमें गुण पर्ययवद्द्रव्यं कहा है। गुण पर्यायात्मक परद्रव्य होते हैं। इस त्रितयमें से किसी एक को जुदा स्वतंत्र नहीं ठहराया जा सकता है। द्रव्य अलग हो, गुण अलग हो, पर्याय अलग हो, इनकी सत्ता जुदी-जुदी हो ऐसा नहीं है।

भेदवादका एक स्रोत—भैया किन्हीं सिद्धान्तों ने माना है कि द्रव्य अलग पदार्थ है, गुण अलग पदार्थ है और क्रिया अलग पदार्थ हैं। वैशेषिक लोग ७ पदार्थ मानते हैं-द्रव्य, गुण, क्रिया, सामान्य विशेष समवाय और अभाव। ये सातों के सातों एक पदार्थरूप हैं। ये भिन्न-भिन्न नहीं हैं, पर लोगोंको समझाने के लिए उस पदार्थ की जो विशेषता बतायी जाती है वह विशेषता इन ६ रूपों में है। गुण क्रिया समान्य विशेष समवाय और अभाव, पदार्थ एक ही है, जैसे एक जीव पदार्थ ले लीजिए। जीव पदार्थमें जो ज्ञान दर्शन आदिक गुण हैं यह गुण पृथक पदार्थ नहीं हैं, जीव स्वयं ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान जीवसे अभिन्न है। उस भिन्न तत्त्वको समझाने के लिये जो भेद करके कहा जाता है वह व्यवहार दृष्टि से गुण कहलाया।

द्रव्यकी गुणपर्यायमयता—जीवका गुण जीवसे न्यारा नहीं है और जीवका जो गुण है वह प्रतिसमय किसी न किसी रूप परिणमता है। जैसे ज्ञान गुणसे अमुक पदार्थ जाना इसी प्रकार जो ज्ञान गुणका परिणमन है उसका नाम क्रिया है। पर्याय कहो या क्रिया कहो, एक ही अर्थ है। क्रिया नाम केवल चलनेका नहीं है, किन्तु कुछ भी परिणमन बनाना चाहें वह क्षेत्र क्षेत्रान्तर का परिणमन हो या उस ही क्षेत्र में रहकर एक परिणमन को त्यागकर दूसरे परिणमन रूप हो वह सब क्रिया कहलाती है. जीवकी क्रिया जीवसे भिन्न नहीं है, पर नाम तो जुदा-जुदा है। गुणक्रिया इसका अर्थ जुदा है, इसके लक्षणको जुदा देखकर वैशेषिकों ने अलग-अलग तत्त्व मान लिया है।

द्रव्यकी सामान्यविशेषात्मकता—और तो क्या, सामान्य और विशेष इन दो को उन्होंने जुदा-जुदा माना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, पर कहीं निर्विशेष मनुष्य देखा है किसी ने या विशेष देखा है किसीने । चीज है, उसको ही सामान्य दृष्टि से देखते हैं तो वहां सामान्य प्रतिभास होता है, विशेष दृष्टि से देखते हैं तो वहाँ विशेष प्रतिभास होता है । जैसे सब मनुष्य बैठे हैं सभी वर्ण के, जाति के, धर्म के बैठे हैं उन सबको यदि केवल सामान्य रूपमें निरखा जाय तो वहाँ मनुष्य सामान्य नजर आता । और वहां कारण वश, प्रयोजनवश में अमुक वर्ण के हैं, ये सेठ हैं ये बाबू हैं आदिक रूपसे देखा जाय तो वहीं विशेष बन गया । अब उन सब लोगों को छोड़कर सामान्य कुछ अलग बात है क्या । अथवा उन लोगों को छोड़कर विशेष क्या अलग बात है ? वह ही सब सामान्य रूपसे देखने पर सामान्य है और विशेष रूपसे देखने पर विशेष है । सामान्य और विशेष भी पदार्थ से जुदी चीज नहीं है ।

समवायकी कल्पना—एक पदार्थ समवाय माना गया है वह भी जुदी चीज है,इसकी कल्पनाएं देखिये थोड़ा सा भी शब्दके माध्यमसे भेदका अवसर पाये तो यह भेदमें बढ़ जाता है । जीव स्वतन्त्र पदार्थ है, गुण स्वतन्त्र पदार्थ है क्रिया, सामान्य आदि स्वतन्त्र पदार्थ हैं जब ऐसा वैसेसिकों द्वारा मान लिया गया तो वहां यह प्रश्न होता है कि जब ये दो पदार्थ जुदे हैं, जीव जुदा है, ज्ञान जुदा है, तो जैसे यह चौकी जुदी है मैं जीव जुदा हूं, तो मुझमें यह चौकी प्रवेश नहीं कर जाती ऐसे ही जब ज्ञान जुदा मान लिया और जीव जुदा मान लिया तो जीव में ज्ञान क्यों प्रवेश करेगा । उस के समाधान रूपमें समवाय नामका पदार्थ माना है । समवाय नाम है सर्वव्यापी का । उस समवायके कारण जीव और ज्ञान का अभिन्न सम्बन्ध हो जाता है । कोई चीज एक बार झूठ कह दी जाय तो उस झूठको साबित करने के लिये अनेक झंझट उठाने पड़ते हैं । मूलमें झंझट यह हुआ कि द्रव्य जुदा है, गुण जुदा है, पर्याय जुदी है तो अब और-और भी मानना पड़ा ।

जैनदर्शनकी उदारदृष्टि जैन दर्शन कहता है कि परम ार्थसे तो वह सब एक है, पर संज्ञा लक्षण प्रयोजन सामान्य आदि व्यवहार धर्म चलाने के लिये द्रव्य गुण पर्याय ये जुदे बताये गये हैं । जैसे मिट्टी का घड़ा है और उस घड़े को फोड़ दिया, खपरिया बन गई तो घड़ा पर्याय कहां गया, किस जगह विलीन हो गया । बाहर निकलकर नष्ट हुआ या मिट्टी में अब भी पड़ा हुआ है खपरियां बन जाने पर घड़े की हालत क्या हुई है ? क्या बतावोगे । घड़ा बाहर भी जाकर नहीं नष्ट हुआ, घड़ा मिट्टीमें भी मौजूद नहीं है और वह जो कुछ घड़ा कहलाता था वह मैटर घड़ेमें भी नहीं है, ऐसा भी नहीं कह सकते । ऐसा त्रिलक्षणात्मक पदार्थ है कि उसको केवल समझाने के लिये ही अलग बताया जाता है । वस्तुत: यह तत्त्व अलग-अलग नहीं है । इन समस्त द्रव्यों में गुण और पर्याय द्रव्यसे अभिन्न हैं । गुण नामतो है जो अन्वय रूपसे रहे और पर्याय नाम है जो व्यतिरेक रुपसे रहे । है य दोनो वस्तुके विशेष जैसे ज्ञानशक्ति-यह जीव पदार्थमें अनादि से अनन्तकाल तक सदा एक रुप रही आयी है, और उस ज्ञानमें जो परिणमन चलता है वह व्यतिरेकी है । जो इस समयका ज्ञान है वह अगले समयमें नहीं । प्रत्येक समयमें भिन्न-भिन्न चलता जाता है ।

अभावपदार्थ की कल्पना:—एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें अभाव होना जानकर अभावनात्मक पदार्थकी कल्पना भी भेद वादमें होती हे, किन्तु अभाव कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है । पदार्थका अपने स्वरुपसे ही होना अन्य पदार्थोंका अभाव हे । समस्त वक्तव्य सप्रतिपक्ष हैं । विवक्षित पदार्थ हैं यह "है पना" अविवक्षित पदार्थो के अभावका समर्थक हे । एक वस्तुमें अन्य समग्र वस्तुवोंका अभाव उस वस्तुके सद्भावरूप है ।

उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकाधिकरणता – गुण और पर्याय से अभिन्न होने के कारण वस्तु उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक कहा जाता है । एक पर्याय विलीन हुई, नवीन पर्याय उत्पन्न हुई और वह पर्याय जिस शक्ति में बनती है वह शक्ति अन्वयरूप रहती है । सो गुणकी दृष्टिसे ध्रुव हुई । यों पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक हैं । देखिये पदार्थमें यह स्वरूप पड़ा हुआ है कि वह प्रति समय नवीन दशा अपनी बना ले और पुरानी दशाको विलीन कर दे, और ऐसा उत्पादव्ययध्रौव्य होकर भी स्वयंका कभी अभाव नहींहोता । जिसमें यह उत्पादव्यय होता है वह पदार्थ ध्रुव रहा करे । प्रत्येक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थ अपने ही स्वरूपसे हैं, इसका विश्वास हो जाय तो मोह नहीं ठहर सकता हैं। प्रत्येक पदार्थ केवल खुदमें ही परिणमता हैं, दूसरेमें नहीं।

मोहका अनवकाश—प्रत्येक पदार्थ अपने अपने सत्त्वसे सदा सुरक्षित हैं, दूसरे की आशा पर नहीं। ऐसे ही मैं हूं, मैं अपने उपादान में अपनी योग्यताके अनुकूल अपने आपमें परिणमता रहता हूं। मैं किसी अन्यको पहिचानता भी नहीं, यों ही दूसरे पदार्थ भी अपने ही गुणोंके वे अपनेमें ही परिणमते हैं। वे मुझमें नहीं आते, तब मोह किस बात पर करना। तब कोई वस्तु मेरा नहीं है मैं किसीका नहीं हूं। परिणमन स्पष्ट जुदा जुदा है त्रिकाल भी सम्बंध हो नहीं सकता। वस्तुके सत्ताके कारण ही यह दृढ़ व्यवस्था हैं, ऐसा परिज्ञान होने पर फिर कैसे माना जा सकता है कि यह पदार्थ इसका हैं। जब स्वरूपसत्त्व स्वतन्त्र हैं तो किसीको किसीका कुछ मान लेना यह कभी हो नहीं सकता। प्रत्येक पदार्थ अपने अपने ही गुण पर्यायसे अभिन्न हैं।

उत्पादव्ययध्रौव्यकी अविनाभाविता—पर्याय अलग वस्तु हैं, द्रव्य अलग वस्तु हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि कोई चीज नष्ट हो गयी, कोई दूसरी चीज उत्पन्न हो गयी, कोई दूसरा ध्रुव है तो क्या है, कोई ऐसा पदार्थ जो बने और बिगड़े नहीं और बना रहे ? है क्या कोई ऐसा पदार्थ जो बना रहे, और बने बिगड़े नहीं ? बनना, बिगड़ना बना रहना इन तीनोंका अबिनाभाव हे। इन तीनोमें से कोई एक न माना तो बाकी दो भी सिद्ध नहीं हो सकते हैं। तो कि सब पदार्थ गुणपर्यायात्मक हैं। यह तो अस्तित्वका अंश सिद्ध किया। अब ये काम क्यो कहलाते हैं दूसरी बात सुनिये।

प्रदेशकी दृष्टि और अस्तिकायत्व की सिद्धि:—ये ५ काय क्यों कहलाते हैं। इन ५ पदार्थोंके जो अवयव हैं, अविभागी अंश हैं, प्रदेश हैं वे प्रदेश यद्यपि न्यारी-न्यारी सत्ता लिए हुए नहीं हैं, लेकिन एक-एक प्रदेश को न्यारा-न्यारा ज्ञानमें न लेनेपर असख्यात प्रदेश कैसे कहेंगे। जीवमें असख्यात प्रदेश हैं, तो असंख्यात की किसी रूपमें भी गणना तो तब सिद्ध होगी जब इतना जान लिया कि एक इतना है, एक यह है और ये सब मिलकर असंख्यात हैं। देखिये निश्चय और व्यवहारका। कैसा सम्बन्ध उपयोगमें रखना पड़ता है। निश्चयसे पदार्थ अखण्ड है, उसमें असख्यात प्रदेश और अवयव नहीं हैं, पर दिखता हे कि पदाथ दोनोमे पड़ा हे तो प्रदेश अवश्य हैं। वे प्रदेश परस्पर व्यतिरेकी भी हे। जैसे दृष्टान्तके लिए एक चौकी लो। यह डेढ़ फिट लम्बी चौड़ी, इसमे एक-एक सुत स्थान कितने पड़े हैं। तो मान लो कि हजारो लाखो हो गए। अब एक सूत स्थान सूत दूसरे सूत वाले स्थानसे जुदा है कि नहीं ? है। अगर उन प्रत्येक सूतोंको व्यतिरेकी न मानें तो सारी चौकी एक सूत बराबर कहलायेगी। यह सारी चौकी मान लो हजार सूत प्रमाण है तो यह तब ही बन सकती है जब कि प्रत्येक सूत व्यतिरेकी हो जुदा-जुदा हो। ऐसे ही आत्मा असंख्यात प्रदेशी है तो उसके प्रत्येक प्रदेश जुदे-जुदे हैं, फिर भी सत्व जुदा नहीं है वह सब एव अखण्ड द्रव्य हैं। ऐसा उन असख्यात प्रदेशोंका द्रव्य जीव है, यों जीव कायवान होता है। जो पदार्थ अस्ति है और कायवान है उसे अस्तिकाय कहते हैं। इन ५ अस्तिकायोंका वर्णन इस ग्रन्थमें मोह हटाने के लिए किया जा रहा है कि हम उन पदार्थोंकी स्वतंत्रता जाने और इस ज्ञानबलसे हम परसे मोह हटाकर अपने आपके स्वरूपमें मग्न रहा करें।

आत्मश्रद्धान—पदार्थोंके स्वरूपका वर्णन चल रहा है। जीवका कल्याण पदार्थके यथार्थस्वरूपके ज्ञानसे ही होगा। जीवको शान्तिका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके सिवाय अन्य कुछ नहीं है। जो पदार्थ जिस रूपसे हैं उन पदार्थोंके रूपसे श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। जैसे यह मैं आत्मा अमूर्त ज्ञान दर्शन शक्ति आनन्द का पिंड सबसे न्यारा सत् हूं। यह ही अनेक परमाणुवोंसे मिलकर बना हुआ स्कंध है। यह देह विघट जायगा, यह मैं आत्मा अखण्ड सदा अपने ही स्वरूप रहने वाला हूं। जगतमें जो भी जीव दिखते हैं उन सबकी यही परिस्थिति है। उनमें रहने वाला जीव ज्ञानानन्दपुंज है। और यह दृश्यमान शरीर अनन्त पुद्गल परमाणुवोंका पिंड है। शरीर से यह जीव अत्यन्त न्यारा है। मुझसे सब जीव और समस्त पुद्गल धर्मादिक द्रव्य सब न्यारे है। मैं अपने ही द्रव्य क्षेत्र काल भावसे सत्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हूं। परिपूर्ण हूं, अपने ही स्वरूपसे अपने में परिणमता रहता हूं। ऐसी स्थिति प्रत्येक पदार्थकी है। ऐसा सत्य श्रद्धान होता है तो पर पदार्थों से मोह दूर होता है।

मोहसकट—जीवको जितनी भी परेशानी है वह सब मोह की परेशानी है अन्यथा सोचो आज जीवन है, अचानक मरण हो गया तब यहाँ की क्या कोई चीज अपने काम आयगी ? अरे यहां का सब ठाठ भूल जायगा। जहां अगले भवमें जावेंगे वहां के आश्रयसे विकल्प चलेंगे। यहां तो व्यर्थ ही विकल्प बनाकर दु:खी होते हैं। सम्यग्ज्ञानमें यह प्रताप है कि पर पदार्थोंको पर और निजको निज जानने के कारण मोहका संकट नहीं रहता है।

वस्तुका पुन: निर्देशन—वस्तु स्वरूपका यह संक्षिप्त वर्णन चल रहा है। पदार्थ ६ जातिके होते हैं-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिसमें जानने देखनेकी शक्ति है, रूप, रस, गंध स्पर्शसे रहित है वह तो जीव द्रव्य है। जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जाता है वे सब पुद्गल द्रव्य हैं। चाहे कोई पुद्गल दिखनेमें आये अथवा न आये, सूक्ष्म हो अथवा स्थूल हो, जितने भी पुद्गल है वे सब रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं। जीव और पुद्गलके गमन करनेमें जो सहायक सत् है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। यहाँ धर्मद्रव्यसे मतलब पुण्यसे नहीं है, धर्म करने से नहीं है, किन्तु धर्म नामका एक ऐसा द्रव्य है कि जो न हो तो जीव पुद्गल को गमन नहीं मिलता है। जैसे मछली के चलनेमें जल सहायक है, जल जबरदस्ती मछलीको चलाता नहीं है, पर मछली चले तो उसमें जल कारण है। ऐसे ही हम लोगोंको यह धर्मद्रव्य जबरदस्ती चलाता नहीं है, पर हम लोग चलें तो यह धर्मद्रव्य सहायक है। धर्मद्रव्य, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहितहै, इस कारण किसी इन्द्रियके द्वारा ज्ञात नहीं होता है। किन्तु, वीतराग ऋषीसंतोंने यह सब सूक्ष्म तत्त्व भी बताया है और आज कल वैज्ञानिक लोग भी ऐसा अनुमान करते हैं कि आकाशमें ऐसे सूक्ष्म तत्व हैं जिनसे चलनेको मार्ग मिलता है। उनके तरंग है। उनके आश्रयसे चला करते हैं, वह धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलके ठहरनेमें जो सहायक हो वह अधर्म द्रव्य है। समस्त पदार्थ जिस स्थानमें रहें उसका नाम आकाश द्रव्य है, और कालद्रव्य जिसके कारण पदार्थ परिणमता रहें, बदलता रहे उसका नाम काल द्रव्य है।

स्वस्वविस्तार—इन ६ पदार्थोंमें से काल द्रव्य तो निरवयव है। केवल एक प्रदेशमात्र है। अस्तिकाय नहीं कहलाता है, शेष जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये अस्तिकाय कहलाते हैं। जीव जितने विस्तारमें है, जितने घेरे को लिए हुए हम आप अपनेमें सुख दु:खका अनुभव करते हैं वह जीवका विस्तार है। उसमें असंख्यात प्रदेश हैं। पुद्गलमें जो वास्तविक परमाणु पदार्थ हैं वे तो निरअवयव हैं। वे एक प्रदेशी है। उसका विस्तार नहीं है। पर पुद्गल में ऐसी शक्ति है कि वह परमाणु मिल जुलकर एक बड़े स्कंध बन सकते हैं, अन्य द्रव्य आपस में मिलकर स्कंध नहीं बन सकते। जीव जीव १०, २०, ५० आपसमें मिलकर एक पिंड बन जायें सो नहीं बन सकते हैं। सब जीव न्यारे-न्यारे ही रहेंगे। धर्म, अधर्म, आकाश ये भी न्यारे न्यारे ही रहेंगे। काल तो न्यारा हैं ही। पुद्गलमें एसी विशेषता है कि बहुत से स्कंध मिलकर एक बड़ा रूप पा लेते हैं। अथवा बहुप्रदेशी होनेकी शक्ति है इस कारण पुद्गलको अस्तिकाय कहा है।

सावयवमें अस्तिकायपना:—इस प्रकरणमें यह जिज्ञासा हो सकती है कि हमको तो पुद्गल अस्तिकाय मालूम होते हैं क्योंकि कभी परस्पर मिलकर बड़े हो जाते हैं, कभी बिखरकर छोटे हो जाते है। उसमें तो मालूम होता है कि वह अस्तिकाय हैं, किन्तु अन्य जो जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, नामके अमूर्त पदार्थ हैं उनमें बहुप्रदेशी क्या ? पुद्गलमें तो साफ नजर आता है कि अब यह बड़ा स्कन्ध हो गया, अब यह छोटा स्कन्ध रह गया। यहां तो अस्तिकाय का होना ठीक जब रहा है, पर जीवमें क्या, जीव तो एक है, वह बहुप्रदेशोंका मिलकर कैसे बना ? आकाश एक है, अनन्तप्रदेशी है उसमें अनन्त प्रदेश है। ये कैसे आये सामाधान यह है कि यद्यपि वे अमूर्त हैं और उनके प्रदेशोंका कभी विभाग भी नहीं हो सकता, फिर भी वे अवयव सहित हैं।

अखण्ड आकाशमें सावयवता—जैसे इतना बड़ा आकाश है वह एक है। आकाश अनेक नहीं हैं, एक है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फिर भी उस आकाश में हिस्सोंकी कल्पना हो जाती है। यह घड़ेका आकाश है, यह कमरेका आकाश है। यद्यपि आकाश के इस तरह से विभाग नहीं होते फिर भी चीज बड़ी हो तो उसमें विभागकी कल्पना बनती है। यह आकाश असीम अनन्त है. उसमें विभाग बन गए, ऐसे ही यह जीव एक है, फिर भी इसका विस्तार है। देखोना इस देहमें सर्वत्र सुख दुःखका अनुभव होता है कभी हाथमें फोड़ा फुंसी हो जाय, क्लेश बढ़ जाय तो ऐसा लगता है कि बड़ा कष्ट होता है, पर कष्ट कहाँ कहां हो रहा है ? इस देह भरमें जो आत्मा फैला हुआ है उस सम्पूर्ण आत्मामें कष्ट हो रहा है। ऐसा नहीं है कि हाथके कलेश जो आत्माके प्रदेश हैं उनमें कष्ट होता हो बाकी जगह कष्ट न होता हो। जीव तो एक अखण्ड है। वह जो कुछ भी अनुभव करता है अपनेमें समस्त प्रदेशोंमें अनुभव करता है। यों ही समस्त अमूर्त द्रव्योंको जान लेना चाहिए। यदि इन अमूर्त पदार्थोंमें अवयव अंशकी कल्पना न की जाय। प्रदेश न माना जाय तो यह एक प्रदेशमात्र रह जायगा। जैसे आकाशका टुकड़ा नहीं होता ठीक है, फिर भी उसमें अंश न माना जाय कि यह घड़े का आकाश है, और यह संदूकका आकाश है तो इसका अर्थ यह है कि जो घड़े का आकाश है वही सदूकका आकाश बन गया। फिर घड़ा क्या रहा, संदूक क्या रहा ? तो अविभागी भी पदार्थमें प्रदेशकी कल्पना होती है। केवल एक कालाणु काल द्रव्य ही अस्तिकाय नहीं है, बाकी समस्त पदार्थ अस्तिकाय हैं।

धर्मपालनमें वस्तुविज्ञानका सहयोग—भैया ! पदार्थका स्वरूप बताना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि धर्मपालनका साधन वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान है। भगवानसे मोक्षकी भीख मांगनेसे मोक्ष न मिल जायगा। प्रभुसे सुख की भीख मांगने से दुःख न मिल जायगा, किन्तु प्रभुका जो स्वरूप है उस स्वरूपको निरख-निरखकर अपने आपमें अपनी शक्तिका उत्साह बनाया जाय और अपने गुणोंका अनुराग किया जाय तो उसमें अपने ही ज्ञान गुणके अनुभवसे मोक्षका मार्ग मिलेगा और अपने ही शुभ परिणामोंके अनुसार सुख मिलेगा। भगवान तो हमारे ध्यानमें आश्रयभूत हैं। यही उनकी करुणा है पर हम खुद चलें उल्टा, विपरीत श्रद्धा रक्खे। पापका परिणाम करें और भगवानसे रोज अपनी माफी मांगते रहें तो यों माफी नहीं मिलती है। खुदकी मलिनता करके किए गए पापोंकी मांफी खुदके निर्मल परिणामों पर ही सम्भव है यह सब निर्मलता हमारी तब प्रकट होगी जब हम अपने स्वरूपकी ओर झुकें, इससे ही निर्मलता पा सकेंगे। इसी प्रयोजन के अर्थ वस्तुके स्वरूपका वर्णन इस ग्रन्थमें किया जा रहा है।

त्रैलोक्य—इन समस्त द्रव्यों से यह तीनलोक बना हुआ है। जैसे एक नगर में हजारों घर हैं उन हजारों घरोंको एक समूचे रूपसे देखा जाय उसका नाम नगर है ऐसे ही अनन्त जीव और उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल एक धर्म-द्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य इन सब पदार्थों का जो समूह है उसका नाम तीनलोक है। यह तीनलोक से निष्पन्न हुआ, तीनलोक के रूपमें निष्पन्न हुआ यह समस्त अस्तिकाय है।

वस्तुस्वरूपमें स्वातन्त्र्य की सिद्धि—ये सभी पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्य करके सहित हैं जैन सिद्धान्त में तत्वार्थसूत्रमें बताया है उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तसत् पर दृष्टि दें तो यह मालुम पड़ेगा कि अन्य समस्त व्याख्यान इस सूत्रका विस्तार है। पंचम अध्यायमें एक सूत्र आया है, उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्। सत् किसे कहते हैं, पदार्थ किसे कहते हैं ? जो उत्पादव्यय और ध्रौव्य करके सहित हो। इसमें क्या मर्म आया है। जो भी पदार्थ हैं वे अपने स्वरूपके कारण अपने आपमें उत्पन्न होते हैं और अपने ही सत्त्वके कारण पुरातन पर्यायको विलीन कर देते हैं, और अपने सत्त्वसे सदा ध्रुव बने रहते हैं, यह पदार्थमें उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त होने का परिणाम पाया जाता है, स्वरूप पाया जाता है, अब कोई भी पदार्थ एक भी समय बिना परिणमें रहेगा नहीं, प्रति समय परिणमते रहते हैं। तब बतलावो दूसरा कैसे परिणमायेगा ? प्रत्येक पदार्थमें खुदके परिणमन का सामर्थ्य बसा हुआ है इस कारण कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ को परिणमा ही नहीं सकता है। कितनी स्वतन्त्रता है, हम आप कितने निर्लेप हैं। किसी भी वस्तुसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है मेरा अस्तित्व मेरेमें ही है, परका स्वरूप परमें ही है, कोई पदाथ किसी दूसरे पदार्थ का स्वामी नहीं हो सकता। जब प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभाव से निरन्तर परिणमते रहते हैं तब मैं किसी पदार्थ को

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणमाने वाला कैसे हूं। मैं अपने आपका ही कुछ से कुछ बन सकता हूं, किसी दूसरे पदार्थ का मैं कुछ भी नहीं बना सकता। हां कोई किसी दूसरे के परिणमाने में निमित्त भले ही हो जांय पर कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ करने वाला नहीं है।

धर्मार्थ जीवन भैया ! पूर्वकृत पुण्यके उदयसे आज कुछ वैभव मिला है, सामग्री मिली है तो इसमें मोह ममताका हो जाना यह तो इस जीवन पर बड़ी विपदा है। यह धन वैभव तो पुण्यके उदय से आता है। न हो किसीके पुण्यके उदय तो कितने भी विकल्प मचा डाले पर धन वैभवकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। ज्ञानी जीवको किसी भी बात का कभी विकल्प नहीं होता है उसने तो अपना सारा जीवन धर्म साधना के लिए माना है, बाह्य वस्तुओं के विकल्प के लिए उसने अपना जीवन नहीं माना है। यह प्रभु अरहंत देव जिनकी हम आप मूर्ति बनाकर पूजते हैं उन्होंने भी समस्त परके विकल्पका परित्याग कर अपने को आकिञ्चन्य स्वरूप निरखा था। यही पाठ सीखने के लिए तो हम आप उन अरहंत प्रभूकी मूर्ति बनाकर उसकी स्थापना करके पूजते हैं।

मूर्तिका माध्यमः—मूर्ति स्वयं भगवान नही है, उसमें तो प्रभूके गुणोंका एक संकेत है, जैसे कागज के नोट चलते हैं तो उस कागज का कुछ भी मूल्य नहीं है मूल्य तो उस चिन्हका है जो कि उसमें छपा हुआ रहता है। सरकार की विधिमें आज उसकी मान्यता चल रही है। हम आप ग्रन्थ में ये अक्षर पढ़ते हैं, जो मुखसे शब्द बोले जाते हैं उनकी यह मूर्ति है, उनकी मूर्ति बना ली गई है, स्थापना हो गयी है। ऐसा आकार बनाया तो उसका नाम अक्षर है, वह अक्षरमें मूर्ति है। जितने शब्द हम आप बोलते है स्वर और व्यञ्जन वहाँ मूर्ति ये अक्षर हैं, तो मूर्तिके बिना किसीका काम भी नहीं चल पाता है। हम आप लोग साधुसंतों की फोटो उतार लेते हैं। वह उनकी मूर्ति हैं, उससे पहिचान होती है कि यह अमुक साधु हैं। तो व्यवहारमें किसी न किसी रूपमें यथार्थ बहुतकी मूर्ति ही जाती है।

प्रभुत्व—जिन भगवान की इस मूर्तिमें स्थापना की गई है वह भगवान क्या है ? केवल ज्ञान, केवल दर्शन अनन्त सुख और अनन्त शक्तिके पिण्ड हैं। हम जिसे चाहें उसे भगवान मान लें तो ऐसा कैसे हो सकता है। जिसके ध्यान करने से जिसके स्मरण करने से रागद्वेष दूर हो उस भगवान की मान्यतासे लाभ हैं और जिसके स्मरण से राग-द्वेष बढ़े उसके भगवान मानने से क्या लाभ है ? प्रभु का स्वरूप स्वयं समता का पुंज हैं। उनके ध्यानसे समता का पाठ मिलता है यह प्रभु शुद्ध गुण शुद्ध पर्याय के पिण्ड हैं।

निजास्तिकायका सुप्रतिबोध—प्रत्येक पदार्थं अपनी शक्ति और अपनी पर्यायमें तन्मय हैं। ये सब अस्ति-काय हैं। इस जीवको पता अपने को बहुत जल्दी हो जाता है, पर धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य इनका पता नहीं पड़ सकता है। कारण कि ये अमूर्त हैं और यह मैं आत्मा अमूर्त हूँ पर मैं खुद हूं ना, मेरी बात मुझ पर ही बीतती है, और मैं खुद, खुदको ही न जान पाऊं यह कैसे होगा। हम अपने आपमें यह बराबर देख रहे हैं कि हम इतने बड़े विस्तार वाले हैं अस्तिकाय है ऐसा धर्म और अधर्म तथा आकाशद्रव्य अस्तिकाय है।

जीवकी विस्तारशक्ति और अस्तिकायोंका निर्देश—जीव कितना बड़ा है प्रदेशकी दृष्टि से ? तो अनु-मान कर लीजिये। चींटीके शरीरमें जीव पहुँच गया तो उस समय भी उतना ही बड़ा है। एक स्थिति होती है सयोगके वली भगवानकी केवली समुद्घात में लोकपूरण की स्थिति। जिस समय भगवानके प्रदेश समस्त लोकाकाशमें पूर्ण व्याप कर फैल जाते हैं तब समझो ओह ! यह जीव कितने विस्तार वाला है- असंख्यात प्रदेशी है, और पुद्गल द्रव्यमें तो इस के स्कंधों को देखकर यह अन्दाज हो जाता है कि यह इतने बड़े विस्तार वाला है, अस्तिकाय है। यों अस्तिकाय के प्रकरणमें अस्ति और कायका अर्थ बताया गया है। जो हो उसे अस्ति कहते हैं और जो प्रदेश प्रचयात्मक हो उसे काय कहते हैं। जीव और पुद्गल दोनों अस्तिकाय हैं। धर्म, अधर्म और आकाश भी अस्तिकाय है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संकटहरण सम्यक् दर्शन—जो पदार्थ जैसा है वैसा ही मान लो तो आज ही सारे संकट खतम है। यह मैं आत्मा त्रिकाल समस्त पदार्थोंसे न्यारा हूँ। जिस समय यह मोही जीव सारे पदार्थोंको अपना ही मान रहा है उस समय भी सारे पदार्थोंसे यह न्यारा है। जब यह जीव सम्यक् परिज्ञान करके समस्त पर पदार्थोंसे अपनेको न्यारा निरखता है उस समयभी यह जीव निर्मल है और जब सर्व कर्मबन्धनसे छूटकर केवल एक असम्पृक्त रह गया तबभी यह जीव निर्मल है यह जीव धन वैभव इत्यादि समस्त परसे न्यारा है देह तक से भी न्यारा है। यों मैं सबसे न्यारा हूँ ऐसा अकिञ्चन ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव करेंगे तो शान्ति मिलेगी। पुण्य बढ़ेगा, जो जो बात सोच रक्खी हों उन सब से न्यारे अपने को आकिञ्चन्यस्वरूप ज्ञान मात्र निरखनेसे सारी सिद्धि हो जाती है:—

जीवो पुग्गल कायो धम्म अधम्मो तहेव आयासँ।
ते चेव अस्थिकाय परियट्टणलिङ्गसँजुत्ता ॥६॥

द्रव्य समूहः—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये अस्तिकाय तथा परिवर्तन के चिन्हसे जाना जानेवाले कालद्रव्यकर सहित ये सब द्रव्य होते हैं। ये समस्त द्रव्य तीन काल परिणमन कर रहे हैं, फिर भी नित्य हैं। इस गाथामें छहों द्रव्योंका वर्णन आया है। द्रव्य गुण पर्यायोंके अभिन्न आधार होते हैं। जो भी पदार्थ है उसमें कोई न कोई परिणमन अवश्य है तथा उस परिणमनका आधारभूत शक्ति अवश्य है, शक्तिका नाम गुण है, परिणमनका नाम पर्याय है। जो भी सत् है उसमें गुण पर्याय अवश्य होती है। गुण न हो केवल पर्याय हो ऐसा कुछ नहीं है, पर्याय न हो, केवल गुण हो ऐसा भी कुछ नहीं है। जो भी सत् है वह नियमसे गुण पर्यायोंका आधारभूत है। यक्तिसे भी विचारलो। कोई चीज है तो उसका कोई रूपक तो होना ही चाहिए। कोई दशा, ढंग, परिणति उसकी होनी ही चाहिए, और दशा है वह एक वर्तमानरूप है अगले समयमें और कुछ रूप हो सकती है, होती ही है।

प्रतिक्षण परिणमन—यदि ऐसा माना जाय कि जो रूपक जो दशा जिस द्रव्यकी है वही दशा सदा रहेगी सो भी नहीं बनता है। शुद्ध पदार्थोंमें ऐसी प्रतीति होती है कि जो दशा हुई है वही सदा काल रह रही है किन्तु, सूक्ष्म दृष्टिसे वे सब दशाएं समान होकर भी भिन्न-भिन्न हैं, अर्थात् यह अमुक समयमें अवस्था है, उसमें षड्गुण हानि वृद्धि होती ही रहती है, जितने भी पदार्थ हैं वे सब प्रतिक्षण अपना परिणमन करते रहते हैं।

परिणमनशीलता के कारण एक वस्तुका दूसरेमें अभाव—पदार्थोंमें परिणमन करते रहने का स्वरूप सहज पाया जाता है। यही कारण है कि किसी पदार्थके द्वारा किसी अन्य पदार्थका परिणमन नहीं होता है। कोई पदार्थ यदि दूसरे पदार्थको परिणमाये तो यह बतावो कि नपरिणमते हुए को परिणमाता है या परिणमते हुए को परिणमाता है। यदि वह न परिणमता हुआ है तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है कि जो परिणमता नहीं है उसे परिणमा दे। यदि परिणमते हुए को परिणमाता है तो वह तो स्वभावत, परिणमता हुआ ही है। उसे दूसरा क्या परिणमाये। प्रत्येक पदार्थ यह स्वरूप रखता है कि वह प्रति समय परिणमता है, परिणमता रहेगा। द्रव्य त्रैकालिक पर्यायोंका पिंड है। पर्यायोंका प्रतिषेध करदो तब द्रव्य किसे बतावोगे? पर्यायोंसे भिन्न निराला कुछ द्रव्य न समझमें आयगा। जैसे एक यह जीव द्रव्य है तो जो प्रति समय जाननहार या स्वभाव विभाव जब जो परिणमता है उस परिणाम रूपसे परिणमता रहता है। वही तो जीव है।

परिणमनोंसे द्रव्यत्वकी सिद्धि—परिणमनोंसे न्यारा द्रव्य स्वीकार करे तो फिर वह द्रव्य कैसा। जैसे एक अंगुली है, यह सीधी है, टेढ़ी है, किसी भी न किसी रूपमें रहेगी। इस अगुली की कोई दशा हम स्वीकार न करें न गोल न अन्य किसी प्रकार और भी कोई अंगुली हो यह कैसे होगा। जो पदार्थ सत् है वह किसी न किसी दशामें अवश्य रहता है यह वस्तुका स्वभाव है, तो पदार्थ अनादिकालसे है अनन्त काल तक रहेगा, तो इसमें अनादिसे प्रति समय पर्यायें होती आयी है। प्रत्येक वर्तमानमें वर्तमानमें वर्तमान पर्याय होती ही है। भविष्यमें अनन्त कालमें प्रति समय पर्यायें होती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहेंगी। उन पर्यायोंके स्वरूपसे परिणत होनेके कारण इन अस्तिकायोंको द्रव्य कहा गया है। यों पदार्थ पर्यायोंसे अभिन्न रहता है। कुछ भी दशा न हो और सत हो ऐसा कुछ हो ही नहीं सकता है। यदि पर्यायें न हो और पदार्थ मानते रहें तो वह कोरी कल्पना भर है। जैसे कि माताएँ बच्चेको हउवा-हउवा कहा करती हैं। वह हउवा क्या चीज है ? कल्पना में जिसमें भय हो जाय, अस्थिरता हो जाय, बस वही उनका हउवा हैं। हउवा कोई पदार्थ नहीं है। वह जीव है या अजीव है, किस आकारका है। हउवा कोई चीज नहीं है कल्पना मात्र है, ऐसे ही ऐसा ब्रह्माने कि जिसमें त्रिकाल कभी परिणमन होता ही नहीं है, तो वह ब्रह्म तत्त्व कुछ नहीं है।

स्याद्वादकी प्रतिपादनपुष्टता—स्यद्वाद ही वस्तुके स्वरूपको बतानेमें समर्थ हो सकता है, तब ये पक्ष आ जाते हैं, एक पक्ष ब्रह्मको अपरिणामी मानता है और एक पक्ष प्रतिसमय नवीन-नवीन ब्रह्म उत्पन्न होते है यों मानत ा है, ऐसे दो पक्ष आते हैं। उनमें एकान्त पड़ा हुआ है। उनका समन्वय स्याद्वाद कराता है। चीज तो वह एक है, वह है द्रव्य गुणपर्यायात्मक। द्रव्य द्रष्टिसे यह ब्रह्म अपरिणामी है अर्थात् यह ब्रह्म चैतन्य स्वभावको त्यागकर अचेतन रूप त्रिकाल नहीं हो सकता, इस दृष्टिसे उसमें रंच भी परिणमन नहीं है, किन्तु कोई भी पदार्थ हो, परिणमन बिना रह नहीं सकता, तो इस ब्रह्मकी जो प्रतिसमय पर्यायें होती हैं वे पर्यायें अनित्य हैं और उन पर्यायों सहित ब्रह्म प्रति समय नया-नया होता है, ब्रह्म उत्पन्न नहीं होता, किन्तु जिसे हम आप कह सकते हैं किसी मनुष्यको कि यह बालक मनुष्य मिट गया, जवान मनुष्य मिट गया, वृद्ध मनुष्य मिट गया, एक मनुष्य होकर भी अवस्था सहित नाम लगाने से उसे समूचा ही उत्पन्न हुआ कह सकते हैं। उसमें पर्यायोंकी मुख्यता है। यों प्रत्येक पदार्थ गुण पर्यायात्मक है, गुणोंकी दृष्टिसे यह नित्य है और पर्यायोंकी दृष्टि से अनित्य है। ऐसे ये समस्त द्रव्य नित्यानित्यात्मक हैं।

अनित्य होनेपर भी नित्यता—यहाँ यह शंका नहीं करना है कि जब इस द्रव्य में भूतमें भी परिणमन हो, भविष्यमें भी परिणमन होगा, वर्तमान में भी परिणमन चलता है तो ये पदार्थ अनित्य हो गये। अनित्य नहीं हैं यद्यपि अवस्था की दृष्टिसे अनित्य हैं तो भी उन समस्त पर्यायोंमें पदार्थ अपने प्रतिनियत स्वरूपका कभी परित्याग नहीं करते हैं इस कारण नित्य हैं।

प्रतिपाद्य विषय— इस ग्रन्थमें मुख्यतया ५ अस्तिकायोंका वर्णन है, पर इसके साथ काल द्रव्यके वर्णनको गुन्जायश क्या निकली ? यहाँ यह शंका हो सकती है कि जब ग्रन्थ का ही नाम पञ्चास्तिकाय है और ५ अस्तिकायोंका वर्णन है तो कालद्रव्यका हम वर्णन करें ऐसी गुन्जायश कैसे निकल आयी है। जिसका नाम रख लिया है उस ही का वर्णन करते रहना चाहिए। समाधान यह है कि ये ५ अस्तिकाय प्रतिसमय परिणमते रहते हैं, उनके परिणमनका निमित्त कारण क्या है ? यह जिज्ञासा होती है। उसका उत्तर है कालद्रव्य। लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक-एक कालद्रव्य अवस्थित है और उस कालद्रव्यपर उस प्रदेशपर जो भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंके परिणमनका कारण उस कालद्रव्यकी समय नामक पर्याय है। मोटे रूपमें यह सोच लीजिए कि यदि समय न गुजरे तो पदार्थका परिणमन कैसे होगा। जैसे किसीको कानपुर से बम्बई जाना है, ८ बजे से वह जा रहा है तो कुछ समय गुजरेगा तब ही बम्बई पहुँच सकेगा। ८ बजे चले चले और ८ ही बजे पहुंच जाय ऐसा तो कभी हो नहीं सकता है। इस प्रकार यह तो चलने को बात कही है। रखी-रखी चीज पुरानी हो जाय, तो समय गुजरेगा तब ही तो पुरानी होगी। पदार्थोंके परिणमनमें कारण समयका गुजरना होता है। ५ अस्तिकायोंका परिणमन जो बताया गया है उस परिणमनका कारण क्या है ? उसके उत्तरमें कालद्रव्य का प्रतिपादन करना पड़ा।

परिवर्तनलिङ्गता – पुद्गल आदिका पदार्थों के परिणमन का कारण यह काल द्रव्य है एक बात। दूसरी बात यह है कि पुद्गल आदिकका जो परिवर्तन होता है उस परिवर्तनसे काल द्रव्यकी पर्याय ज्ञात होती है। जैसे समय गुजरे तो कोई मनुष्य १० कोश पहुँच गया। और १० कोश पहुंचेगा तो यह ज्ञान होगा कि कितना समय हो गया है इन दोनोंका परस्परमें ज्ञान कराने का सहयोग है। समय गुजरा तब परिणमन हुआ तो उससे यह जाना कि समय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुजरा। जैसे दिनके १२, १४ घंटे गुजरते हैं तो उनमेंसे सूर्य पूर्वसे पश्चिममें पहुंच जाता हैं, और समय गुजरता हैं यह हमने कैसे जाना कि जब सूर्य पूर्वसे पश्चिममें पहुँचेगा तब ख्याल होता है कि ओह ! १२-१३घंटे समय गुजर गया है, इस काल द्रव्यको यों छोड़ा नही जा सकता। इसका वर्णन आवश्यक है करना। यह काल बहुप्रदेशी नहीं है इस लिए अस्तिकाय नहीं माना है।, पर समस्त पदार्थोंके परिणमनमें कारणभूत यह काल द्रव्य है।कालद्रव्यका समयनामक परिणमन जीव के परिणमनमें कारण हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन सबके परिणमनमें कारण है और साथ ही कालद्रव्यके परिणमन में भी कारण हैं। कालद्रव्य अपने भी परिणमनमें कारण है।

आकाश द्रव्यकी अखण्डता—आकाश एक है, अखंड है, इसके व्यवहारसे दो भेद कर डाले हैं, लोकाकाश और अलोकाकाश। जितने अकाश में समस्त द्रव्य रहें उतने आकाशका नाम लोकाकाश है और इससे बाहरके आकाशका नाम अलोकाकाश है। इतने सम्बधके भेद कर देनेसे कहीं आकाशके दो टुकड़े नहीं हो जाते हैं। वह एक अखण्ड है। अब यहां एक यह जिज्ञासा हो सकती है कि लोकाकाशमें कालद्रव्य है ही नहीं, वहां तो केवल आकाश ही आकाश है। तो वहाँ के आकाशका परिणमन कैसे होगा। यह आकाश अमूर्त है। यह आंखों दिखता नहीं है। दिखने वाली चीज मूर्तिक होती है। केवल पुद्गल ही आँखों देख सकते हैं, अन्य कोई द्रव्य आंखों कहीं दिखते है, उसपरभी आकाश वास्तविक सत् है, उसमें अविभागी अनन्त प्रदेश हैं उनका प्रति समय परिणमन होता है। वह एक अखण्ड आकाश है। उसके बारेमें यह जिज्ञासा होती है कि लोकाकाशका परिणमन कैसे होगा क्योंकि वहां कालद्रव्य है नहीं अर्थात् पदार्थके परिणमनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उस पदार्थके चारों ओर निमित्त रहें, निमित्त किस ओर हो, किस ढगसे हो वह परिणमन में निमित्त होता हैं।

अखण्ड अनुभवन—जैसे पैर में कांटा चुभ जाय तो सारे जीव प्रदेशमें दुःख होता है। यहाँ यह आवश्यक नहीं है कि जीव जितना बड़ा है सब ओर से एक साथ कांटा चुभे तब दुःखी हो उस कांटे के चुभने का वह किसी एक तरफ है। कैसा ही निमित्त हो वह तो दुःख का सर्व प्रदेशों में कारण होता है, क्योंकि यह जीव अखण्ड है ना। जो पिण्ड अखण्ड नहीं है उसके लिए तो जहां निमित्त होगा वहां परिणमन है। जैसे यह चौकी पदार्थ है, यह एक अखण्ड चीज नहीं है, अनन्त परमाणुवों का यह पिण्ड है, इस कारण जिस खूंट में अग्नि लगी होगी वही खूंट जलेगा, कहीं सारी चौकी न जलेगी, कि चौकी एक पदार्थ है ही नहीं, अखण्ड है ही नहीं, जो अखण्ड पदार्थ है उसके लिए निमित्त किसी भी ओर हो, समूचे पदार्थ के परिणमनके लिए निमित्त होता है। चूंकि यहाँ कालद्रव्य है और यह निमित्त आकाश के परिणमनमें है तो समूचा आकाश एक साथ एक परिणमनसे परिणमता रहता हैं।

षड्द्रव्य—यों काल द्रव्य पुद्गल आदिक के परिवर्तनमें कारण है और पुद्गल आदिकके परिवर्तनसे कालद्रव्य का ज्ञान होता है, इस कारण अस्तिकायसे इसका निनिमित्त नैमिमित्तक सम्बन्ध है इसी कारण इस कालद्रव्य को यहां बताया जा रहा है, और साथ ही इसका नाम धरा परिवर्तनलिंग। चाहे काल कहो, चाहे परिवर्तनलिङ्ग कहो दोनों एक दोनों एकार्थक हैं। परिवर्तनलिङ्ग का अर्थ यह है कि जो समग्र पदार्थों के परिणमनमें कारण हो। यों काल सहित ५ अस्तिकाय षड्द्रव्य कहलाते हैं।

भेदविज्ञानका शिक्षण—इस प्रकारसे हमें यह जानना है कि इस लोकमें अनन्तानन्त जीव हैं. अनन्तानन्त पुद्गल हैं। एक धर्मद्रव्य एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य असंख्यात कालद्रव्य हैं, इन सब द्रव्यों में एक यह निज जीवास्तिकाय ही उपोदय है, यह जीवास्तिकाय मेरे ही देहके अन्तर्गत है। कल्याण का निधान, आनन्दका धाम प्रभुतासे सम्पन्न यह भगवान अपने देहमें विराजमान हैं, पर मोहका कैसा नशा छाया है कि यह स्वयं अपने आपको नहीं जान पा रहा है। जो इन्द्रिय आदिक साधन मिले हैं भूलमें भटकने और बहकाने के लिए उन साधनोंके द्वारा हम बाह्य में देखा करते हैं, और जो कुछ नजर आता है उसे हम सहीं मान लेते हैं। झूठ को यथार्थ मानने के कारण राग और द्वेष बढ़ते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं, इस जीवपर संकट है तो राग और द्वेषका है, अन्य कुछ नहीं है ? इस जीवको अपने सही स्वरूप का विश्वास नहीं है, सो जबरदस्ती आशा करके भिखारी बनकर परपदार्थों के अपनाता है, यह मेरा है, यह मेरे मन माफिक रहें ऐसी बुद्धि बनाये है इसी कारण क्लेश होता है। इस मोहीको यह अपनी खबर नहीं है कि यह मैं आत्मतत्त्व इस देहमें बसकर भी देहसे निराला शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हूं।

मोहका बोझ—कोई अपने आपमें मोहका बोझ लादले तो यह संसार में ऊपर तिरता रहता है। जीवपर मोहका बहुत बड़ा बोझ है। कभी-कभी आप ऐसा भी अनुभव करते होंगे कि जब हमारे मोह राग चिंता बहुत सताती है तो ऐसा लगता है कि स्वयं बड़े वजनदार हैं। यद्यपि मोहमें वजन नहीं होता, मोहकी कल्पनावों से यह जीव बोझल हो जाता है और अपने को हल्का ज्ञान ज्योती स्वरूप आनन्दस्वरूप नहीं मान सकता है। आनन्दके अनुभवन के समय यह जीव अपने को हल्का अनुभव करता है और मोहकी परिणत के समय अपने को बोझल अनुभव करता है। यह मोह हटे और यह भाव बने कि मैं सर्व से विविक्त हूँ। किसी पर न मेरी मालिकाई है न कर्तृत्व है, न भोक्तृत्व है, न अधिकार है। सभी अपने स्वरूपसे हैं, परके स्वरूपसे नहीं हैं, फिर ऐसे सहज स्वतन्त्रपदार्थ में यह मानने की जबरदस्ती करना कि यह इनका है, यह मेरा है, इससे मेरा हित है, इससे मुझे सुख है आदिक मान्यताएँ बनाना यह तो जीव के लिए अहितकारी ही बात है।

समाधिशरण—भैया ! इन समस्त पदार्थोंमें छाट लो-तुम्हारे लिये शरण क्या है ? तुम्हारे लिये मंगल क्या है ? शरण है मेरे लिये मेरे ही शुद्ध ज्ञायकस्वरूपका अनुभव। इसके अतिरिक्त सभी उपयोग मेरे को दुःख के ही कारण हैं। यह मैं शुद्ध जीवास्तिकाय स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही जाना जा सकता हूँ, पाया जा सकता हूँ। ज्ञानसे ही जिस का समस्त स्वरूप भरा हुआ है, ऐसे इस शुद्ध जीवास्तिकायको मैं ऐसे ज्ञानसे जानूंगा जो ज्ञान सहज अपूर्व उत्कृष्ट आनन्द सहित रहता है। जिस ज्ञानके साथ अधीरता व्यवस्थित रहती हो उससे हम अपने स्वरूपको नहीं पहिचान सकते हैं। जो ज्ञान सहज आनन्द लेता बर्त रहा है उससे मैं अपने आपको अनुभव सकता हूँ। ऐसा ज्ञान समाधि भाव से उत्पन्न होता है। समाधि तब होती है जब रागद्वेष क्षीण होते हैं। रागद्वेष क्षीण तब होंगे जब हम रागद्वेष रहित केवल ज्ञाताद्रष्टा निजस्वरूपका श्रद्धान करें, इसही का ज्ञान करें, और इसके ही ज्ञानमें हम रमण करें, तो इसमें समाधि उत्पन्न होगी, सहज आनन्द जगेगा, और उस आनन्द के ही साथ इस ज्ञान के द्वारा अपने आपका अनुभव कर लेगा।

संकटहारी अनुभव—यह जीव प्रति समय अपने को किसी न किसी रूप अनुभव करता रहता है। कोई यों अनुभव करता है कि मैं अमुक घर का हूं। अमुक वर्णका हूँ। अमुक नामका हूं, अमुक पोजीशन का हूँ। ये सब अनुभव संसार बढ़ाने के कारण हैं। बजाये इसके ऐसा अनुभव चले कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, आनन्दघन हूं, सबसे निराला हूं, अपने स्वरूप हूँ। इस प्रकार शुद्ध निज स्वरूप मात्र अपनी प्रतीति बने तो उसमें ऐसा आनन्द प्रकट होता है कि जिससे भव-भवके बांधे हुये कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। इसके लिये हमारा यह यत्न हो कि जो हमने अब तक देखा सुना या भोगा, ऐसे समस्त परद्रव्योंके आलम्बनसे अहित माने। और आहार, निद्रा, भय, मैथुन, परिग्रह इन संज्ञावों में अपना उपयोग न फसायें। ये अहितरूप ही हैं। मेरा आत्मतत्त्व मेरे शुद्ध स्वरूपका उपयोग ही मेरे लिये हितरुप है, इस तरह की प्रतीति में रहें तो हम निज शुद्ध जीवास्तिकायको पा सकते हैं। समस्त प्रदेशोंका सार और प्रयोजन इतना ही है कि सर्व विकल्प सकल्पोंसे हटकर निज ज्ञानस्वरुपमें अपना उपयोग स्थिर रहे, जिसके होने से सर्व संकट दूर होंगे।

अण्णोण्ण पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सग सगभाव ण विजहंति ॥७॥

घेत्रसंकरता होनेपर भी विविक्तता:—*अनन्त जीव द्रव्य और उनसे भी अनन्त गुणें पुद्गल द्रव्य एक*

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असंख्यात काल द्रव्य ये समस्त पदार्थ अपने स्वरूप चतुष्टयसे हैं परके स्वरूपसे नहीं हैं। ये पदार्थ यद्यपि एक ही जगहमें पाये जाते हैं। लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर छहोंद्रव्य उपस्थित हैं, यों कहो कि एक दूसरेमें प्रवेश किए हुए हैं। बाह्य क्षेत्रकी अपेक्षा आकाशके उस प्रदेश पर ही सर्वद्रव्य अवस्थित हैं और जब उस ही प्रदेशपर अवस्थित हैं तो एक दूसरेमें प्रवेश किए हुए हैं। और यहाँ तक कि निमित्त नैमित्तिक बन्धनमें जीव कर्म और शरीर ये विशेषतया एक दूसरेमे प्रविष्ट हैं, इतने पर भी कोई भी पदार्थ अपने स्वभावको छोड़ता नहीं है। सभी पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं।

पदार्थोंका स्वातन्त्र्य—पूर्व गाथामें यह बताया था कि ये पदार्थ प्रतिक्षण परिणमते रहते हैं तिस पर भी शुद्ध दृष्टि से देखा जाय तो वे नित्य है अनित्य नहीं, विनाशीक नहीं, इस ही तरह इस ही कारणसे इन समस्त पदार्थोंमें एकत्वका प्रसंग नहीं होता है। जीव और कर्ममें व्यवहार दृष्टिसे एकत्व है, परस्परमें बंधे हुए है, मूर्त हैं, फिर भी परस्परमें एक दूसरे के स्वरूपको ग्रहण नहीं करते हैं। एक ही जगहमें कोई पदार्थ आ जाय तो उसे संकर कहा करते हैं ऐसा बाह्य संकरता आनेपर भी उस स्थितिमें एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका प्रवेश नहीं है सब अत्यन्त व्यतिकर रहा करते हैं। ऐसे एक ही जगह सब पदार्थ होने से संकर और व्यतिकर को आपत्ति हो सकती है पर यहां यह आपत्ति नहीं है, क्योंकि पदार्थ अपने अपने सत्त्वसे ही रहता है, पर के सत्त्वसे नहीं।

सक्रिय और निष्क्रिय समस्त पदार्थोंकी परस्पर विविक्तता—इन पदार्थोंमें जीव और पुद्गल तो सक्रिय पदार्थ है, जीव और पुद्गल दोनो एक जगह से दूसरी जगह चल देते हैं, इनमें क्रिया पायी जाती है, किन्तु शेषके चार द्रव्य धर्म अधर्म, आकाश और काल ये जहाँ हैं तहां ही अनादिकाल से हैं। और अनन्तकाल तक वहाँ ही रहेंगे। इन चार द्रव्योंमें क्रिया नहीं पायी जाती है, ऐसे ये संक्रिय और निष्क्रिय पदार्थ एक ही क्षेत्रमें पाये जाते हैं फिर भी सब एक दूसरे से भिन्न ही है। जैसे आप हम जिस जगह बैठे हैं, जितने प्रदेशमें हमारा आत्मा है उनके प्रदेशमे यह शरीर भी तो हैं शरीर अलग पड़ा हो आत्मा अलग जगह बैठा हो ऐसा तो नहीं है। दूध और पानीकी तरह है। जैसे दूध और पानी एक स्थानपर होकर भी भिन्न-भिन्न हैं। ऐसे ही शरीर और आत्मा हैं तो एक स्थानपर, परन्तु शरीर शरीर की जगह है और आत्मा आत्माकी जगहहै। एक ही स्थान में होकर भी परस्परमें अत्यन्त भिन्न हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप त्रिकाल भी नहीं हो सकता है। ऐसा तो वस्तुकी स्थिति है, किन्तु मोहीजन इस दृढ़ दुर्गको न समझकर यह एक दूसरे का स्वामी निरखता है, एक का दूसरे पर अधिकार निरखता है। बस यही भ्रमबुद्धि ही कर्म बन्धनका कारण है।

समस्त अर्थोंमें सार तत्त्व—इन द्रव्योंके बीचमें सारभूत द्रव्य क्या है? हम किस पर अपनी निगाह रक्खा करें कि हमें कल्याण मिले, शान्ति मिले, ऐसा सारभूत तत्त्व क्या है। जो कुछ यह दृश्यमान है वैभव समागम परिजन घर ये सब मायारूप स्कध हैं, ये तो स्वयंमें ही परमार्थ नहीं हैं, मेरे लिए तो क्या परमार्थ बनेंगे। जो कुछ दिखता है यह सब मेघ और विजलीकी तरह चचल है। ये सब एक दिन विघट जायेंगे। जैसे मेघ कितने ही रूप रख लेते हैं- हाथी, घोड़ा, मकान, इत्यादि, और देखते-देखते ही वह आकार विलीन हो जाता है। तो जैसे ये मेघ क्षणिक हैं, चंचल हैं इसी तरह जो कुछ भी यहाँ दिखता है सब चचल है। ऐसे इन दृश्यमान स्कधोंमें कोई सार भूत चीज है ही नहीं। धर्म, अधर्म आदिक अमूर्त आदिक पर द्रव्योंसे हमारा कोई व्यवहार चलता ही नहीं, हम उनपर क्या निगाह करें। केवल हमारे लिए सारभूत शरणभूत पदार्थ है तो वह है निज शुद्ध जीवास्तिकाय, अर्थात् अपने आपका जो अन्तः स्वरूप है, विशुद्ध चैतन्यमय है उस विशुद्धस्वरूपकी दृष्टि करना यही सारभूत और शरण तत्त्व है। यह अपने आपके अन्दर मौजूद है।

सार शरण अनुपम परमात्मतत्त्व—अहा, कैसा यह विलक्षण परमात्मतत्त्व है कि इसे देखने की विधि जिसे मालूम हो सो तो देख सकता है, और जिसे देखने की पद्धति नहीं मालूम है वह अंतःविराजमान होने पर भी इस प्रभुता को निरख नहीं सकता है। जिसे शुद्ध द्रव्यार्थिक नय अथवा शुद्ध पर्यायार्थिकनयसे देखना चाहिए। अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आपको जितना अकेला अनुभव करेंगे उतना ही हम प्रभुके मर्ममें पहुँच जायेंगे। अपने आपकी इस प्रभुताको इस भगवत् तत्त्वको निरखने की यही एक पद्धति है कि हम अपने को अकेला निरखा करें। उस अकेले की बात नहीं कह रहे हैं जिसके आगे पीछे कोई नहीं है, जिसकी कोई पूछ भी नहीं करता है। वह तो पर्यायदृष्टि से शरीर सहित अपने को निरखता हुआ अकेला कह रहा है, किन्तु अपने आपमें अनादि अनन्त विराजमान जो शुद्ध चैतन्य स्वभाव है उस भगवत् तत्त्वके दर्शन हो सकेंगे। इस प्रभुताके दर्शनमें अनन्त आनन्द बसा हुआ है।

शान्तिका सुगम स्वाधीन उपाय—देखो भैया! कितना सुगम स्वाधीन शान्तिका उपाय है, पर ये राग-द्वेषकी ज्वालाएं यह मोहका पंक कलंक इस प्रभुताके ऊपर आवरण रूप पड़ा हुआ है जिन आवरणोंसे यह स्वयं प्रभु होकर भी अपने आपकी प्रभुताका दर्शन नहीं कर पाता है। इसके दर्शनकी विधि यही है, अपने को शरीर सहित न अनुभव करो। मैं शरीरसे न्यारा हूँ। जो रागद्वेष विचार विकल्प वितर्क उठ रहे हों उन रूप अपनेको न तको। मैं उन विचार वितर्कोंसे न्यारा हूँ। ऐसा अपने आपके एकत्व स्वरूपको देखो। जितना अपने आपको अकिञ्चन अकेला निरखोगे उतना ही अपना ही अपने आपके मर्मको पावोगे। यह शुद्ध जीवास्तिकाय परमात्मस्वरूप ज्ञान और आनन्दसे भरपूर है। इसे स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही जाना जाता है। जानने वाला यह मैं जब इस जानने वालेको ही निरखने लगूँ उसे कहते हैं स्वसम्वेदन ज्ञान, ज्ञान ज्ञानके ही स्वरूपको जानने लगे तो वहाँ जानने वाला भी ज्ञान रहा और जो जाननेमें आया वह भी ज्ञान रहा यों ज्ञान-ज्ञान दोनों ज्ञाता ज्ञेय हो जानेसे एक निर्विकल्प अवस्था हो जाती है। स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही यह आत्मतत्त्व जाना जाता है, इसीको कहते हैं शुद्ध परमपारिणामिक भावको ग्रहण करने वाला उपयोग।

शाश्वत स्वभावका आश्रयण—जो हममें परिणतियां होती हैं उनपरिणतियों को न निरखकर उनपरिणतियोंका आधारभूत जो एक स्वभाव है उस स्वभावका उपयोग करें उस उपयोगके द्वारा शुद्ध जीवास्तिकाय सम्विदित होता है। यह स्वसम्वेदन ज्ञान जिस समय हो रहा होगा उस समय यह जीव समतारससे भरपूर रहा करता है। उस परम समतामें शुद्ध आत्मीय आनन्द रहा करता है। यह परम आनन्द निर्विकल्पदशामें उत्पन्न होता है। इस स्थितिमें किसी प्रकारका संकल्प विकल्पकी तरग वहां नहीं उठती है।

द्वैतबुद्धिकी तरङ्ग—यह आत्मा स्वभावतः शान्त है, किन्तु इसमें जैसे ही कोई विकल्प और वितर्क की कल्लोल उठी कि बस यही फिर त्रस्त और संक्लिष्ट हो जाता है। ये संकल्प विकल्प उठा करते हैं पर द्रव्योंका आलम्बन करनेसे। खूब अनुभव कर लीजिए। अपने आत्मतत्त्वके सिवाय किसी भी पर द्रव्यका जब हम आलम्बन करते हैं तो उस उपयोग में ही ऐसी खासियत है कि इससे विकल्पजाल उत्पन्न हो जाते हैं। यह द्वैत, भेदकर दिया ना। मैं कौन हूँ और किसी दूसरे पर दृष्टि गयी। इस द्वैतभावमें विकल्प हुआ, कष्ट हुआ, यह सब प्राकृतिक बात है।

पराशाका क्लेश—यह जीव पर द्रव्योंका आलम्बन करता क्यों है? इसको किसीन किसी प्रकार के इन्द्रिय के विषय अथवा मनके विषयोंमें वाञ्छा रहा करती है। मनका विषय है ख्याति, लाभ, पूजा का मेरा बड़प्पन बढ़े, सारी दुनिया मुझे जान जाये, यह कितनी मोहकी दृष्टि है, अरे यह सारी दुनिया का मानव समूह स्वयं मायामयी है, विनाशीक है, दुखी है, कर्मोंका प्रेरा है। इन दुःखी और भिखारी पर द्रव्योंमें मोह रखने वाले इन जीवोंमें मैं अच्छा कहलाऊं ऐसा भावका क्या अर्थ है? जैसे कोई कहे कि मैं बदमाशोंका बादशाह कहलाऊं तो यह अच्छी भावना तो नहीं है? पूछ होगी तो यह तो कोई भली बात नहीं है। इस ही तरहसे कर्मोंके प्रेरे जन्म मरणके दुःखसे दुःखी निरन्तर विकल्प की ज्वालावोंसे जल रहे इस संसारके प्राणियोंमें मैं कुछ अच्छा कहलाऊं इस प्रकार की इच्छा होना यह कितनी बड़ी कलुषता है। यही है मनका विषय। अब सोच लीजिए कि मनका विषय भी कितना गंदा और भूलमें भटकाने वाला विषय है।

मनका उद्वेग—मोही जीव निरन्तर यह चाह रहे कि मुझे अमुक चीजका लाभ हो जाय, अमुक चीज प्राप्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो जाय ऐसी लाभकी बातोंका बहुत-बहुत विचारना यहही तो मनका विषय है, पर सोचो तो सही तेरा आकाशवत् अमूर्त चतन्यस्वभाव, उसमें किसी पर वस्तुका प्रवेश भी हो सकता है क्या ? अनहोनी बातको होनो बनानेकी इच्छा करना यह तो बुद्धिमानी नहीं है, और देखिये इन्द्रियके विषय जिन विषयोंको देखो उनकी ही तो चाह होती है अथवा जिन विषयोंको भोगा है उन विषयोंकी ही तो चाह होती है ऐसी इष्ट श्रुत और अनुभूत विषयोंकी जो बाञ्छा है, इसही कारण कृष्ण, नील, कपोत आदिक जो खोटे परिणाम हैं उन परिणामोंसे प्रेरित होकर यह जीव परद्रव्योंका सहारा तकता है और जहां इस जीवने अन्तः श्रद्धासे किसो परद्रव्यका सहारा तका कि बस यह दुःखी हो जाता है। इन सब क्लेशजालों से छूटनेकी सामर्थ्य एक सम्यक्त्व में है।

सम्यक्त्वका प्रताप:—सम्यग्यदर्शन होनेपर अनन्त कर्मोंका बन्धन शिथिल हो जाता है। सच पूछो तो जितनी स्थितियाँ कर्मोंकी और जितने अनुभाग कर्मों के सम्यक्त्व होनेपर खिर जाते हैं इनके खिरने पर फिर तो ये बहुत हल्के बोझ वाले हो जाते हैं, यों समझिये कि एक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने पर हमने ९९ प्रतिशत काम कर लिया है, अब केवल एक प्रतिशत काम और रह गया है। किसी भूली भटकी स्थिति में सही मार्गकी झलक आ जाय तो वह सबसे बड़ा कार्य हैं। अब चलनेका रहा तो चला लिया जायगा।

सम्यक्त्वके प्रतापपर एक दृष्टान्त— एक दृष्टान्तमें सद्दर्शनका प्रताप सुनिये। कोई पुरुष किसी गांवको जा रहा था। शाम हो जानेसे उसे सही रास्ता न मिला, वह भटक गया अधेरी रात्रिमें एक जंगलमें फस गया। अब वह मुसाफिर ९, १० बजेके लगभग में विचार कर रहा है कि मै बहुत फस गया हूं। यदि बढ़ता ही चला गया तो भूल बढ़ती ही जायगी। वह वहीं ठहर गया। हिम्मत बना ली, मर जायेंगे तो मर जायेंगे, अथवा जो दशा होनी होगी हो लेगी करीब १२ बजे रात्रिको क्षण भरको एक बिजली चमकी। उस क्षणिक बिजली की चमकमें उसे दिख गया वह रास्ता जो एक मुख्य मार्ग था। उस मार्गके देखते ही उसके मनमें बड़ा संतोष आ गया। फंसा है यद्यपि जंगलमें और सिर्फ एक मार्गको ही झलक तो हुई, उस मार्गकी झलक के कारण उसे पूर्ण संतोष हो गया। अब उसे डर नहीं रहा। चिन्ता शोक नहीं रहा। उसे यह निर्णय हो गया कि तीन चार घंटे और रह गये हैं। रात्रि गुजरने दो, इस ही रास्तेसे चलकर सुबह पहुँच जावेंगे। तो आप सोचो कि क्षण भरकी झलक कितना बड़ा काम देती है। ऐसे ही इन इन्द्रिय विषयों से, मनके विषयोसे निवृत्त होकर हम अपने आपके स्वरूपकी कुछ क्षण झलक कर पायें तो यह कितना काम देगा।

सम्यक्त्वमें आशयकी स्वच्छता—सम्यक्त्वका अचिन्त्य प्रभाव है। सम्यक्त्व बिना ही यह जीव अब तक संसारमें भ्रमण करता चला आया है। सम्यक्त्वमें यही तो एक विश्वास बनता है। सर्व परिपूर्ण हैं, सब अपने द्रव्यत्वगुणके कारण अपने आपमें निरन्तर परिणमन किया करते हैं। सभी पदार्थ अपने आपके ही कर्ता और भोक्ता होते हैं। इसी विधिसे ही सर्व पदार्थोंका सत्व बना हुआ है ऐसी स्थितिमें कहां गुंजाइस है कि कोई पदार्थ किसी का स्वामी बन जाय, कर्ता भोक्ता बन जाय। यह स्वरूपका किला बड़ा मजबूत है। इसमें विघटन नहीं हो सकता है। ऐसे एक इस स्वतंत्र स्वरूपकी श्रद्धामें यह सम्यक्त्व हो जाता है। सम्यक्त्वसे वास्तविक मायनेमें जैनका प्रारम्भ हुआ। सही दृष्टि से यह कबसे जैन कहलायेगा ? जबसे इसे सम्यक्त्व हो। सम्यग्दृष्टिको चिन्ता आकुलता व्याधि शोक ये कुछ नहीं हुआ करते हैं। वह अपनेको अकिञ्चन परिपूर्ण सुरक्षित निरख निरखकर अन्तः प्रसन्न रहा करता है।

स्वरूपदर्शनकी बाधाहरता—इस गाथा में वस्तुका यथार्थ स्वरूप बताया गया है, जिसको देखनेसे जीवको कोई बाधा नहीं रहती है। देखो ये अनन्तानन्त द्रव्य एक ही जगह भी रहें, परस्पर में संकरता भी हो जाय तो भी अपने अपने प्रतिनियत स्वरूपसे यह च्युत नहीं होता है। अपने इस अमिट स्वरूपको अपनेमें ही लिए रहा करता है, एक दूसरे का स्वरूप ग्रहण नहीं करता है। इस चीजको अपने आपपर आजमाय, जितने कुछ ये पिण्ड हैं, जिसे यह मोही प्राणी मैं मैं कहा करता है इस पिण्ड में इस व्यञ्जनपर्याय में जीव तो एक हुआ और इसके साथ अनन्ते तो पुद्गल परमाणु लगे हैं और अनन्ते कर्मोंके परमाणु लगे हैं। इस समय एक के साथ ये अनन्तानन्त द्रव्य चल रहे हैं, लिपट रहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं जिससे यह संसारमें रुल रहा है। लेकिन जब इसे सही तत्त्वका बोध हो जाय तो ये अनन्तानन्त भी पुद्गल परम णु इसके साथ लगे हुए यों शोभा देंगे जैसे किसी समर्थ हाथीके पीछे छोटे-छोटे अनेक कुत्तोंके बच्चे भौंकते हैं। वह हाथी गम्भीर ही रहता है, उसको रंच भी क्षोभ नहीं होता है, वह अपनी ही धुनमें अपनी गज चालसे चलता ही जाता है। ऐसे ही, ज्ञानी जीव किसी संसार की किसी परिस्थिति तक इसके साथ अनन्त आपत्तियां और ददफद पक्ष लग रहे हैं, किन्तु जिसने अपनी ज्ञान गम्भीरता का निर्णय किया है वह गम्भीर और धीर होकर अपने ही स्वरूप पथपर चलता जाता है।

ज्ञानपद्धति—भैया ! अपना कर्तव्य है कि हम जिस किसी को भी जानें, इस ढगसे जानें कि एक स्वतंत्र पदार्थ है, वह अपने सत्त्वके कारण परिणमता रहता है, इसमें मेरा स्वामित्व नहीं है। इस तरह वस्तुकी स्वतन्त्रताको निरख-निरखकर जो अपना ज्ञानबल पुष्ट किया करता है ऐसा पुरुष ही परम समतामें आता है। इस समतारसका स्वाद लेकर जो एक स्वसम्वेदन ज्ञान बना है उस ज्ञानसे यह भरपूर और उस ज्ञानसे गम्य अपने आपको निरन्तर अनुभवता रहता है। इससे बढ़कर धर्म करनेका अन्य व्यवसाय नहीं है। उस अपने आपमें विराजमान अपने ही चैतन्यस्वरूपको निरखना, यही वास्तविक मायनेमें धर्मपालन है और इस धर्मपालन फलमें अवश्य ही निर्वाण प्राप्त होगा।

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरुवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥८॥

अस्तित्वका स्वरूप:—इस गाथामें अस्तित्व का स्वरूप कहा गया है। अस्तित्व कहो या सत्ता कहो एकही अर्थ है, जिसे हिन्दीमें है कहते हैं। है बना सर्व पदार्थोंमें मौजूद है। है का जितना भाव है उस दृष्टिसे सब पदार्थोंमें वही बात है। है में है का रहना सबमें एक समान है। उस है में जो विशेषता आता है अर्थात्‌अमुक पदार्थ अमुकरूप है, पदार्थ इस प्रकार परिणमने वाला है इस तरह है में जो और विशेषताएं होती हैं वे अन्य गुणोंके कारण होती हैं। "है" सब पदार्थोंमें हैं और एक ही वस्तुके समस्त गुणोंमें है, इसी कारण सत्ता सर्वरूप है। कहाँ सत्ता नहीं है। जो है सो 'है' ही तो हैं। है की दृष्टिमें सब द्रव्य एक समान हैं। जैसे हम जीव जीवमें ही विशेषता जानना चाहते है तो शुद्ध यह सिद्ध भगवान है पर जीवदृष्टिसे सिद्ध ससारी सब एक चितस्वरूप हैं। इसी प्रकार जीव और अजीवमें हम 'है पना' हो जावेंगे तो परमाणुका "है पना" और सिद्ध का "है पना" सभी एक समान हैं।

अस्तित्वका सादृश्य:—हम आप चूंकि कर्मोंके प्रेरे हैं, इनसे छूटना चाहते हैं, शान्तिलाभ लेना चाहते हैं इस कारण हम आपकी दृष्टिमें सिद्धप्रभुका महत्व है, सिद्ध अनन्त सुखी है, परिपूर्ण सुखी हैं, यों सिद्ध प्रभु का महत्व है, किन्तु एक परमाणु और सिद्ध और सभी एक सामान्यरूपसे देखा जाय, अस्तित्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो वह सब एक ही समान है। परमाणु भी है, सिद्ध भी है और जितने भी, शुद्ध द्रव्य है वे सब ही हैं। इस दृष्टिसे सबकी बराबरी हैं। है पना शुद्ध हो, अशुद्ध हो, समस्त पदार्थोंमें एक रूप रहता है इसकारण सत्ता सर्व विश्वरूप है।

अस्तित्वकी सर्वव्यापकता—जो लोग ऐसा मानते हैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक हैं, जो कुछ दिखते हैं चेतन अचेतन पदार्थ ये सब वही एक ही हैं ब्रह्म, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। यह दृष्टि उनके एक सादृश्य अस्तित्व मात्रको लेकर होती तो इसमें कोई अड़चन न थी। यदि कोई ब्रह्मनामक व्यापक एक अर्थक्रियाकारी सत् मान रहे हो, अलग एक व्यक्तिका रूप और उसे सर्वव्यापक तथा इन दृश्यमान परिस्थितियों के रूपमें उखड़ने वाला मानते हो तो वहां विरोध है, परन्तु सत् ही यदि ब्रह्म है तो इसमें कोई विरोध नीं है। समस्त विश्व एक सद्ब्रह्मरूप हैं। सत्त्वसे कुछ न्यारा क्या है।

अस्तित्वकी एक रूपता—यह सत्ता अनन्त पर्यायों रूप है। जितने भी भूतकाल के परिणमन हुये हैं तथा भविष्यकाल के परिणमन होंगे समस्त परिवर्तनरूप हैं, सब परिणनों में यह अस्तित्व बराबर बना रहता है। यह अनन्त

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यायोंरूप है। वहां भी तिर्यक्‌रूप से देखा जाय तो जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थों में प्रत्येक गुणमें परिणमन हो रहे हैं इस तरह यह सत् अनन्त पर्यायोंरूप हैं यह सत्ता किस रूपमें कहां मिलेगी, इसका स्पष्ट रूपक किसी एक व्यवस्था में नहीं नियत किया जा सकता है। यह सत्व ऐसे ही बिना ही परिणमें, किसी पदार्थमें रह जाता हो सो रह नहीं सकता। सत्व है तो उसमें ये तीन अवस्थाएँ अवश्यंभावी हैं कि वे किसी नवीन परिणमनरूप में होवें और पुराने परिणमन के रूप में विलीन हो जायें। तथा समस्त परिणमनों का आधारभूत वही एक रहा करे। इस प्रकार उत्पादव्यय ध्रौव्यरूपसे यह सत्ता प्रवर्तती है इन सब दृष्टियों से देखा जाय तो सारा विश्व एक सत्तात्मक है। यहाँ प्रदेशोंपर दृष्टि न दो, व्यक्ति पर दृष्टि न दो, किन्तु जो सत्वका स्वरूप है उस स्वरूपपर दृष्टि देकर निरखो तो स्वरूपसे कोई पदार्थ किसी पदार्थ से भिन्नता नहीं रखते हैं। सर्वसत् स्वरूप हैं। यों यह सत्ता एक रूप हैं।

सत्तामें सप्रतिपक्षता—सत्ता सम्बन्धमें अब तक जितनी बातें कही गयी हैं उन सब बातोंसे उल्टा स्वरूप भी यह रखता है अर्थात् सत्ता प्रतिपक्ष सहित है। जैसे बताया गया था कि सत् सर्व पदार्थों में है तो उसकी यह भी एक विशेषता है कि वह सर्व पदार्थों में एक नहीं है, किन्तु प्रत्येक पदार्थमें भिन्न भिन्न सत्ता है। दूसरा विशेषण बताया था कि यह सत्ता विश्वरूप है तो उससे उल्टी बात भी पाई जाती है कि सत्ता व्यक्तिगत भी है। यदि व्यक्तिगत सत्ता न रहे तो कोई काम बन ही नहीं सकता। जैसे बोझ ढोना, व्यापार आदिक करना इन सबको मनुष्य जाति करती है या व्यक्तिगत मनुष्य किया करते हैं? और उन सब करते हुये मनुष्यों को समुदाय रूपमें कल्पना से हम मनुष्य जाति मात्र लेते हैं, तो व्यक्तिगत सत्त्व है। तीसरे विशेषण में बताया था कि सत्ता अनन्त पर्यायात्मक है। लेकिन वे प्रत्येक पर्यायें चूंकि अपना-अपना स्वरूप न्यारा रखती है इसलिये वे व्यतिरेकी हैं इस कारण सत्ता एक पर्यायरूप है। सत्ताका चौथा विशेषण कहाकि सत्ता उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है, लेकिन इसमें भी एक-एक अशंका जो स्वरूप है उस स्वरूप पर दृष्टि देकर निरखा जाय तो ये तीन स्वरुप हैं, इस कारण सत्त्व भी प्रत्येक स्वरुपमें प्रत्येक स्वरुप हैं। ५वें विशेषण में कहा था कि यह एक है, तो इससे उल्टी बात भी है कि सत्ता अनेक हैं, सत्ता अनेक न हों तो प्रतिवस्तु में परिणमन और अनुभवन हो ही नहीं सकता। इस प्रकार संक्षेपरुप में इस गाथामें अस्तित्वको ही कहा गया है।

सत् की नित्यानित्यात्मकता—अस्तित्व नाम सत् का है। सत्‌के भावको सत्ता कहते हैं। न केवल नित्य हो वह सत् है। केवल क्षणिक हो वह सत् है, किन्तु नित्यानित्यात्मक उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक जो वस्तु है उसे सत् कहते हैं, क्योंकि सर्वथा नित्य वस्तु हो तो चूंकि सर्वथा नित्य माना है अर्थात् अपरिणामी माना है तो उस पदार्थ में क्रमभावी कोई बात हो ही नहीं सकती। जब क्रमभावी परिणमन न होगा तो उनमेंविकार कैसे होगा, अर्थात् काम कैसे होगा। कोई भी पदार्थ बिना कामके नहीं है। लोकव्यवहार में भी कहते हैं कि जो भी चीज है वह बिना कामके नहीं है, किसी न किसी काममें आती है। चाहे उसका उपयोग हमें न मालूम हो। यह तो है लौकिकबात पर वास्तविक बात यह है कि जो भी वस्तु है अपनी अर्थक्रिया प्रतिसमय करती ही रहती है। यदि परिणमन न हो, अर्थक्रिया न हो तो वह पदार्थ ही नहीं रह सकता। यों सर्वथा नित्य वस्तुको सत् नहीं माना। सर्वथा नित्य वस्तु है नहीं, ऐसे ही यदि सर्वथा अधिक माना जाय तो जो सर्वथा क्षणिक है उसमें अब प्रतिभिज्ञान हो ही नहीं सकता। फिर उसमें एक संतानपना कैसे रहेगा। प्रत्यभिज्ञान कहता है यह वही वस्तु है जो पहिले थी। इस प्रकार का पूर्व और अपर पर्यायों में एकत्वका भान करना, ज्ञान करना सो प्रत्यभिज्ञान है। हम आपको रोज देखते हैं आप वही हैं जो कल थे और वैसा ही व्यवहार कर के सारी व्यवस्था बनी हुई है। यदि सर्वथा क्षणिक हो बात- तो आप कल कैसे भी थे, आज आप अत्यन्त भिन्न हैं, तो क्या व्यवस्था बनेगी। क्या व्यवहार होगा, फिर एक संतानपना ठहर नहीं सकता। सर्वथा क्षणिक वस्तु मानने पर प्रत्यभिज्ञान न होने से एकसंतानपना नहीं रहता है, इस कारण प्रत्यभिज्ञान का कारणभूत कोई स्वरूप अवश्य है यह मानना चाहिये, और क्रमसे प्रकट होने वाली पर्यायोंका भी स्वरुप अवश्य है जिससे कि नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पुरानी पर्याय विलीन होती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सत् की उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता— उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीनों लक्षण पदार्थमें एक ही समयमें रहा करते हैं। पदार्थ में ध्रुवता तो निरन्तर ज्ञानमें आना सुगम ही है कि यह सदा रहा करता है। अब इसमें प्रति समयमें एक एक नवीन-नवीन दशा हो जाती है। यह सत् प्रतिसमय नवीन परिणमनात्मक चलता रहता है। अब उस नवीन परिणमनमें ये दोनों बातें एक साथ गर्भित हैं। नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्यायका विलय, जैसे ८ बजकर एक समयके बाद जैसे ही दूसरा समय लगा तो ८ बजकर दूसरा समय में उत्पाद और ८ बजकर पहिले समयकी परिणतिका विलय येदोनों एक साथहैं जैसे अन्तिम संयोगऔर वियोग येदोनों एक साथ हैं। जैसेकिसीको आपस्टेशनपहुंचाने जायें और वहस्टेशनसे आगे चला गया। आप स्टेशनसे लौट आये। आपसे पूछा जाय कि तुम्हारा उससे वियोग कहां पर हुआ था ? तो आप कहेंगे कि स्टेशन पर हुआ था। अरे स्टेशन पर तो संयोग था, वियोग कहां से हो। अंतिम संयोग और वियोग दोनों एक ही बात है जैसे मिट्टीका एक खिलौना बनवाया या एक दिया ही बनवाया तो दिया बनाने से पहिले जैसा पिंड रूपमें थी वह मिट्टी, दिया बनाने पर दियाका तो उत्पाद होगया और उस मृत्पिण्डका विनाश हो गया। ये दोनों एक साथ हुए। जैसे सीधी अंगुली को टेढ़ी किया जाय तो टेढ़ीका उत्पाद हुआ, सीधा का विलय हुआ। ये दोनों एक साथ हुए। क्या कभी ऐसा होता कि अगुली पहिले तो सीधी मिट जाय, इसके बादमें फिर टेढ़ी हो, ऐसा कोई कर सकेगा क्या ? अरे टेढी होने का ही नाम सीध मिटना है।

जीवन मरणकी तरह उत्पाद व्ययका एक समय— किसी जीवके मनुष्य आयु चल रही है। मानों यह मनुष्य आयु अमुक नियत दिनमें ठीक १० बजे तक चलेगी तो १० बजे तक तो मनुष्य आयुका उदय है और १० बजकर पहिले समयमें मानों देव आयुका उदय आ गया तो हमें यह बतलावो कि यह मनुष्य १० बजे मरा या १० बजकर पहिले समयमें मरा यदि यह कहा जाय कि वह मनुष्य १० बजे मरा तो गलत बात है। १० बजे तो मनुष्य आयुका उदय चल रहा है। मनुष्य आयुका उदय रहते सन्ते मनुष्यका मरण कहा जा सकता है क्या ? १० बजकर पहिले समयमें जब कि वह देव आयुके उदयमें है उस समय मनुष्यका मरण कहलायेगा। तो नवीन आयुका उदय हो और पुरानी आयुका क्षय हो इन दोनोंका एक समय है। यों अनेक दृष्टान्तोंसे समझते जायें कि उत्पाद और व्ययका एक ही समय है, इसमें अपेक्षा भाव है ना। उसही पर्यायका उत्पाद और उसही पर्यायक विनाश एक समयमें नहीं कहा जा रहा है, किन्तु नवीन पर्यायका उत्पाद और पुरानी पर्यायका विनाश में दोनों बातें एक समयमें हुआ करती हैं। यों उत्पाद व्यय और ध्रौव्य इन तीनों अवस्थावोंको एक साथ धारण करने वाला पदार्थ जानना चाहिए। इससे यह जानो कि सत्ता उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

सत्ता और सत्तावानमें अभेद—सत्ता और सत्तावानमें दो पदार्थ कुछ अलग-अलग नहीं है। जैसे मेरा अस्तित्व और मैं वे दो न्यारी न्यारी चीजें नहीं है। यदि दो न्यारी न्यारी चीजें हों तो ये मेरी हो ही नहीं सकती। जैसे लोग कहते हैं कि यह मेरा पैन है। ये दोनो बातें विरुद्ध हैं। कैसे यह पैन मेरा है जब कि यह मैं और पैन यह एक ही बात नहीं है। अरे मैं चेतन हूं यह पैन जड़ है, भिन्न-भिन्न पदार्थ है। और, जब भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं तो फिर मेरा क्यों कह रहे हैं। वह भिन्न कलम मेरा हो ही नहीं सकता। जो मेरा है वह मुझसे अभिन्न है। जो मुझमें अभिन्न नहीं है वह केवल कहने का और कल्पनाका ही मेरा है। तो सत्ता और सत्तावान में दोनों न्यारे नहीं हैं, किन्तु भाव और भाववानका भेद किया जा रहा है। जैसे इन्सानियत और इन्सान में क्या दो अलग-अलग चीजें सत्त हैं, एक ही चीज है, सिर्फ भाव और भाववानका इसमें एक भेद बताया गया है समझने के लिए, यों भाव और भाववान कथञ्चित् एक स्वरूप है, इस कारण वह उत्पादव्ययध्रौव्य रूप वह विलक्षणात्मक सत्ता समस्त वस्तुवोंमें सदृशयता का सूचक होनेसे वह एक है। में क्या अन्तर है ?

सत्त्वसामान्य और सत्त्वविशेष—जैसे कहा जाय कि जरा एक मनुष्यको लाना, तो लाने वाला किसी भी मनुष्यको लाये, बूढ़ेको ला दे तो भी यह नहीं कह सकते कि इसे तू क्यों लाया। अरे ! तुमने मनुष्य कहा था, यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मनुष्य नहीं है क्या ? भले ही किसी प्रसंगमें जवान पुरुष को आदमी कहा जाता है। तो उस आदमीके कहने का अर्थ ही जवान है। जैसे आप कहीं जा रहे हों, सामान जाना है स्टेशनपर तो किसीसे कह दिया कि भाई एक आदमी तो आना। और, वह ले आये साल डेढ़ सालका लड़का, तो ले आये आदमी ? वह तो प्रासगिक बात नहीं हुई। वहां तो प्रयोजन यह था कि किसी जवानको लावो जो सामान लेकर चले। तो वहां आदमी शब्दका अर्थ आदमी ही नहीं है, किन्तु एक हृष्टपुष्ट पुरुष है। जब कहा गया कि किसी जवानको लावो तो इसमें भेद पड़ गया। तो जैसे मनुष्य-मनुष्यमें कोई अन्तर नहीं है, सब एक रूप हैं, चाहे रंक हो, राजा हो, ज्ञानी हो, मूर्ख हो सब मनुष्य हैं। यहां तक कि चाहे अरहंत हों और चाहे यहां का कोई दीन हो, सब मनुष्य हैं। एक भगवान है अरहत वह भी मनुष्य गतिमें है। तो जैसे मनुष्य कहनेमें सब मनुष्य एक समान ज्ञात होते हैं ऐसे ही सत् इतना मात्र कहने से अनन्त द्रव्योंका समूह समझना है।

सत्ताकी सर्वपदार्थस्थता– द्रव्यात्मक समस्त विश्व एक सत् रूप निरखा जाता है। यों यह सत्ता सर्व पदार्थोंमें स्थित है, क्योंकि सत्तासे शून्य कोई भी पदार्थ नहीं है। त्रिलक्षणात्मक सत्ताका प्रत्यय परिज्ञान सब पदार्थोंमें एक समान ही देखा जाता है। यह समस्त विश्व समस्तवस्तुवोंका समुदाय है। जैसे घर कहनेसे एक घर आया, मोहल्ला कहनेसे १०० घर आये नगर कहनेसे हजार घर आ गए। तो नगर सर्वगृहात्मक है ऐसे ही यह विश्व समस्तवस्तु विस्तारात्मक है। यह विश्व अलगसे कुछ वस्तु नहीं है, अनन्त पदार्थोंका समूह ही यह विश्व है।

सत्ताकी अनन्तपर्यायरूपता—जैसे प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यरूप रहा करते हैं तो उत्पादव्यय ध्रौव्यरूप रहने वाले समस्त पदार्थोंका समूह रूप माना हुआ यह विश्व क्या उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप न कहा जायगा। जैसे काम तो करता है मनुष्य और कहते हैं यों कि देखो यह मनुष्य जाति कितना काम करती है। तो समस्त व्यक्तियों का जो कुछ स्वरूप है वही जातिका स्वरूप है। यों सारा विश्व स्वयं ही वस्तुविस्तारात्मक है और वह उत्पादव्यय ध्रौव्य रूप स्वभाव से प्रवर्तमान है। यह सत्ता अनन्तपर्यायात्मक है क्योंकि द्रव्यमें अनन्त पर्यायोंकी व्यक्तियां होती हैं और वे सब त्रिलक्षणात्मक हैं। यों यह अस्तित्व, सत्ता सर्व अनन्त पर्यायात्मक है। इतने विशेषणोंसे पदार्थ का स्वरूप बतानेके बाद अब यह बतावेंगे कि यह सत्ता केवल इसही रूप नहीं है, किन्तु इससे विपरीत स्वरूप वाली भी है, अर्थात् प्रतिपक्ष सहित है। उस ही प्रतिपक्षपने का अब आगे वर्णन चलेगा।

सत्ताकी सप्रतिपक्षताका निर्देशन—इस गाथामें पदार्थोंके अस्तित्वका स्वरूप कहा गया है। पदार्थ है। उस है की विशेषता बतायी गई है। है किस तरहका होता है। पदार्थका अस्तित्व सत्ता सब पदार्थोंमें है, विश्वरूप है अनन्त पर्यायात्मक है। उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त है। उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त है इतना कहने के बाद अब इससे उल्टीबात को सत्ता में घटाते हैं। जैन दर्शन प्रत्येक वक्तव्यको प्रतिपक्षसहित मानता है। जैसे कोई किसी चीजको हाथमें लेकर कहे कि यह है, तो उसके साथ यह भी कह सकते हैं कि यह नहीं है। सुननेमें कुछ अड़चनसी पड़ती होगी कि यह है और इसीको यह कह सकते हैं कि यह नहीं है। यह घड़ी है, ठीक है, चौकी नहीं है, तो जहां इसमें है पना सिद्ध किया वहां इसमें नहीं भी आ गया है। है और न ये दोनों अविनाभावी है। अगर न मुकर जाय तो है भी मर जायगा और है मुकर जाय तो न भी मर जायगा। कहा कि यह घड़ी है, यदि यह बात गलत हो जाय तो यह चौकी नहीं है यह भी गलत बात हो जाय। यह चौकी नहीं है ऐसी न की बात गलत हो जाय यह भी गलत हो जायगा कि यह घड़ी है।

सत्ताकी सप्रतिपक्षताका विवरण—सत्ता भी सप्रतिपक्ष है। सत्ता है इसका उल्टा क्या ? असत्ता है, नहीं है, तो किसी पदार्थ में "है", है तो उसमें "नहीं है" भी है। सत्तामें यह विशेषण कहा था कि यह त्रिलक्षणात्मक है तो उससे उल्टी बात भी है कि अत्रिलक्षण भी है। सत्ताको एक कहा था कि सत्ता एक है, तो उससे उल्टी बात भी कह सकते हैं कि सत्ता अनेक है सत्ता सब पदार्थोंमें स्थित है तो उससे उल्टा यह कह सकते हैं कि सत्ता एक पदार्थमें स्थित है। सत्ता विश्वस्वरूप है तो उससे उल्टा कहेंगे कि सत्ता एक रूप है। सत्ता अनन्त पर्यायो रूप है तो उससे उल्टा यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहेंगे कि एक पर्याय रूप हैं।

सत्ताकी सप्रतिपक्षताका मुख्य आधारः– सत्ता दो तरह की होती है एक महासत्ता और एक आवान्तर सत्ता। सत्ता मायने है पन। जैसे यह वस्तु है तो है के मायने क्या हैं, है के मायने सत्ता, मौजूदगी। तो सत्ता दो तरह की है एक महासत्ता एक आवन्तर सत्ता। सब पदार्थों में यह पदार्थ है है, केवल है की ही दृष्टि रक्खी जाय तो वह है, सब पदार्थोंमें है। उस सामान्य 'है" का नाम महासत्ता है, और एक-एक चीज, यह पुस्तक है, ऐसी एक-एक चीज जो है वह आवान्तर सत्ता है जैसे पुस्तककी सत्ता पुस्तकमें ही है, चौकी में नहीं है और सत्ता सामान्य सबमें हैं और यह बालक हैं, यह जवान है, यह बूढ़ा है, इस तरह जो विशेष सामान्य है, वह सबमें नहीं हे। समस्त पदार्थोंमें रहे ऐसी सत्ता तो यह महासत्ता कहलायेगी। माने सदृश्य अस्तित्वकी सूचना देती है महासत्ता और प्रत्येक पदार्थ में उस ही की जो सत्ता है वह पदार्थके स्वरूपका सूचक है। वह आवान्तर सत्ता है।

दृष्टिकी सामान्यविशेषरूपता एक मनुष्यके बारेमें जो जवान है, उसके बारेमें हम दो दृष्टि लगा सकते हैं जिस दृष्टिमें सब मनुष्य बराबर हैं यहां। और एक यह जवान है, बलशाली है, पुष्ट है ऐसी एक जवान की भी सत्ता लगा सकते हैं। अब इतनी दृष्टिमें उस मनुष्यके बारेमें दो तरहकी सत्ता समझमें आयी, एक मनुष्य सामान्य और एक जवान सामान्य। तो मनुष्य सामान्य कहकर जैसा है समझमें आया है ऐसा है जवानमें नहीं है और जवान मनुष्यमें जैसा है समझ में आता है वैसा सामान्य मनुष्यमें नहीं है। तो सामान्य मनुष्यकी सत्ता विशेष मनुष्यकी असत्ता उस ही में है। विशेष मनुष्यकी सत्ता और सामान्य मनुष्यकी असत्ता उस एक में है। यों समझिये- जैसे मिट्टीका घड़ा बनाया, उसमें जो मिट्टीका ढंग होता है वह तो सामान्य है और जो घड़ेका ढंग है वह है विशेष। तो घड़ेका ढंग मिट्टीके ढंग में नहीं है, मिट्टीका ढंग घड़ेके ढंगमें नहीं है यों वही चीज है भी है और नहीं भी है। महासत्ता आवान्तर सत्ताके रूपसे असत् है और आवान्तर सत्ता महासत्ताके रूपसे असत् है। इस तरह सत्ताका प्रतिपक्षी असत् हुआ।

सत्तामें त्रैलक्षण्यकी सप्रतिपक्षता—अब त्रिलक्षणमें देखिये। पदार्थ नवीन पर्यायसे उत्पन्न होता है और पुरानी पर्याय उसमें विलीन होती है, और पदार्थ वही का वही रहता है। जैसे घड़ा है, फोड़ दिया, खपरियाँ बन गयी तो खपरियों का तो उत्पाद हुआ और घड़ेका विनाश हुआ और मिट्टी वही रही। यह विषय कठिन है पर जैन दर्शन का तो एक परिज्ञान निचोड़रूप यही तत्त्व है जो सर्वत्र न मिलेगा। पदार्थ का स्वरूप सही जानने में न आये तो आपको शान्तिका उपाय नहीं मिल सकता। मोह हटानेका उपाय एक सही ज्ञान है। सही ज्ञानके बिना आप कितने ही उपाय करलें मोह नहीं मिट सकता है।

सम्यग्ज्ञानके अतिरिक्त अन्य उपायोंमें मोहक्षयकी असफलता— जैसे कोई चाहे कि हमारा स्त्री पुत्र से अधिक मोह है तो मैं ऐसी लड़ाई छेड़ दूं कि हमारा मोह ही मिट जाय। जब दिल खट्टा हो जायेगा तो मोह दूर हो जायगा। तो इससे भी मोह दूर न होगा। प्रथम तो उस स्त्री पुत्रसे भी मोह दूर न होगा, और ढंगसे उसके बारेमें कल्पना जगेगी। मोह की तरंग राग भी है और द्वेष भी है। मोहसे केवल राग ही होता हो सो नहीं। मोहसे द्वेष भी होता है। तो उस द्वेषका कारण मोह है और यह मोह द्वेषको बढ़ायेगा रागको न बढ़ायेगा, इतना ही अन्तर आयेगा। किसीसे झगड़ा बनने से इतना अन्तर आयगा कि उसका मोह द्वेष के रूपमें होता है, रागरूप नहीं, पर झगड़ेसे मोह न मिट जायगा। दूसरी बात यह है कि झगड़ा बननेसे कदाचित् एक पदार्थसे मोह न मिट जाय तो अन्य पदार्थ में मोह चलने लगेगा, क्योंकि अज्ञान बसा हुआ है। मोहका मिटाना सिवाय सम्यग्ज्ञानके किसी उपाय से हो नहीं सकता है।

मोहक्षयमें ज्ञानका सहयोग—मोह मिटानेमें इतनी ही दृष्टि तो चाहिए कि यह पदार्थ पूर्ण स्वतन्त्र है। उसका गुण, उसका परिणमन, उसकी शक्ति, उसका प्रभाव, उसका स्वामित्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब उसमें ही होता हैं। सभी पदार्थ अपने स्वरूपरूप हैं, तब त्रिकाल भी मेरे भी करनेसे दूसरा कुछ बनता नहीं तो फिर मेरा कुछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या बनता या बिगड़ता है।

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो ॥९॥

क्लेशविनाशका कारण स्वरूपरिच्छेदन—जीवोंको जो दुःखका कारण है उस कारण को मेटनेकी परम आवश्यकता है। दुःखका कारण क्या है? मोह। परपदार्थ दुःखका कारण नहीं है, परपदार्थ अपनी सत्तामें है, अपनी परिणतिमें है, अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है, उससे मुझमें क्या आयगा? वह मुझमें क्या परिणमन करता है? कोई परपदार्थ किसी दूसरे का परिणमन नहीं करता, परंतु परवस्तुवोंके सम्बन्धमें जो कल्पना जगती है, मोह जगता है, बस यह ही अज्ञानभाव दुःखका कारण है। तो इस मोहको मिटाया कैसे जाय? बिल्कुल सीधा उत्तर है। पहले यह बताओ कि मोह होता क्यों है? मोह नाम किसका है? मोह नाम है परपदार्थमें अपना लगाव रखना। तो बस उत्तर हो गया। मोह मिटाना है ना, तो परपदार्थोंमें अपना लगाव न रखो, मोह मिट गया। परपदार्थोंमें लगाव न रखें—इसकी तरकीब क्या है? इसकी तरकीब यह है कि यह ज्ञानमें लायें कि परकी सत्ता अलग और मेरी सत्ता अलग, पर मेरा कुछ नहीं और मैं परका कुछ नहीं, यह समझ हो तो मोह मिटेगा। यह समझ कैसे हो? इसके लिए पदार्थोंके स्वरूपका परिचय बनायें। इससे पहली गाथामें सत्ताके सम्बन्धमें बात चली थी। सत्ता सब पदार्थोंमें है, सर्वरूप है, सर्वपर्यायोंमें है, प्रतिपक्षसहित है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमें है, सो कहीं वह सत्ता पदार्थसे अलग चीज नहीं है। सताका वर्णन करना पदार्थका ही वर्णन कहलाता है। सत्तासे अलग गुण मानने वाले योग आदिक हैं जो सत्ताके सम्बन्धसे पदार्थको सत् मानते हैं। पर ऐसा नहीं है। सत्ता और पदार्थमें अभिन्नता है, भिन्न दो चीजें नहीं हैं। जैसे बोरेमें गेहूं या चने वगैरा भरे हों ऐसी कहीं पदार्थमें सत्ता पड़ी हो सो बात नहीं, क्योंकि सत्ताका सम्बन्ध लगानेसे पहले पदार्थ है या नहीं, यह बताओ। अगर सत्ताका सम्बन्ध जोड़नेसे पहले पदार्थ है तो अब सत्ताके सम्बन्ध की जरूरत क्या रही? वह तो है ही और अगर नहीं है तो क्या असत्में सत्ता जोड़ी जा सकती है? फिर तो खरगोशके सींग और आकाशके फूल आदिकमें भी सत्ता जुड़ बैठेगी, सो ये भी सत् बन जायेंगे। तो सत्ता पदार्थसे अलग नहीं। जब पदार्थका वर्णन किया तो सत्का वर्णन हो गया। पदार्थका सही-सही स्वरूप जान लेंगे तो मोह मिट जायगा।

अज्ञानान्धकारमें मोहलीला—यह अज्ञान क्यों बसा है जीवको कि जो घरमें बालक हुआ है उसकी तो शकल सूरत बड़ी इष्ट लगती है और ऐसा मान लेते कि यह तो मेरा है, उससे भी अच्छे बालक हों तो उनके प्रति भाव ही नहीं जाता कि ये मेरे हैं। ऐसा क्यों हैं? मोहवश। अज्ञान है, स्वपरका विवेक नहीं है, पदार्थोंके स्वरूपका भान नहीं है। एक सेठके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ नई नौकरानी आयी। उस सेठका बच्चा एक स्कूलमें पढ़ता था। उस दिन वह बच्चा अपना खाना न ले गया। उसी गांवकी वह नौकरानी थी तो सेठानीने कहा उस नौकरानीसे कि जावो यह मेरा डिब्बा ले जावो, इसमें खाना रखा है, इसे मेरे बच्चेको अमुक स्कूलमें दे आवो। तो नौकरानी बोली कि हम तो आपके बच्चेको पहचानते ही नहीं, तो सेठानी गर्वसे बोली कि अरे मेरे बच्चेको क्या पहिचानना? उस स्कूलमें सारे बच्चोंमें जो सबसे प्यारा बच्चा लगे उसे दे आना। उस सेठानीको यह गर्व था कि बस सबसे अच्छा तो मेरा ही बच्चा है। नौकरानी चली। उसने उस स्कूलमें दृष्टि दी, कौन है वह प्यारा बच्चा जिसको खाना दें। देखते-देखते उसी स्कूलमें नौकरानीका लड़का भी पढ़ता था, उसे तो वह ही बच्चा प्यारा लगा और खाना उसीको देकर घर लौट आयी। अब सेठका बच्चा शामको लौटकर घर आया तो बोला माँ जी! आज तुमने हमारे लिए खाना क्यों नहीं भेजा था? तो सेठानी बोली—भेजा तो था। नौकरानीको बुलाकर पूछा—क्या तूने मेरे बेटेको खाना नहीं दिया? तो नौकरानी बोली—मालकिन दिया तो था। तुमने ही तो कहा था कि उस स्कूलमें जो सबसे प्यारा बच्चा लगे उसे खाना दे आओ, सो मुझे तो सबसे प्यारा मेरा ही बच्चा लगा सो उसी को खाना दे आयी थी। सो घर घर बात देखो, सबकी रुचि न्यारी-न्यारी है, जीव सब समान हैं, एक स्वरूप वाले हैं, सब अपने-अपने सत्त्वमें ही रहते हैं तो यह क्या है? सबसे पूछ लो तुम्हें कौन प्यारा लगता है? तो सबका उत्तर वही होगा। सब अपना-अपना बतायेंगे, औरों के प्रति सद्भावना ही नहीं जगती। तो यह क्या है? मोहान्धकार। यह मोहान्धकार कैसे मिटे? पदार्थोंके स्वरूपका सही सही निर्णय होनेसे मोह मिटता है।

मोहविनाशका उपाय, पदार्थोंकी परस्पर विविक्तताके तथ्यका परिचय—मोहविनाशका अमोघ उपाय जैनशासनमें बड़ी अद्भुत सही शैलीसे कहा है। द्रव्यके बारेमें स्पष्ट एकत्वविभक्त स्वरूप याने प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें तन्मय और अन्य सर्वपदार्थोंसे त्रिकाल न्यारा है, ऐसा स्पष्ट स्वरूप जैनशासनमें है। बच्चे लोग भी प्रारम्भसे ही पढ़ते हैं ना कि द्रव्य ६ प्रकार के होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पर वे बच्चे उन ६ प्रकारके पदार्थोंका महत्त्व क्या समझें? बल्कि उन बच्चोंके पढ़ाने वाले भी ठीक-ठीक नहीं समझते। यह धर्म प्रवेशका प्रारम्भिक परिचय है। उन ६ प्रकारोंमें तो क्या, व्यक्ति व्यक्तिमें अर्थात् जीव जाति में अनन्तानन्त जीव हैं। वे प्रत्येक जीव अन्य जीवोंसे भिन्न अन्य सर्वपदार्थोंसे भिन्न अणु-अणु समस्तसे भिन्न हैं, इसके लिए द्रव्य गुण पर्यायकी विधि समझनी होगी। पदार्थ किसे कहते हैं, जो अपनी परिणतियोंको प्राप्त करे उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य अपनी परिणतियोंको ही पाता है, अन्यकी परिणतियोंसे नहीं। परिणति अपने स्रोतमें ही होती है, परमें नहीं। द्रव्यके लक्षणसे ही ये सब तथ्य ज्ञात हो रहे हैं। यहाँ कह रहे हैं—द्रवति गच्छति, जो अपनी पर्यायको द्रवे,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जावे, पावे उसे द्रव्य कहते हैं। यद्यपि द्रवतिका ही अर्थ है गच्छति, फिर भी आचार्य महाराज ने जो दो शब्द दिये हैं उससे यह ध्वनित होता है कि स्वभावपर्यायको तो द्रवे और विभाव-पर्यायको पावे। यह एक शब्दभेद जब यहाँ पड़ा है तो उससे तथ्य निकालनेकी कलासे समझना; और इस आशयमें द्रवनेका अर्थ सहजस्वभावमें से सहजस्वभावके अनुरूप उसमें मिला हुआ एक पर्यायकी व्यक्ति होना, और पानेका नाम क्या है? जो पाना है व जो कुछ पाया जाता है उसमें विषमता होती है, कुछ अलग लक्षणका भान होता है। तो जो विभाव पर्यायें हैं वह विपरीत परिणमन है, इसलिए उनके बारेमें 'पाना' बोलते हैं। द्रव्य स्वभावपर्यायसे तो द्रवता है और बिभावपर्यायको पाता है, यह बात इस सूत्रमें द्रवति, गच्छति दो शब्द बोलने से समझा जा रहा है। वहाँ मूल सिद्धान्तसे ऐसा एकान्त नहीं है, क्योंकि द्रवति दोनों पर्यायों के लिए आता है। तो प्रत्येक पदार्थ अपनेमें अपनी अवस्थाओंको व्यक्त करता है, यह बात इस गाथामें समझनेकी है। अब इसको हर जगह घटाते जाइये—आप अपनेमें अपनी पर्यायोंको प्रकट करते हैं। एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यपर कुछ अधिकार भी क्या? जो अधिकारका भ्रम लग रहा है, मेरा इस मित्रपर अधिकार, बालकपर अधिकार, अमुकपर अधिकार, सो यह तो पुण्य योग, कषायकी अनुकूलता, एक प्रकारकी भावना वालोंका संग, ये सब कारण हैं, जो अनुकूल बातें हो सी जाती हैं, पर वहाँ भी प्रत्येक जीवका भाव अपना-अपना है। एकका दूसरेसे कोई सम्बंध नहीं है, अधिकार नहीं है।

पदार्थोंकी परस्पर विविक्तताके परिचयका दृढ़ प्रभाव—पदार्थोंकी परस्पर विविक्तता का तथ्य जब विदित होता तो मोह नहीं रहता। भले ही पहले अज्ञानसंस्कारके कारण राग रहेगा, लगाव रखेगा, सम्बंध भी बनायेगा, पर समझ सब जायगा कि है कुछ नहीं यह। ज्ञानी पुरुष जब चाहे एक साधारण घटनाका ही निमित्त पाकर मोहको त्यागकर, गृहवास तजकर दीक्षा लेनेमें जो विलम्ब नहीं रखते और दूसरे लोग समझायें तो भी अपने निर्णयसे नहीं चिगते, इसका कारण है कि उनको स्पष्ट विशुद्ध ज्ञान जग गया है। अब किसीके बहकावेमें, फिर पुरानी आदतमें वे नहीं आ सकते। जैसे बहुत दूर कोई रस्सी पड़ी हो और कोई उसे साँप समझ ले तो जब तक वह साँप समझ रहा था तब तक उसे आकुलता है, बेचैनी है, भय है, प्रयास करता है, दूसरोंको बुलाता है, और कदाचित् थोड़ा ऐसा ख्याल रखे कि जरा देखें तो निकट जाकर कि कैसा यह साँप है, निकट गया, कुछ ऐसा लगा कि यह तो कोई चीज पड़ी है, और निकट गया, खूब देखा तो भली-भाँति समझ गया कि यह तो रस्सी है और हाथसे उठाकर निर्णय भी कर लिया कि यह तो रस्सी ही है, उसके बारेमें जब ज्ञान हो गया कि यह रस्सी ही है, साँप नहीं, तो अब ऐसे ज्ञान वाले पुरुषको कोई दूसरा अगर बहकाये—कहे कि वह तो साँप है, मान लो साँप है। पहले वाली बातपर जरा आ जाओ, तुम जरा वैसा अपना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

डर तो बनाओ, तुम जैसा भय पहले करते थे जरा वैसा भय करके तो दिखाओ तो क्या वह दिखा सकेगा ? नहीं दिखा सकता। जब ज्ञान हो गया कि यह साँप नहीं है तो पहले जैसे भ्रमको वह कैसे ला दे ? वह किसी दूसरेके बहकावेमें आ नहीं सकता, तो ऐसे ही समझ लो कि प्रत्येक पदार्थका स्वरूपास्तित्व आवान्तर सत्त्व प्रत्येकका उस ही प्रत्येकमें है। एकका दूसरेमें कुछ नहीं, तो कैसे फिर यह बहक सकता है ? दूसरेके भुलावेमें भी कैसे आ सकता है ? तो पदार्थोंके स्वरूपका निर्णय मोहको मिटानेका उपाय है।

पदार्थोंकी गुणपर्यायमयता व परिपूर्णता—पदार्थ याने जो है सो। सत्का वर्णन किया जा रहा है। जो अपने सत्को याने गुणोंको और क्रमभावी याने पर्यायोंको जो पाये वह द्रव्य। द्रव्यमें गुण और पर्यायोंका परिचय कीजिए। कोई पदार्थ है, है तो उसका स्वरूप है ना, स्वभाव है ना, वह एक रूप है। जो भी है अवक्तव्य है, पर उस एकरूप स्वभावको जानने के लिए भेददृष्टिसे गुणोंका कथन होता है और व्यवहारसे तो निश्चयमें समझी जाने वाली बातका परिचय मिलता है। आत्मा है, वह एकस्वभावी है, चैतन्यस्वरूप है। उसको समझाने के लिए कहा गया है कि जो जाने सो आत्मा, जो देखे सो आत्मा, जो रमे सो आत्मा। यहाँ कोई गुण अलग-अलग पड़े हुए नहीं हैं, क्योंकि वह एक सत् है, एक सत् है तो एक स्वरूप है, एक स्वरूप है तो एक पर्याय है, पर उस एक परिणतिको समझनेके लिए व्यवहारसे भेद करके नाना पर्यायें कही जातीं, जिनसे कि शक्तियाँ समझी थीं, तो ऐसा जो शक्तियोंसे और पर्यायोंसे अभिन्न है वह पदार्थ है, वह पदार्थ सद्भूत है, स्वयं सत् है, उससे सत्ता न्यारी नहीं। है बस 'है' को समझना है। जो भी है वह कैसा है ? अपनेमें परिपूर्ण है। यहाँ कुछ काम अटका नहीं है किसीका। किसी भी मनुष्यका, जीवका कोई काम नहीं अटका ऐसा कि कुछ बात अधूरी रह गई, हमारा अस्तित्व अधूरा रह गया, निर्माण पूरा नहीं बना, ऐसी कुछ बात तो है नहीं, यह जीव अनादिसे पूर्ण अस्तित्व वाला है, अनादिसे यह परिपूर्ण है अन्यथा यह बतलावो कि पुद्गलको तो कोई अधूरापन नहीं है कि इसका अभी कोई काम बाकी रह गया। प्रत्येक पदार्थ है, परिणम गया जिसरूप परिणम गया। चौकी है, जल गई तो जल गई, रखी है तो रखी है। जिस किसी भी अवस्थाको प्राप्त हो, उसमें अधूरापन तो कहीं भी नहीं है कि यह चीज अभी आधी है। चौकी है तो वह भी पूरी, जल गई तो भी पूरी है। जो पदार्थ जिस किसी अवस्थाको प्राप्त है वह पूरा है। वहाँ अटका कुछ नहीं है। यही बात जीवकी है। जीव भी हर समय पूरा है, इसको अटका कुछ नहीं, जिस चाहे अवस्थाको प्राप्त हो, मगर यह जीव चेतने वाला है, विकल्प करता है, समझ बनाता है तो उसका दुरुपयोग कर रहा है विकल्प-करके और उस विकल्पमें अपनेको अधूरा मान रहा। यह काम न बना तो मैं अधूरा ही रहा, यह अधूरा ही है। असंतोष ज्ञानीको क्यों नहीं है कि वह जानता है कि मैं परिपूर्ण

http://sahjanandvarnishastra.org/

हूं, मुझमें अधूरापन है ही नहीं, अज्ञानीको संतोष क्यों नहीं होता ? वह हर जगह समझता कि मैं अधूरा हूं, मेरा यह काम हो जाय तब मैं पूरा कहलाऊँ। जब तक यह काम न बन जाय तब तक हम कुछ न कहलायेंगे, इतनी बाहरमें बात बन जाय तो हम कृतकृत्य हो गए। ऐसा अपनेको अधूरा मानता है, यह ही जीवको कष्टकी चीज है। लो देखो भैया! जैसे कहते हैं ना कि कभी-कभी वरदान भी अभिशाप बन जाता है, तो ऐसे ही देखो इस जीवका ज्ञान-स्वरूप है ना तो इस मोहीके लिए अभिशाप बन गया, विकल्प बन गया, है पवित्र स्वरूप, मगर दुरुपयोगकी यह हालत है।

पदार्थोंके साधारण गुणोंके परिचयसे ही भेदविज्ञानकी शिक्षाका प्रारम्भ—प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्यमें है, अपने प्रदेशमें है, अपने गुणोंमें है, अपनी अवस्थामें है। द्रव्यके समझनेके जो ६ साधारण गुण हैं वे साधारण गुण ही भेदविज्ञानका प्रकाश करा देते हैं, फिर असाधारण गुणोंसे ही प्रकाश बढ़ाया। पहले तो साधारण गुणोंको ही देख लीजिए। यह जताते हैं कि प्रत्येक पदार्थ एक दूसरेसे अत्यन्त निराले हैं। जैसे पहला गुण है अस्तित्व। "है" यह एक वस्तुपरिचयका प्रारम्भ बनाता। पहले कोई चीज है तब तो उसके बारेमें आगे चर्चा बढ़ायें। तो पहले यह तो निर्णय बनायें कि पहले पदार्थको अस्तित्व गुणने बताया, पर इसमें कुछ स्पष्ट भान न हो सका, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं, यह बात समझमें आये तो स्पष्ट भान होगा, उसको बताया वस्तुत्व गुणने। जो अपने स्वरूपसे हो, परके स्वरूपसे न हो वह पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सत्तासे हो, परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सत् न हो, ऐसी व्यवस्था वस्तुत्व गुणने बताया। देखो इसका कैसे प्रकाश दिया? तो जो बात वस्तुमें है वह बतानी पड़ती है। तीसरा गुण है द्रव्यत्व। पदार्थ है तो निरन्तर परिणमन करता रहता है, एक भी समय, किसी भी समय परिणमे नहीं, तो वह पदार्थ है भी नहीं रह सकता, यह द्रव्यत्व गुण बता रहा है। अच्छा, प्रत्येक पदार्थ निरन्तर परिणमता रहेगा, जानते तो हैं सब, मगर एक इस क्रममें अभी तक यह बात आयी कि पदार्थ परिणमता है, कोई पदार्थ किसी दूसरे रूप भी परिणम जाय, इसका तो कोई निषेध नहीं हो पाया अब तक। तो इसमें अगुरु-लघुत्व गुण ही यह व्यवस्था बनाता है, क्योंकि वह पदार्थ न गुरु बन सकेगा, न लघु। जो है सो ही रहेगा। इस कारण पदार्थ किसी दूसरेके परिणमनको नहीं करता। अगर एक पदार्थ दूसरेके परिणमनको कर दे तो इसका अर्थ है कि खुद तो हो गया हल्का। अपना परिणमन दूसरेको दे दिया और दूसरा हो गया वजनदार, ऐसा कोई गुरु, लघु नहीं बनता। प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी परिणतिसे परिणमता है, भले ही निमित्तनैमित्तिक सम्बंध कितना ही कठिन हो, अनिवार्य हो, लेकिन परिणमता खुद-खुद ही है, एक दूसरे रूप नहीं परिणमता। इसीको कहते हैं कि एक दूसरेकी परिणतिको नहीं करता। यह बात जब स्पष्ट समझमें आये तो वहाँ मोह-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाव नहीं रहता।

अकिंचनभावकी आराधनामें सिद्धि समृद्धि—अब रह गई यह बात कि मोह न रहे, फिर भी उसका लगाव रहता है कभी कुछ समय तक। वह तो एक परिस्थितिकी बात है, पर अन्तःप्रकाश बना हुआ है कि एक दूसरेका कुछ नहीं है। इससे अपनेको क्या बात लेनी है कि सबसे न्यारा अपनेको केवल ज्ञानमात्र निजस्वरूप मात्र निरखना है, मैं ज्ञानमात्र हूं, सहज स्वभावमात्र हूं, अपने प्रदेशोंमें हूं, अपनेमें ही अपनी परिणति करता हूँ, इसके बाहर मेरा कुछ नहीं है, मेरा कहीं कुछ घर नहीं है, मेरा कहीं कुटुम्ब नहीं है, मेरा ही प्रदेश यह मेरा घर है, मेरा ही स्वभाव, मेरा ही गुण यह सब मेरा सर्वस्व है। जब मैं इस पर्यायको छोड़कर जाऊँगा तो जो मेरा है वह मेरे साथ जायगा, जो मेरा नहीं है वह मेरे साथ न जायगा। यद्यपि इस संसारी जीवके साथ कर्म भी जाते हैं, पर कर्म उस नातेसे नहीं जाते कि वे जीवके स्वरूप हैं, इसलिए जाते। यों तो परिस्थिति है, बंधन है, निमित्तनैमित्तिक योग है, वहाँ भी निश्चयसे कर्म कर्ममें रहकर जाते हैं, जीव-जीवमें रहता हुआ जाता है। निमित्तनैमित्तिक योग जरूर ऐसा है कि अनादिसे बँधे हैं, परम्परा उनकी चल रही है और साथ जाते हैं, जैसे कार्माण वर्गणाका शरीर। जो मेरा है सो मेरे साथ है, जो मेरा नहीं वह मेरे साथ नहीं। सबका स्वरूप जुदा-जुदा है, सत्ता न्यारी न्यारी है। बच्चोंको भी देखकर, वैभवको भी देखकर बेहोशी न लायें। ये ही मेरे सर्वस्व हैं—इस प्रकारकी असावधानी बनाकर रहेंगे तो उतना ही दुःखी होना पड़ेगा। पदार्थोंका स्वरूप भिन्न-भिन्न निरखें तो मोह मिटेगा और संकट इससे दूर होंगे।

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥१०॥

द्रव्यकी सल्लाक्षणिकता—द्रव्य क्या होता है, वस्तु कैसी होती है, पदार्थ कितने-कितने हुआ करते हैं? इस बातकी समझपर कल्याणकी निर्भरता है, पदार्थका सही स्वरूप जाने बिना न मोह हटेगा और न आत्मामें रमण हो सकता है। तो इस गाथामें द्रव्यका स्वरूप बताया जा रहा है, द्रव्य सत् लक्षण वाला है, सन्मात्र है। द्रव्य सन्मात्र है, यह भी कथन सही है। द्रव्य सत् लक्षण वाला है, यह भी कथन सही है। सन्मात्र कहनेमें अभेद दृष्टि है, सत् लक्षण कहनेमें भेददृष्टि है। यह द्रव्य है, इसका लक्षण सत् है। इस लक्षणके कहनेसे क्षणिक एकांतका निराकरण हो जाता है, असत्की उत्पत्तिका निराकरण हो जाता है। जो सत् है उस ही में अवस्थायें होती हैं। न असत् उत्पन्न होता, न असत्में अवस्थायें होतीं। हाँ पर्यायदृष्टिसे चूँकि जो पर्याय उत्पन्न हुई है वह पहले न थी, इस कारण असत्की उत्पत्ति कही जा सकती है, मगर वह पदार्थ ही बिल्कुल न था और एकदम असत्का उत्पाद हुआ यह है क्षणिक एकान्तका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्धान्त और इतना ही नहीं उत्पन्न हुआ और दूसरे समयमें असत् हो गया, सत् केवल एक समयका माना जाता है क्षणिक सिद्धान्तमें। यदि द्रव्य सत् लक्षण वाला नहीं है, किन्तु एकदम असत्का ही उत्पाद हो, ऐसा क्षणिक एकांत माना जाय तो न मोक्षमार्ग बनेगा, न दुःखोंसे छूटनेका उपाय बनेगा, धर्मका लोप ही हो जायगा, धर्मपालनका फिर कोई अर्थ न रहेगा। धर्म करने वाला कौन ? एक समयको तो आत्मा रहा, कदाचित् उसने धर्म किया तो वह तो धर्म करके मिट गया, असत् हो गया। अब दूसरा उसका फल पायगा। तो क्या यह कोई पदार्थके स्वरूपकी निशानी है ? द्रव्य सत् है, अनादिसे सत् है, अनन्तकाल तक सत् होगा। यों द्रव्य सत् लक्षण वाला है।

द्रव्यकी उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तता—द्रव्य सत् लक्षण वाला है, इतनेसे कोई न समझे तो दूसरा लक्षण कहा जा रहा है कि द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है। जो है उसमें नियमसे अगली अवस्थायें होती हैं, पहली अवस्थायें विलीन होती हैं और दोनों अवस्थावोंका, समस्त अवस्थाओंका आधारभूत वस्तु ध्रुव रहा करता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होना पदार्थमें स्वाभाविक है, किसी उपाधिके कारण नहीं है, उपाधिके कारण विशेष उत्पाद, विशेष व्यय, ये तो बनेंगे मगर उत्पादमात्र, व्ययमात्र, ध्रौव्यमात्र ये वस्तुके स्वाभाविक धर्म हैं। चूँकि वस्तु है अतएव नियमसे व्यय ध्रौव्य होगा ही। इस लक्षणके कहनेपर नित्य एकान्तका परिहार हो जाता है। जो लोग मानते हैं कि पदार्थ नित्य ही है, उसमें परिणमन ही नहीं होता तो प्रथम तो यह बात बनती ही नहीं, क्योंकि परिणाम बिना, पर्याय बिना, व्यक्ति बिना हम उस द्रव्य को समझें क्या ? कोई भी पपार्थ अवस्थाशून्य नहीं होता है तो उसकी अवस्थायें हैं कोई और अवस्था है तो उसमें अनित्यता आयी। नित्य होकर भी अनित्य है, अनित्य होकर भी नित्य है। ऐसा नित्यानित्यात्मक पदार्थ होता, यह बात उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक लक्षणके समझनेसे एकदम स्पष्ट होती है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते किसके हैं ? उस ही पदार्थका, उस ही के स्वरूपका विरोध न रखकर उस ही स्वरूपमें, उस ही द्रव्यमें क्रमसे होने वाले जो परिणाम हैं, अवस्थायें हैं उन अवस्थाओंमें पूर्वभावका विनाश होता है, उत्तर भावका उत्पाद होता। किन्तु अपनी जातिका त्याग नहीं होता। यों उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त पदार्थ है। पदार्थ अपनी पर्यायमें ही उत्पन्न हो पाता, अन्य द्रव्यकी पर्यायमें नहीं। पदार्थ अपनी ही पर्यायका विनाश करता, दूसरेकी पर्यायका विनाश नहीं करता। पदार्थ अपने आपके स्वरूपमें ही सदा रहता है, दूसरे पदार्थके स्वरूपमें नहीं रहता। यह बात भी उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तके परिचयसे ज्ञात हो जाती है। द्रव्यका सही लक्षण जाननेपर मोह ध्वस्त होता है। वह इसी तरह तो हुआ। जब उसका उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उसके ही स्वरूपमें है, उसके ही प्रदेशोंमें है अन्यका अन्यके प्रदेशोंमें है तो एक पदार्थका दूसरे पदार्थसे नाता क्या रहा ? जब यह बात स्पष्ट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विदित हो रही तो उसके मोह तो न रहेगा। यह हो नहीं सकता कि पदार्थके इस सत्यस्वरूप का सही परिचय हो जाय, निर्णय हो जाय और मोह रहे। भले ही परिस्थितियाँ राग करने को बाध्य करें, राग और द्वेष चलते हों, पर स्वरूपनिर्णयके बाद मोह तो नहीं रह सकता। मोह नाम किसका है ? स्वरूपका अनिर्णय, निज और परमें भेदका अज्ञान रहना। सो जहाँ वास्तविक ज्ञान हुआ वहाँ यह अज्ञान नहीं ठहरता। मोह तो रहता नहीं और मोह न रहना एक बहुत मौलिक पवित्रता है, जो आगेकी पवित्रताओंका बीज है और इस प्रकारकी समझ बनानेमें कष्ट क्या होता है ? आनन्द ही मिलता है। सही बात जान लिया। मोह न रहेगा तो झंझट न रहेगा। तो पदार्थका लक्षण दूसरा यह बताया है कि वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसे संयुक्त है।

द्रव्यकी गुणपर्यायाश्रयता—तीसरा लक्षण है द्रव्य गुण पर्यायका आश्रय है अथवा कहो—गुण पर्यायवान है या यों कहो कि गुण पर्यायमय है। जैसे दूसरा लक्षण कहा था उत्पाद व्यय ध्रौव्य, तो उत्पाद व्ययके लक्षण द्वारा तो पर्याय समझा गया और ध्रौव्य लक्षण द्वारा गुण समझा गया। ये लक्षण परस्पर व्यञ्जय-व्यञ्जक भावको धारण करते हैं। जैसे कभी कोई बात कहता है—कोई बात समझनेमें कठिन पड़ गई तो मायने, याने, अर्थात् कहकर जैसे स्पष्टीकरण किया जाता है, ऐसे ही इन तीन लक्षणोंमें द्रव्यके स्वरूपका स्पष्टीकरण करें और साथ ही इसमें तथ्य है, द्रव्य, गुण, पर्यायका आश्रय है याने द्रव्यमें अनादि अनन्त शाश्वत रहने वाली शक्तियाँ हैं। वह तो गुण है, और उन शक्तियोंका अथवा प्रदेशोंका जो एक व्यक्त रूप बनता है, आकार परिणमन बनता है वह सब पर्याय है। द्रव्यसे गुण पर्याय यह अलग चीज नहीं है, किन्तु एक द्रव्यका ही व्यक्त रूप है, द्रव्य गुण पर्याय वाला है, ऐसा कहनेसे उस एकान्तका निराकरण होता है, जो गुण और पर्यायोंको भिन्न मानते हैं। मीमांसक सिद्धान्तमें ६ पदार्थ माने गए हैं—(१) द्रव्य, (२) गुण, (३) कर्म, (४) सामान्य, (५) विशेष और (६) समवाय। और इतना ही तक नहीं, एक ७वाँ माना है अभाव। ६ पदार्थ तो भावात्मक हैं और एक पदार्थ अभावात्मक है, ऐसे ७ पदार्थ हैं, पर ७ कहाँ ? वह तो एक ही है। यों पदार्थ ६ या ७ नहीं, किन्तु पदार्थ तो एक द्रव्य शब्दसे कहागे या मात्र है। गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय—यह तो द्रव्यमें खोजी गई चीजोंका परिचय है, मगर आज इस कलयुगमें इस पवित्र जैनशासनकी जो प्रभावना विशेष नहीं है, लोगोंमें इसकी विशेष ख्याति नहीं है तो उसके मुख्य कारण तीन बताये हैं समन्तभद्राचार्यने। एक तो कलिकाल, लोगोंका पतनकी ओर प्रकृत्या झुकाव रहता है, व्रत संयमसे घबड़ाते हैं, बनना चाहते हैं ऊँचे। तो व्रत संयमके दोष बखाने बिना इस आशाकी पूर्ति कैसे हो सकती है ? और साथ ही जब जैन शासनके प्रति श्रद्धा नहीं रहती और बड़प्पन चाहते हैं तो और और भी ऐब बस जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक तो जैनशासनकी महिमा न बढ़नेका कारण है कलिकाल। दूसरा कारण है वक्ताओंको नयोंका परिचय निर्णय, श्रद्धान नहीं है, जो बात अनायास या किसी प्रकार एक बार समझमें आयी उसका एकान्त हो जाता है।

अपूर्व किसी एक तत्त्वकिरणके मिलनेपर भावुकताका अतिशय होनेपर विडम्बना—एकांतकी भावुकतामें कितनी विडंबनायें होती हैं, उसका सिर्फ एक उदाहरण ही देख लीजिए। सिद्धान्त तो यह है कि जिससे कोई इन्कार नहीं हो सकता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका त्रिकाल कर्ता नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न है। तो हाँ किसीको एकदम एक द्रव्य दूसरेका कर्ता नहीं, एक द्रव्य दूसरेसे भिन्न है यह जंचा और यह भावुकसे जंचा। सो निमित्त-नैमित्तिक योग जिसका फल यह सब संसार है, उसके भी निराकरणका प्रयत्न किया, निमित्त कुछ चीज ही नहीं। पदार्थमें बात होती है, निमित्त खड़ा हो जाता है। खैर सिद्धान्त तो ठीक था मूलमें कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका परिणमन करने वाला नहीं है याने एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के परिणमन रूपसे नहीं परिणमता। पर यह बात जैनशासनकी सही बात एक बात अनोखी दृष्टिमें आयी तो उससे इतनी प्रसन्नता बढ़ी कि भावुकतामें बढ़कर निमित्तनैमित्तिक योगका भी निराकरण किया, और इतनेसे भी संतोष न हो सका तो यों कहनेमें आ गया—देखो द्रव्यमें गुण अनन्त हैं ना। तो वे सभी गुण सत् हैं, भिन्न-भिन्न हैं, एक गुण दूसरे गुणपर कुछ नहीं करता। एकका दूसरा गुण कुछ नहीं है, और इसी प्रकार अनन्त पर्यायें हैं, वे सब पर्यायें स्वतंत्र हैं, स्वतंत्र सत् हैं, पर्यायोंका गुण कुछ नहीं, द्रव्य कुछ नहीं। द्रव्यका गुण कुछ नहीं, पर्याय कुछ नहीं, सब स्वतंत्र सत् हैं, भावुकतामें कह तो डाला, मगर यह ख्याल गुल हो गया कि जो सत् होता है उसमें ये दो बातें मुख्यतया होती हैं, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त होना और गुण पर्यायमय होना। उन अनन्त गुणोंमें से कौनसा गुण उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है, क्यों नहीं है कि गुण सत् है नहीं, पर्याय सत् है नहीं। वस्तु सत् है। ये गुण पर्यायमे भिन्न-भिन्न सत् नहीं हैं। हाँ जो सत् है उसीको गुणको कह लो, वह ध्रुव है और उस ही सत्को पर्याय कह लीजिये, पर्यायको कह लीजिए उत्पाद व्यय, पर द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् है, यह बात जैनशासनमें कहीं भी न मिलेगी। हाँ यह तो आया कि एक सत् ही द्रव्य है, सत् ही गुण है, सत् ही पर्याय है, ये शब्द तो आते हैं याने जो एक वस्तु सत् है उसीको अन्वयदृष्टिसे देखें तो द्रव्य है, अन्वयशक्तिसे देखें तो गुण है, व्यतिरेकदृष्टिसे देखें तो पर्याय है। तो अज्ञानवश या छलवश कहो शब्दका परिवर्तन बन गया कि बात तो यों है कि सत् द्रव्य है, सत् गुण है, सत् पर्याय है। अब उस पहले कहे गए सत् शब्दको बादमें रखना, द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् है, कितनी विडम्बना बढ़ी, कितना अन्तर आया, जैनशासनके विरुद्ध हो गया। ऐसा तो मीमांसकोंने कहा—द्रव्य सत् है, गुण सत् है, कर्म सत् है, हाँ बात ठीक समझना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिए। वस्तु गुण पर्यायमय है। कुछ लोग वस्तुको नित्य ही मानते, कुछ लोग वस्तुको अनित्य ही मानते, कुछ लोग नित्य अनित्य दोनों मानते तो हैं, पर निरपेक्ष रूपसे मानते हैं। जैसे कारणपरमाणु नित्य है, कार्यपरमाणु अनित्य है, तो ऐसे इन एकान्तोंका निराकरण द्रव्यके इन लक्षणोंसे हो जाता है।

द्रव्यके ही सत् होने व गुण पर्यायके सत् न होनेका कारण—द्रव्य है, साथमें यह भी जानें। जरा विस्तार बना लीजिए। जो वस्तु होती है उसमें ये ६ बातें पायी जायेंगी। क्या? उसमें साधारण गुण होते हैं। जो भी पदार्थ है उसमें साधारण गुण होते हैं। साधारण गुण मायने अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व, याने ये छहों गुण प्रत्येक द्रव्यमें पाये ही जाते हैं। जहाँ ये ६ गुण नहीं वह पदार्थ नहीं। जो भी चीज है वह ६ साधारण गुणोंसे युक्त है, पहली बात। दूसरी बात—जो भी द्रव्य है वह असाधारण गुण वाला है। असाधारण गुण उसे कहते हैं कि जो किसी खास द्रव्यमें ही गुण हो, अन्य द्रव्यमें न हो। जैसे चैतन्य जीवमें ही है, पुद्गल आदिकमें नहीं, मूर्तत्व पुद्गलमें है अन्यमें नहीं। तो जो भी है उसमें असाधारण गुण अवश्य होता। तीसरी बात—जो भी पदार्थ है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक होता है याने क्षण-क्षणमें नई-नई अवस्थायें बनायें, पुरानी अवस्थायें विलीन करें और स्वयं मूल तत्त्वको सदा शाश्वत रखें। चौथी बात—जो पदार्थ है उसका आकार अवश्य होता। चाहे एक प्रदेशरूप हो, चाहे बहुप्रदेशरूप हो। ५वीं बात–जो भी चीज है वह उसके अलावा अन्य सबसे भिन्न प्रदेश रखेगी। जो भी कुछ हो, एक जीव है, जो भी है वह अन्य सबसे भिन्न प्रदेश वाला होगा। आप जीव हैं, अन्य सब जीवोंसे आपके प्रदेश भिन्न हैं, पुद्गल आदिकसे भिन्न हैं, इसे कहते हैं प्रविभक्त प्रदेश, ऐसी ये बातें गुणोंमें तो घटित नहीं होतीं, क्योंकि गुण पदार्थ नहीं। गुण तो पदार्थका व्यवहारनयसे समझा गया अंश है। गुणों में ६ साधारण गुण हैं। ज्ञानगुण हो, दर्शन गुण हो, कोई गुण हो, क्या उन गुणोंमें असाधारण गुण रहते हैं? वे स्वयं ही गुण हैं, गुणमें गुण नहीं रहते। गुणोंका कोई आकार होता है क्या? या गुण पर्यायसे और द्रव्यसे भिन्न प्रदेश रखता है क्या? जब एक यह भ्रम बन गया कि द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् है तो पर्यायके प्रदेश जुदे होने चाहिएँ, द्रव्यके गुण जुदे हों, पर ऐसा तो नहीं है। फिर ये सब स्वतंत्र सत् कैसे हो सकते हैं? स्वतंत्र सत् तो द्रव्य द्रव्य ही है, और वह द्रव्य गुणपर्यायात्मक है, उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, ऐसे इन तीन लक्षणोंसे द्रव्यकी पहिचान होती है। इनमेंसे एक भी लक्षण कहो तो वही अन्य दो लक्षणोंकी सूचना दे देता है। ये परस्पर विरुद्ध लक्षण नहीं हैं, किन्तु एक दूसरेके पूरक हैं। ऐसे द्रव्यके लक्षणके परिचयमें यह स्पष्ट हो जाता कि प्रत्येक द्रव्य जो कि अपनी गुण पर्यायमें ही है वह प्रत्येक द्रव्य मेरेसे अत्यन्त भिन्न है, कोई सम्बंध नहीं, कुछ उपग्रह नहीं। सिद्ध भगवन्त,

http://sahjanandvarnishastra.org/

अरहंत भगवन्त किनका नाम है ? आत्मा सबसे निराला है, ऐसा निराला हो जाना कर्म, शरीर, विकार सबसे ही भगवन्तपना है। अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें निरन्तर लीन हो जानेका ही नाम तो भगवान है, वह मेरे स्वरूपमें है, उसकी जानकारी नहीं है तब तक अज्ञान है, मोह है, परको यह जीव अपनाता है, यों दुःखी होता है। तो पदार्थके स्वरूपका परिचय करना यह एक समस्त धर्मपालनका एक मूल सोपान है, पहली सीढ़ी है, उसीका इस गाथामें वर्णन किया।

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया ॥११॥

द्रव्यकी पर्यायमयता—लोकमें जो कुछ है वह कैसा है उसके स्वरूपका निर्णय चल रहा है। जो भी पदार्थ है उसमें दो बातें अवश्य हैं। एक सदा रहने वाला तत्त्व और दूसरा—उसकी प्रति समय होने वाली अवस्था। है और अवस्थायें बनाता रहता है। जो भी पदार्थ है उसमें तीन बातें अवश्य हैं—(१) बनना, (२) बिगड़ना और (३) बना रहना। ये तीन बातें किसीकी समझमें आयें तो, न आयें तो, होती सबमें हैं। यह अनिवार्य बात है। द्रव्य और पर्याय इनके बिना सत्त्व नहीं होता। अगर है कुछ तो सदा रहेगा और अपनी अवस्थायें बनाता रहेगा। यह है प्रत्येक पदार्थका इतिहास। यह ही अनादिसे प्रत्येक पदार्थ करता आया है। अनन्तकाल तक यह ही करता रहेगा। तो द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु है। जैसे जीवद्रव्य क्या है ? जो त्रिकाल रहने वाला चैतन्यस्वरूप है एक द्रव्यदृष्टिमें ज्ञात हुआ। पर्याय क्या है ? तो पदार्थकी पर्यायें दो प्रकारसे होती हैं—एक तो आकार रूपमें और एक गुण परिणति रूपमें। दोनों ही प्रकारकी पर्यायें प्रत्येक पदार्थमें हैं। जैसे परमाणु वह एक प्रदेशाकार है, बहुप्रदेशी नहीं है। जो भी एक प्रदेश है वही उसका आकार है, और गुण परिणमन क्या है ? स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये बदलते रहते हैं, ये उनकी गुणपर्यायें हैं। जीवमें क्या है ? नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव ये आकार पर्यायें हैं। जिस शरीरमें जीव जाता उस ही आकारमें जीव प्रदेश रहते हैं। जीव एक अखण्ड है, प्रदेश भी अखण्ड है, मगर उस अखण्ड प्रदेशका इतना विस्तार हो जाता है कि उसे अगर प्रदेशके रूपसे नापें तो असंख्यात प्रदेश कहलाता है। कहीं ये असंख्यात प्रदेश एक-एक अलग-अलग हों और उनको जोड़-जोड़कर बनाया हो, ऐसा नहीं है। वह निश्चयसे अखण्डप्रदेशी है, किन्तु उसका विस्तार होता है, संकोच होता है तो समझा कि वह बहुप्रदेशी कहलाता है। जैसे प्रकाश खाली प्रकाशमात्र वह तो एक स्वरूप है, मगर उसके फैलावकी दृष्टिसे देखो तो कोई दो हाथ दूर तक प्रकाश है, कोई १० हाथ तक, कोई ५० हाथ तक। तो फैलावकी दृष्टिसे बहुप्रदेशी है और स्वरूपकी दृष्टिसे वह अखण्ड है। जीव भी अखंड-प्रदेशी है वस्तुतः, किन्तु उसका कारण पाकर संकोच विस्तार होता है तो वह एक ही बढ़ा,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक ही घटा। उस घटा-बढ़ीमें जो नाप बना वह बहुप्रदेशी है, और ऐसे कितने प्रदेश हैं ? तो यह कल्पना करो कि अगर जीव फैले तो कितनी दूर तक फैलेगा ? पूरे लोकमें फैलेगा। तो लोकमें जितने प्रदेश हैं उतने प्रमाण आत्माके प्रदेश हैं, इस प्रकार जीवके प्रदेश लोक प्रमाण असंख्यात कहे गए हैं। धर्मद्रव्यका आकार-परिणमन क्या है ? जितना लोकाकाश है वहीं तक धर्मद्रव्य है, उतना ही अधर्मद्रव्य है। आकाश भी अनन्तप्रदेशी है, आकाश एक अखण्ड है। उस आकाशमें जितनेमें समस्त द्रव्य रहते हैं उसका नाम रखा है लोकाकाश और उसके बाहर में जो आकाश है उसका नाम है अलोकाकाश। लोकाकाशकी सीमा है, अलोकाकाशकी सीमा नहीं है। वस्तुतः आकाशके दो भेद नहीं हैं, आकाश तो एक ही है। जैसे एक मैदानमें आकाश है उसमें किसीने एक बड़ा मकान बना लिया तो अब सम्बंधसे दो भेद कर दो, एक मकानमें रहने वाला आकाश और एक मकानसे बाहरका आकाश। पर आकाशके क्या दो टक हो गए ? वह अखण्डप्रदेशी है, सभी पदार्थ अखण्डप्रदेशी हैं। कालद्रव्यका क्या आकार है ? कालद्रव्य एकप्रदेशी होता है। लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालद्रव्य स्थित है, उसका भी एक प्रदेशाकार है। प्रत्येक पदार्थमें आकार होता है। आत्माको निराकार जो कहा है तो अमूर्त होनेसे कहा है, पर फैलावकी दृष्टिसे आत्मा भी साकार है, प्रत्येक पदार्थ साकार है। उनका कोई निज-निज प्रदेश है और उस प्रदेशमें फैलाव होता है। यों प्रत्येक पदार्थमें आकार का परिणमन है और सभी पदार्थोंमें गुणका परिणमन है। जो भी जिसका असाधारण गुण है उनका प्रति समय परिणमन होता रहता है, इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य पर्यायवान है।

उत्पादव्ययध्रौव्यमयताके परिचयसे हितकी शिक्षा—अब वस्तुको द्रव्यकी दृष्टिसे देखो तो पदार्थ सदा काल रहता है और पर्याय दृष्टिसे देखो तो प्रति समय अपनी नई अवस्था बनाता रहता है, पुरानी अवस्था विलीन करता है। ये बातें सभी पदार्थोंमें पायी जाती हैं। इसके परिचयसे अपनेको क्या शिक्षा मिलती है कि भाई सभी पदार्थोंका ऐसा ही स्वरूप है। प्रत्येक पदार्थ है और वह अपनी नई-नई अवस्था बनाता रहता है। कोई पदार्थ किसी दूसरे की अवस्था नहीं बनाता। कोई पदार्थ अपने प्रदेशसे हटकर किसी दूसरे पदार्थमें नहीं जाता। इसलिए उसका किसी भी पदार्थसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं। दूसरी बात उसकी जो परिस्थिति बन रही है, जो दुःखभरी स्थिति है यह स्थिति मिट सकती है क्या ? हाँ मिट सकती है। क्यों ? यों मिट सकती कि आत्माका स्वरूप है ऐसा कि पुरानी अवस्था विलीन करे और नई अवस्था बनाये। जिन सिद्धान्तोंका यह मत है कि जीव तो एकान्ततः नित्य है, परिणमता नहीं। उनका जीव दुःखी है तो दुःखी रहेगा, सुखी है तो सुखी रहेगा, वहाँ तो परिणमन नहीं माना, तो उनकी कल्पनामें जो मंतव्य है उस पदार्थसे दुःख नहीं मिट सकता, पर ऐसा नहीं है। मैं जीव हूं, प्रति समय अपनी अवस्थायें बनाता रहता हूं। मैं अपनी दुःखमयी अवस्था

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिटा दूं और आनन्द अवस्थाको लाऊँ यह मेरी प्रकृति है, ऐसा मैं कर सकता हूं। इस बात की हमको उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाले स्वरूपसे शिक्षा मिलती है।

अवक्तव्य अखंड वस्तुमें भेदद्दष्टि, उत्पाद व्यय व ध्रौव्यका परिचय—प्रत्येक पदार्थ द्रव्यस्वरूपसे न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, किन्तु पर्याय ही उत्पाद व्यय और ध्रौव्यपने को प्राप्त होती है। देखिये ये तीनों ही बातें पर्यायद्दष्टिसे कही गई हैं। तो उत्पाद व्ययकी बात तो भली प्रकार समझमें आयगी कि हाँ पर्यायद्दष्टिसे प्रत्येक पदार्थ नया-नया बनता रहता है, मगर ध्रुवपना कैसे आता है? तो देखो जहाँ द्रव्यद्दष्टि है वहाँ अखण्ड सत्का परिचय है। उसमें उत्पाद है, व्यय है, ध्रौव्य है। ये तीन अंश व्यवहारनयसे किए जाते हैं और अंशका ही नाम पर्याय है। पर्याय अंशादिक अर्थोंमें पर्याय शब्दका प्रयोग है, तो उस द्दष्टिसे पर्याय ही ध्रुवपनेको, पर्याय ही उत्पाद व्ययको प्राप्त होती है। अब इससे यह बात समझना कि जो पर्याय विशेष है, क्षण-क्षणमें जो पर्यायें हैं उस द्दष्टिसे तो पर्याय विशेष है, क्षण-क्षण में जो पर्यायें हैं उस द्दष्टिसे तो उत्पाद व्यय है और जो पर्याय सामान्य है, सर्वपर्यायोंमें पर्यायपना तो है ही उस पर्याय जातिकी द्दष्टिसे वहाँ ध्रुवता भी है। पर्याय होती ही रहेगी। इस तथ्यको तत्त्वार्थसूत्रके एक सूत्रमें बताया गया है—तद्भावाव्ययं नित्यं। पदार्थके होनेका, होते रहनेका, व्यय न होनेका नाम नित्य है, याने अवस्थायें निरन्तर होती ही रहें ऐसी धारा बनी रहनेका नाम नित्य है। कोई भी पदार्थ ऐसा नित्य नहीं होता कि उसमें उत्पाद व्यय न हो। ऐसा यह मैं जीवतत्त्व द्रव्य द्दष्टिसे तो सद्भावरूप हूं, अखण्ड हूं, पर्यायद्दष्टिसे मेरेमें उत्पाद है, व्यय है और ध्रौव्यपना है। ऐसा यह मैं परिपूर्ण अखण्ड आत्मा जगतके समस्त पदार्थोंसे निराला हूँ।

विकल्पविच्छेदपर आत्मानुभवकी निर्भरता—जैसे सबका घाट एक होता है। मरना सबको होता है। संसारमें जीवन भी सबका एक ढंगसे चलता है। आयुका उदय सो जीवन, आयुका क्षय सो विनाश, ऐसे ही शान्ति और कल्याणका लाभ भी एक ही विधिसे होगा। जिसे आत्मानुभव चाहिए उसे बहुत-बहुत त्याग करना होगा। जैसे भीतरमें जितनी कल्पनायें बनतीं उनका त्याग करना होगा, उनके संस्कारका त्याग करना होगा। ऐसा जब सहज उदार हो जाय तो वहाँ आत्मानुभव जगता है। देखो मैं किस जगह बैठा हूँ, यह थोड़ा बहुत भी याद रहेगा तो आत्मानुभव न बनेगा। मैं किस वक्त बैठा हूं, कौनसा समय है, कितने बज गए हैं? यह बात जब तक थोड़ी भी चित्तमें रहेगी आत्मानुभव न जगेगा। मैं मनुष्य हूं, व्यापारी हूं, वैश्य हूँ, जैन हूं, गृहस्थ हूं, साधु हूं, परिवार वाला हूँ, बालबच्चों वाला हूँ, मैं उच्च कुलका हूँ, ऐसी कोई भी बात, कुछ भी संस्कार जब तक चित्तमें ऊधम मचायगा तब तक आत्मानुभव न जगेगा। व्यवहार धर्मकी प्रवृत्तिका मूड दूसरा होता है और आत्मानुभवकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वृत्तिका मूड दूसरा होता है । कैसी व्यवहारसे परे है यह आत्मानुभवकी स्थिति ?

व्यवहारधर्मका प्रयोजन आत्मानुभवकी अपात्रतासे बचाव रखना—आत्मानुभवकी स्थिति व्यवहारसे परे है, इसके मायने यह नहीं हैं कि जब व्यवहारका मार्ग बिल्कुल जुदा है व आत्मानुभवका मार्ग जुदा है और निश्चयनयका मार्ग आत्मानुभवमें ले जाता है तो व्यवहार क्यों किया जाय ? छोड़ दो । हाँ हाँ भाई छोड़ दो । कब छोड़ दो ? जब इतनी पात्रता है कि हम सहजदृष्टिसे स्वतंत्रता इतनी पा गए हों, इतना समर्थ हों कि हम आत्मानुभवमें गर्त रहा करते हों, तो छोड़ोगे क्या, वह तो छूट ही जायगा, किन्तु जब तक आत्मानुभवकी स्थिति नहीं पायी तब तक आप कुछ करेंगे तो सही । मन, वचन, काय ये ठाली न रहेंगे, इनकी प्रवृत्ति रहेगी, वह कैसी प्रवृत्ति रहेगी ? आप कहेंगे कि आत्मानुभव करनेके लिए धुन बन जाय, सोचा करें, यह प्रवृत्ति बन जायगी, बस यह ही व्यवहारधर्म है । आप कहेंगे कि उस आत्मानुभवकी गाथा गाया करें, शास्त्र पढ़ें, पढ़ायें, अध्ययन करें, चर्चा करें, किसी भी प्रसंग के रूपमें हम आत्मानुभवकी गाथा बनाये रहें, बनाइये, यह हो तो व्यवहारधर्म है । शरीरसे प्रवृत्ति क्या करेंगे ? भाई जिन्होंने आत्मानुभवका फल पाया है उनकी वंदना करेंगे । जो आत्मानुभवके कार्यमें लगे हैं उनकी सेवा करेंगे । करो, यह ही तो व्यवहारधर्म है । सब जीवों में हम उसी स्वरूपको निरखेंगे जैसा कि मैंने अपनेमें अनुभव किया है और उस स्वरूपको जब निरख लूंगा, सब जीवोंमें मैं उस चैतन्यस्वरूपको निरखूंगा तो उसके प्रति आदर भी करेंगे वह फिर हिंसा कैसे कर सकेगा ? हिंसा न करेगा, किसीको दुर्वचन न बोलेगा, दुर्व्यवहार न करेगा । हाँ तो करेगा ऐसा, यह ही तो व्यवहारधर्म है । तो व्यवहारधर्म आत्मानुभवके लिए पात्रता बनाये रखता है । कहीं यह उल्टा न हो जाय, व्यसनी न हो जाय, पापी न हो जाय, एकदम पतित न हो जाय, अज्ञान न आ जाय—इन सब बातोंका बचाव व्यवहारधर्म करनेसे होता है । मगर आत्मानुभवकी दशामें व्यवहारधर्म छूटकर एकमात्र शान्त सनातन सत्य, कल्याणमय एक शुद्ध चित्प्रकाश अनुभव होता है । यह बात हो सकती है, इसका संकेत मिल रहा है इस कथनसे कि प्रत्येक पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है । जो पर्याय मिला है यह पर्याय मिट सकता है । अज्ञानदशा तो मिटेगी, ज्ञानदशामें आयगी । इस पर्यायको मिटाना दो उपायोंसे होता है—एक तो व्यावहारिक और दूसरा नैश्चयिक । व्यवहारिक उपाय यह है कि बाह्य पदार्थोंका सम्बन्ध यह हमारी ममताका कारण बनता है । इसका त्याग करें । नैश्चयिक उपाय यह है कि अपने आत्माके उस ध्रुव चैतन्यस्वरूपको ज्ञानमें लेना, मैं यह हूं ।

परमार्थपुरुषार्थ—कोई कठिन बात है क्या निज परिचयकी ? आप कुछ न कुछ अपने बारेमें विचारते हैं कि नहीं कि मैं यह हूं, मैं गृहस्थ हूं, साधु हूं, बाबू हूं, श्रावक हूं, उच्च कुली

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हूं। रास्तेमें जाते हैं और कुछ छोटी जातिके लोग जब वहांसे निकलते हैं तो आप उन्हें छोटा मानकर उनसे बचकर चलते हैं, क्यों आप ऐसा करते हैं ? इसलिए कि आपने अपनेको भीतर में कुछ समझ रखा है कि मैं यह हूं, और जब कोई अपनी पार्टीका दिख जाता है तो आप उसे अपनी ओर खींचते हैं, अपने पास बुलाकर अपने पास बैठाते हैं, आप उसका आदर करते हैं, बाकी और जीवोंको आप उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं, क्योंकि आपने कुछ समझ रखा है पर-में कि मैं यह हूं। निरन्तर यह ध्यानमें रखते हैं कि मैं यह हूं। मैं होनेको कभी नहीं भूलते। बस जो मैं हूं उसे नहीं भूलना है, किन्तु सही तो जानें कि मैं क्या हूं ? जो जो कल्पनायें की जाती हैं वे मैं नहीं हूं। मैं सहज चैतन्यस्वभावमात्र हूं, कैसा निस्तरंग, धीर, गम्भीर, उदार, शाश्वत, अनवरत, अन्तःप्रकाशमान ऐसा मैं चैतन्यस्वरूप हूं, ऐसा 'मैं' होनेका बोध रहे, लगा रहे तो प्रतिक्षण कर्मनिर्जरा होती है। बड़े-बड़े तपश्चरणोंका तथ्य और है क्या ? जिस किसी भी प्रकार इस अन्तःस्वरूपमें रमण हो जाय। अगर तपश्चरण नहीं कर सकते, जो समझमें देखनेमें आता है—अनशन करना, ऊनोदर करना, रस त्याग, काय क्लेश, विविक्त शय्यासन आदिक नहीं बनता, उनके करनेको समय नहीं मिलता और यह अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि दृढ़तया बन गई तो तपश्चरणका फल पा लिया। उसे तपश्चरणकी क्या अनिवार्यता ? इसके मायने यह नहीं कि तपश्चरण अनावश्यक हो गया। अनावश्यक भी है, आवश्यक भी है। जो परमार्थ पदमें प्रविष्ट नहीं हैं उन्हें आवश्यक है और जो प्रविष्ट हैं, परमचैतन्यस्वरूपका अनुभव कर रहे हैं वे तो इस तपश्चरणसे भी ऊँचा तपश्चरण कर रहे हैं, जिसे कहते हैं चैतन्यस्वरूपका प्रयत्न। यह स्थिति बने, बस इसके लिए समस्त प्रवचन हैं, आगम है, सम्बोधन है। वही शिक्षा हमको पदार्थोंके स्वरूपके निर्णयमें मिलती है।

द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टिसे पदार्थका परिचय—पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यवान है, द्रव्य स्वरूपसे नहीं, पर्यायरूपसे। द्रव्यस्वरूपसे कैसा है ? सत् स्वरूप अखण्ड अवक्तव्य। ओह ! उत्पादव्ययध्रौव्यवान होकर भी अखण्डकी दृष्टिमें है यह जीव और अखण्ड होनेपर भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी दृष्टिमें है यह जीव। जो जीव उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी बात सुन रहा है, समझ रहा है वह अखण्ड होकर भी समझ रहा है, और जो अखण्डकी बात सुन रहा है, समझ रहा है, अखण्ड स्वरूपमें प्रवेश कर रहा है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूपसे रहता हुआ ही प्रवेश कर रहा है, इन दो बातोंमें किसको असत्य कहा जाय ? पदार्थका स्वरूप सत्य है, उत्पादव्यय ध्रौव्य यह सत्य है और अखण्ड है, यह असत्य है, यह नहीं कहा जा सकता। अखण्डता नहीं है तो उत्पादव्ययध्रौव्य न बनेगा और जहाँ उत्पाद व्यय ध्रौव्य नहीं हो रहा वहाँ अखण्ड तत्त्व ही नहीं। किसके आश्रयमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य हो ? तो ये दो किनारे जैसे वस्तुके होते ही हैं लाठीमें या रस्सीमें या अन्य चीजोंमें, ऐसे ही प्रत्येक पदार्थमें दो बातें होती ही हैं। पदार्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्यरूप है, पदार्थ पर्यायरूप है, द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु होती है। मेरा द्रव्य पर्याय मुझमें समाप्त है, मेरेसे बाहर नहीं। प्रत्येक अणु मुझसे भिन्न है। कितना भिन्न ? पूरा भिन्न। प्रत्येक परजीव मुझसे भिन्न है। कितना भिन्न ? पूरा भिन्न। जो इस श्रद्धामें कमी रखेगा उसके सम्यक्त्व नहीं है। घरमें रहने वाले जीव पुत्र पुत्री और और सब ये जीव ये तो कुछ मेरे लगते हैं, ऐसी श्रद्धामें बात होगी तो वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, संसारमें जन्ममरणकी परम्परा बढ़ाने वाला है। हम राग न छोड़ सकें, यह बात तो क्षम्य है, पर श्रद्धा यदि ऐसी बनी है कि ये तो मेरे हैं, बाकी अन्य जीव मेरे कुछ नहीं, तो यह अक्षम्य अपराध है। इसका फल तो कुगतियोंमें जन्ममरण है। अज्ञान हटनेके बाद जो राग रह जाता है उसमें तो बड़े-बड़े पुण्यबंध भी होते है, किन्तु अज्ञान रहते हुए यदि कुछ धार्मिक क्रियावोंका भी राग चलता है तो वहाँ तो पापबंध होता है, मिथ्यात्वका असर विशेष होता है और आपके शुभ मन, वचन, कायकी क्रियावोंका तेज न होगा। भीतर देखो तो यह बात हमको यह द्रव्यस्वरूपका परिचय करती है कि हम अज्ञान अवस्थामें मत रहें। इस अवस्थाको बदलकर ज्ञान अवस्थामें आयें और अपने ध्रुवस्वरूपकी दृष्टि बनावें।

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ॥१२॥

विस्तृत परिचयसे प्रायोजनिक परिचयमें स्पष्टता—पदार्थोंके स्वरूपकी कथनी चल रही है। हम आपको जो संसर्ग मिलता है उस संसर्गमें कभी सुख मानते, कभी दुःख मानते। सो संसर्ग सुख नहीं दे रहा, दुःख नहीं दे रहा, किन्तु अपने आपके जो ज्ञानविकल्प हो रहे हैं वस्तुस्वरूपके विपरीत उनसे सुख और दुःख होता है, यह कैसे समझमें आये ? इसके लिए पदार्थोंके स्वरूपका वर्णन किया गया है। बात तो थोड़ी ही है, मगर जानना पड़ेगा बहुत, तब यह थोड़ी जानकारी बनेगी। कोई कहे कि भेदविज्ञान करना है, जीव अलग है, शरीर अलग है, कुटुम्बके लोग अलग हैं, मैं अलग हूं, इतना जान ले तो बेड़ा पार हो जायगा। बात तो ठीक कह रहे, मगर इतनी जानकारी बनानेके लिए बहुत जानना होगा तब इतनी जानकारी बन पायगी सही तरीकेसे। एक सेठके यहाँ एक मुनीम था और कई पल्लेदार थे। तो मानो मुनीमको तो मिलते थे १००) रु० माहवार तनख्वाहके और मजदूरोंको कोई ३०-३० रुपये माहवार मिलते थे। तो एक बार वे मजदूर सेठजी से बोले कि सेठजी आप तो हम लोगोंके साथ बड़ा अन्याय कर रहे हैं।····कैसे ?···देखिये—मुनीम जो बैठे-बैठे सिर्फ कलम चलाता रहता है, उसे तो आप १००) रु० माहवार वेतन देते हैं और हम लोग जो रात-दिन बड़ा बोझ ढोते हैं उन्हें सिर्फ ३०) रु० माहवार देते हैं, तो ऐसा क्यों ? तो सेठने वहाँ सोचा कि इनको इस तरहसे समझानेसे समाधान न मिलेगा, कोई प्रयोगात्मक घटना बने तब इनको

http://sahjanandvarnishastra.org/

समाधान मिल पायगा। आखिर कुछ ही दिन बाद एक घटना घटी। क्या, कि सड़कपर कोई बारात खूब सज-धजकर जा रही थी तो वहाँ सेठने एक पल्लेदारको भेजा कि जावो जानकारी करके आवो कि सड़कपर क्या चीज जा रही है, तो पल्लेदार सड़कपर पहुंचा और पूछकर जान लिया कि बारात जा रही है तो झट वापिस आया और सेठजी से बताया कि बारात जा रही है, और कुछ विशेष विवरण वह न दे सका। उसके बाद मुनीमको भेजा उसी जानकारीके लिए। मुनीम पहुंचा सड़कपर, सब प्रकारकी जानकारी कर लिया कि बारात कहाँसे आ रही है, कहाँ जा रही है, किसके यहाँसे आ रही है, किसके यहाँ जा रही है, कितने बजे फेरे पड़ेंगे, किस सवारीसे आ रहे हैं आदि, और आकर सेटजी से सारा हाल कह सुनाया। तो सेठने सभी पल्लेदारोंको बुलाकर समझाया कि देखो तुम लोगोंमें और मुनीममें इस बात का अन्तर है कि शब्द तो हमने उतने ही दोनोंसे कहे कि जावो जानकारी करके आवो कि सड़कपर क्या जा रहा है, तो पल्लेदारने तो सिर्फ इतना ही बताया कि बारात जा रही है और मुनीमने सारी बात पूरे विवरणके साथ बताई, तो तुम दोनोंमें बुद्धिका अन्तर है। इस कारण तुम्हारी तनख्वाहमें भिन्नता है। तो एक भेदविज्ञान करो, इतनीसी बात कह दिया कि द्रव्य भिन्न है, कोई किसीका कर्ता नहीं है, सब अपने-अपनेमें परिणमते हैं, बस ये बातें जरा करने लगे। दो-तीन दिनकी कुल पढ़ाई है, भेदविज्ञानकी बात करनेके लिए कौनसे शब्द हैं उन्हें रट लिया और बोलने लगे तो इतनेसे भेदविज्ञान स्पष्ट आ पाया क्या समझमें? उसके लिए पदार्थोंका स्वरूप विस्तारपूर्वक जानना होगा तब इतनी बात समझमें आयगी कि प्रत्येक पदार्थ एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न है। अभी किसीका झगड़ा घरमें ही हो रहा हो भाई-भाईमें या पड़ौसीमें हो रहा हो और कोई कहे कि देखना क्या बात है? तो एक व्यक्ति पहुंचा तो वह यह जानकारी करके आया कि भाई-भाईमें लड़ाई हो रही है, और कुछ न बता सका, और दूसरा व्यक्ति पहुंचा तो वह सब जानकारी कर आया कि भाई-भाईमें लड़ाई हो रही है, किस बातकी लड़ाई है, कौन अन्याय कर रहा है, किसका पक्ष सही है आदि। तो इसी तरह समझो कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न है। मैं आत्मा शरीरके अणु-अणुसे अत्यंत भिन्न हूं। मैं आत्मा अपने आपके सहज चैतन्यस्वरूपमें हूं, यह बात कब समझमें आयगी जब तक कि पदार्थके स्वरूपका विस्तारके साथ परिचय पायें।

सयुक्तिक विस्तृत परिचय और वैराग्यभावमें भेदविज्ञानका सही परिचय—विस्तारसे वर्णन भी सुन लिया, समझ लिया, इतनेपर भी वैराग्य परिणति हो तो समझमें आयगा कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न है। यह समझ किस प्रकार होती है? तो उसके लिए प्रथमानुयोगका स्वाध्याय करें, करणानुयोगका स्वाध्याय करें, करणानुयोगसे जब लोकका, कालका बहुत वर्णन मननमें आये, ऊँची-ऊँची बातें कर्मोंकी सब मननमें आयें तो कई वजह हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसी कि जिन कारणोंसे इसके वैराग्य बढ़ता है, आचार्योंके प्रति भक्ति बढ़ती है, वे जो कह रहे सो सही है ऐसा भान होता है, ये सब बातें वैराग्यको मजबूत करने वाली हैं। प्रथमानुयोगमें बड़े पुरुषोंका चरित्र समझें, उसके अनुसार अपनी बुद्धि बने, अपनेमें वैराग्यभाव बढ़े तब कहियेगा कि इसके भेदविज्ञानको अब समझा। अब समझ लो कितना पौरुष चाहिए कि हम आपके भेदविज्ञान बने, उसी सिलसिलेमें यह पदार्थोंके स्वरूपके विस्तारकी चर्चा चल रही है। कोई भी काम हो, जी जान लगाकर करें तब उसमें सफलता मिलती है। इतना तो समझ ही रहे ना। आप दूकान करते हैं तो खूब उपयोग लगाकर, मेहनत करके, कष्ट उठाकर सब तरहके व्यवहार बनाकर चलना होता है, उसके लिए साहस है, उसके लिए संकल्प है, और मोक्षका काम कितना महान है, कितना महत्त्वपूर्ण है कि हो जाय तो सदाके लिए संकट मिटें। तो मोक्ष क्या है ? अपने आपका जो विविक्त सहज चैतन्यस्वरूप है वह यथावत रह जाय, यही तो मोक्ष है। यह पाया जिन्होंने उन्हें अनन्तआनन्द, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति प्राप्त होती है, और मोक्षमार्गके पानेके प्रसंगमें इतना महत्त्वपूर्ण कार्य है कि इसके लिए तन लगे, मन लगे, धन लगे, वचन लगें, प्राण लगें, सब कुछ लगनेपर भी यदि ज्ञानमें अपने आपके सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव बने तो बस बेड़ा पार है, ये सब बातें पदार्थोंके स्वरूपकी जानकारीमे मिलेंगी।

पदार्थोंकी अखण्डद्रव्यपर्यायमयता--सत्में द्रव्य और पर्याय, दो बातें तो माननी पड़ेंगी ही। चीज है, सदा काल रहती है, अच्छा यह बात तो मान ली, पर उसकी अवस्थायें भी बनती रहती हैं। पर्यायें बनती रहती हैं, यह भी बात है कि नहीं। इसी बातको इस गाथामें स्पष्ट किया है कि पर्यायसे रहित द्रव्य नहीं, द्रव्यसे रहित पर्याय नहीं, इस प्रसंगमें एक बात और समझना, बहुत ऊँचे अभेददृष्टिके ख्यालसे बढ़कर चलें तो एक बार गुणोंको तो मना कर सकते हो, गुण नहीं, और मना करके उसके एवजमें क्या जानें ? स्वभाव। और गुण क्या हैं कि स्वभाव है वस्तुमें अभेददृष्टिसे परखा जाने वाला एक अभिन्न लक्षण और गुण है, उसी स्वभावको समझनेके लिए उस स्वभावके भेददृष्टिसे अनेक खण्ड कर देना। खण्ड न करना, मत करें, द्रव्य है, स्वभाव है उसका। इतना तो मानना ही होगा। इतना माने बिना तो आगे न बढ़ सकेंगे और साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि प्रत्येक समयमें द्रव्यकी कोई न कोई अवस्था रहती है, उसका नाम है पर्याय। अब इस पर्यायको कोई विशेष न जाने तो परिणमन है सामान्य परिणमन, इतना तो मानना ही होगा और जो एक परिणमन है वह अवक्तव्य परिणमन है, जिस दृष्टिमें गुणोंको स्वीकार नहीं किया। हमें न चाहिए भेददर्शन, हम अभेददृष्टिसे चलकर अपनेमें परखेंगे, परका द्रव्य अभेद है, अवक्तव्य है, अखण्ड है, हाँ ठीक समझ गए, पर पर्याय बिना नहीं है कुछ। वह पर्याय भी अवक्तव्य अखण्ड अभेद, यों निरखा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जायगा । पर्यायमें विशेष तब निरखा जायगा जब गुण मानकर चलें । यह अमुक पर्याय है, यह अमुक पर्याय है, यह बात तब कह सकेंगे जब गुण मानकर चलें । हम गुण नहीं मान रहे, हमारी दृष्टि अभेद है, इस द्रव्य और स्वभावको समझ रहे हैं अखण्ड अवक्तव्य । तो पर्यायको अखण्ड अवक्तव्य मानना होगा हर समय । प्रतिसमय वस्तुमें प्रत्येक अखण्ड है, अवक्तव्य हैं । अगर कुछ बताया जा रहा है तो पूरी बात नहीं कही जा रही, अंश कहा जा रहा । जीवकी इस समय भीतरमें क्या अवस्था बन रही ? उसका पूरा विवरण आप दे सकेंगे क्या ? नहीं दे सकते । वह अवक्तव्य है, अखण्ड है याने तिर्यक् खण्ड भी नहीं है, और जब यह कहते कि वाह क्रोध है, मान है, लोभ है, शान्ति, समाधि, ज्ञानदृष्टि लगन ये सब हो रहे हैं, तो इनमेंसे कोई भी आप एक बात कहें वर्तमान अवस्थाकी, उसमें से एक अंश ही तो आपने बताया । तो इतना तो मानना ही पड़ेगा—द्रव्य और पर्याय, गुणको छोड़ दो, उसकी चर्चा न करें, पर अखण्ड कोई वस्तु है शाश्वत और उसका प्रति समय परिणमन है, वह परिणमन अभेद है, अखण्ड है, इन्हीं दो की चर्चा चल रही है कि पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है । द्रव्यसे रहित पर्याय कुछ होती ही नहीं, पर्यायसे रहित द्रव्य कुछ होता ही नहीं ।

दृष्टान्तपूर्वक द्रव्य व पर्यायकी अविनाभाविताका निरीक्षण—दृष्टान्त लो गोरस, मायने गायका जो निकला हुआ दूध है वही दही बन गया, घी बन गया, मावा बन गया, छेना बन गया, जो जो भी बना, यह बताओ कि उन सब अवस्थाओंमें गोरस होता कि नहीं ? आप घी दिखाओ, दही लावो, लेकिन गोरस न होना चाहिए । तो क्या आप ला सकेंगे ? न ला सकेंगे, क्योंकि गोरस तो उन सब अवस्थाओंमें व्यापक है । दूध है तो गोरस, दही बना तो गोरस, मट्ठा बना तो गोरस, गोरस बिना इनमेंसे कुछ भी नहीं है । न दूध मिलेगा, न दही । तो गोरससे रहित दूध दही कहीं मिलेगा क्या ? न मिलेगा । और दूध, दही घी, छाँछ, छेना, मावा आदिक इनके बिना गोरस आपको कहीं दिखेगा क्या ? न दिखेगा । आप सोना चाँदीमें यह घटना ले लो । स्वर्ण द्रव्यके बिना डला, बिस्कुट अंगूठी, करधनी आदिक सारी पर्यायोंके नाम ले लो । ये सब मिलेंगे क्या ? न मिलेंगे । और इन सबके बिना स्वर्ण मिलेगा क्या ? कोई कहे कि देखो न तो पिण्ड लाना, न कोई आभूषण लाना, सिर्फ सोना लाना, तो वह ला सकेगा क्या ? नहीं ला सकता । स्वर्ण द्रव्य बिना ये अलंकार आदिक नहीं और अलंकार आदिकके बिना स्वर्ण द्रव्य नहीं है । स्वर्ण द्रव्य तो कोई न कोई अवस्थामें होगा । है अवस्था जरूर तो कोई वस्तुकी ही तो अवस्था है । इस प्रकार द्रव्य बिना पर्याय नहीं, पर्याय बिना द्रव्य नहीं । ये दोनों ऐसे अनन्यभूत हैं ।

वस्तुस्वरूपके परिचयसे भेदविज्ञानीकी शिक्षा—यहाँ बात क्या समझनी है कि जो भी वस्तु है वह द्रव्यपर्यायरूप है । सो अपने द्रव्यपर्यायरूप है । मुझमें उसका कुछ नहीं, मैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो हूं सो अपने द्रव्यपर्यायरूप हूं। मेरा अन्यमें कुछ नहीं। अब तत्त्वज्ञान बने और वैराग्य की बढ़वारी बने ये दो ही इस जीवके रक्षक हैं। ये दो बातें न हों तो जीवकी कहीं रक्षा नहीं है। झगड़ा-फंसाद, लड़ाई आपत्ति याने नारकीय लीला जहाँ भी हो, जिस घरमें हो, जो करने वाला हो, उसका आधार क्या है ? वस्तुस्वरूपका ज्ञान नहीं। स्व परका भान नहीं, सो यह सब गड़बड़ी चल रही। निजको निज परको पर जान, यह बात नहीं है वहाँ विसम्वाद है। तो सर्व पदार्थ पृथक्-पृथक् हैं, यह बात कब स्पष्ट झलकी ? जब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव गुण पर्याय सब नजरोंसे यह ज्ञान होगा कि प्रत्येक वस्तु अपने आपके स्वक्षेत्रमें है और उसमें ही उसकी सारी फैक्टरी है, उससे बाहर मेरा कुछ नहीं है। वस्तुके सहज स्वातन्त्र्यके ज्ञाता को मिलेगा तत्त्वज्ञान।

निर्बाध हितयात्राका साधन प्रभुशासनप्रदीप—देखो इस जीवनमें क्लेशके गड्ढे बहुत खुदे हैं, एक यात्रा हो रही है अपनी याने समय गुजर रहा और समय-समयमें हम पग बढ़ा रहे हैं, परिणमन तो हो ही रहा ना, यही है हमारी यात्रा। इस यात्राके पथमें जगह-जगह गहरे-गहरे क्लेशोंके गड्ढे खुदे हुए हैं। एक तो यह आपत्ति, दूसरे अज्ञान पापका अंधकार फैला हुआ है। अब लौकिक उदाहरण ले लो कि आपको कहीं बाहर जाना है और अंधेरी रात है, और जिस मार्गसे जाना है उसमें बड़े-बड़े गड्ढे जगह-जगह खुदे हैं, जाना तो आपको पड़ेगा, ऐसी मजबूरीमें तो अच्छी तरह आप जा सकें, इसके लिए आप लोगोंको कोई उपाय समझमें आया कि नहीं ? आप जा सकते हैं किस उपायसे ? हाथमें दीपक ले लो, बस बेधड़क चले जावोगे। एक ही तो उपाय है, अगर कठिन उपाय हो तो चिन्ता करो, क्यों चिंता करते, एक ही सीधी बात है—हाथमें दीपक लो और पार कर जावो उस रास्तेको। इसी तरह हम आपके इस जीवनपथमें बड़े-बड़े कष्टके गड्ढे खुदे हैं। वस्तुतः अब भी कष्टकी कोई बात भी है क्या ? अच्छी तरह बैठे हैं, स्वस्थ भी हैं, सारी बात है, मनमें कल्पना जगी तो कष्ट हो गया। कोई छोटा बच्चा है, आपके पास बैठा है, आप उसे अपनी गोदमें बैठाये हैं, उसे चिपटाये भी हैं, कोई चीज वह बच्चा माँगे तो आप उसे देनेको तैयार हैं, खाना माँगे तो खाना तैयार है, खिलौना माँगे तो खिलौना तैयार है। खेल भी रहा है, अब उस बच्चेके मनमें आ जाय कि घर जाना है और आप नहीं उसे घर लिए जा रहे तो वह बच्चा बड़ा कष्ट मानता है, रोता है। बताओ उसे किस बातका कष्ट है ? कोई उसे मारपीट नहीं रहा, कोई कुछ कह नहीं रहा फिर उसे कष्ट किस बातका ? बस दुःख है उसकी कल्पनाका, अज्ञानताका। तो जैसी बात उन बालकोंकी है ऐसी ही बात हम आप सबकी है। कोई कष्ट नहीं है, आनन्द है। दो रोटियाँ खानेको मिल ही जातीं, तन ढकनेको कपड़े मिल ही जाते, सब सुविधा है, सारी बात है, मगर कल्पना जगी तो सब कुछ रहते हुए भी आनन्द तो पाया नहीं। कष्ट ही मिला।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कल्पना जगी, उसकी ओर दृष्टि बनी जो कल्पनामें आया और वर्तमानमें जो सुख-सुविधा साधन हैं उनका सब खातमा हो गया। तो क्लेशके गड्ढे कितने खुदे हैं जीवनपथमें और इसके अतिरिक्त पाप अज्ञानका अंधकार छाया हुआ है, कुछ नहीं सूझता, ऐसी विकट परिस्थितिमें आप अपना भविष्य ठीक बना सकते हैं क्या ? कोई उपाय है क्या आपके पास ? उस लौकिक गमनका तो उपाय मिल गया था, वहाँ तो दीपक आप ले लेंगे, पर बतलाओ इस जीवनपथमें जो क्लेशोंके गड्ढे खुदे हैं, अज्ञान और पापका अंधकार छाया है, कुछ सूझ नहीं रहा है, ऐसी हालतमें कोई उपाय है आपके पास है क्या कि आपकी यात्रा अच्छी बने और आपको सुख शान्ति संतोष हो ? उसका उपाय यह है कि जिनवाणीरूपी रत्नका दीपक तत्त्वज्ञान आप हाथ में ले लें, पदार्थका सही-सही बोध उस ज्ञानको लेकर चलें तो कहीं आपको कष्ट नहीं। सारे काम आप अच्छी तरह निभा लेंगे।

औपाधिक मायासे हटकर परमार्थ सहज चित्प्रकाशमें आनेकी भावना—सकल संकट-हारी एक मौलिक ज्ञानकी बात चल रही है। भेदविज्ञान कैसे बने ? अज्ञान अंधकारसे हटकर ज्ञानप्रकाशमें कैसे आयें ? करें प्रार्थना, किससे ? भगवानसे। किस भगवानसे ? अंतर्भगवानसे। क्या करें ? तमसो मा ज्योतिर्गमय, हे अन्तर्नाथ ! मुझको अंधकारसे तो दूर करो और ज्योति में ला दो। इस अन्तर्नाथका मायारूप जो परिणाम है वह अंधकार है और सहज स्वभावरूप जो भाव है वह परमप्रकाश है। इस ही प्रभुकी माया और इस ही प्रभुका ब्रह्मस्वरूप है। माया से हटाकर इस ब्रह्मस्वरूपमें ले जावो। यह कब प्रेरणा मिलेगी ? कैसे इस ओर हमारी गति चलेगी ? तत्त्वज्ञानसे। वह तत्त्वज्ञान है इस जिनवचनमें। पदार्थके स्वरूपके सम्बंधमें कहा जा रहा है कि जो है वह द्रव्यपर्यायात्मक है। द्रव्य नहीं तो पर्याय नहीं और पर्याय नहीं तो द्रव्य नहीं। ऐसा समस्त पदार्थोंका स्वरूप निश्चित हो रहा है ताकि यह स्पष्ट रहे कि प्रत्येक पदार्थ अन्य समस्त प्रत्येक पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है। यह बात तब ही तो मालूम पड़ेगी जब उनका वह गठित स्वरूप हमारी दृष्टिमें आये। टोकरीमें १० फल रखे हैं तो आपने १० फल कैसे जान लिया ? प्रत्येक फलका अपना-अपना गठित स्वरूप खुद ही में है, दूसरेमें नहीं। तब आपने १० जान लिया। एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न हैं तब ही तो बनी समझ। तो ऐसे ही प्रत्येक जीवका, प्रत्येक अणुका, प्रत्येक पदार्थका द्रव्यपर्यायात्मक स्वरूप है। दृष्टिमें हो तो यह ध्यानमें जगेगा कि प्रत्येक पदार्थ अन्य समस्त पदार्थोंसे जुदा है।

पर्यायरहित द्रव्यको तथा द्रव्यत्वरहित मात्र पर्यायको मानने वालोंके सिद्धान्तकी शोधना—प्रकरण यह चल रहा है कि पर्यायोंसे रहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्यसे रहित पर्याय नहीं होती। इस बातको सुनकर यह शंका रख सकते हैं कि क्या कोई ऐसा भी पुरुष है जो यह मानता हो कि पर्यायसे रहित द्रव्य है और द्रव्यसे रहित पर्याय है ? जब कोई इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विचारके लोग हों तब तो यह बात कहना भला है, अन्यथा कहनेका क्या अर्थ है ? सो यह शंका ठीक है । उत्तर यह है कि हाँ हैं ऐसे लोग जो पर्यायसे रहित द्रव्य मानते हैं और द्रव्यसे रहित पर्याय मानते हैं । मायने बात दो हैं ना—तीन काल रहने वाली वस्तु और उसकी अवस्था । हर जगह घटा लो । कोई भी अगर पदार्थ है तो वहाँ दो बातें आप समझेंगे—तीन कालमें रहने वाला पदार्थ और उसकी अवस्था । तो कोई दार्शनिक ऐसे हैं कि तीनों काल रहने वाला पदार्थ तो मानते हैं, पर अवस्था नहीं मानते । अवस्था कोई होती ही नहीं । ऐसे कौन लोग हैं ? नित्य एकान्तवादी, ब्रह्मवादी, जो कहते हैं कि है एक ब्रह्म, पर वह परिणमता नहीं है । परिणमन जो है, यह प्रकृतिकी चीज है । सांख्य भी यही कहते हैं । तो कुछ दार्शनिक हैं ऐसे कि जो पर्यायरहित द्रव्य मानते हैं और कुछ लोग ऐसे हैं कि जो द्रव्यरहित पर्याय मानते हैं याने तीन कालमें रहने वाली वस्तु कोई नहीं होती । जो कुछ है सो तुरन्त पैदा हुआ और तुरन्त मिट गया । अब समय-समयमें जो-जो बात सामने आयी, बस वह एकदम आ गया । उसका कोई लगार पहले न था, वस्तु ही न थी, वह तो नई वस्तु उत्पन्न हुई है और उत्पन्न होते ही मिट जाती है । ऐसे वे लोग कौन हैं ? क्षणिक एकान्त वाले । तो ऐसे अभिप्रायके लोग हैं और जो प्रकट नहीं हैं अन्य दार्शनिक रूपमें, ऐसे जैनधर्मके ही शासनमें चलते हों उनका भी कभी-कभी ख्याल हो सकता किसीके, इसलिए कुन्दकुन्दाचार्यने गाथामें यह बताया कि पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्यरहित पर्याय नहीं होती । तो क्या है ? जो है वह द्रव्यपर्यायात्मक है, द्रव्यसे पर्याय अनन्यभूत है, अलग नहीं है । वही एक पदार्थ परिणमता हुआ चला जा रहा है अब तक । किसी भी भाषामें समझ लो—इस तरह पर्याय और द्रव्यमें भेद नहीं । तो जैसे इस गाथामें बताया कि द्रव्य और पर्यायमें भेद नहीं, ऐसे ही अगली गाथा में कह रहे हैं कि द्रव्य और गुणमें भेद नहीं ।

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि ।
अव्विदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा ॥१३॥

द्रव्य और गुणका तादात्म्य और अविनाभाव—द्रव्यके बिना गुण नहीं होते, इसी प्रकार गुणोंके बिना द्रव्य सम्भव नहीं । यों द्रव्य और गुणमें परस्पर अभेद है । बात क्या कही जा रही है ? दो बातें द्रव्य और गुण । द्रव्य क्या कहलाता है ? अखण्ड वस्तु, पूर्ण वस्तु जो त्रिकाल रहता है । अनादिसे अनन्त काल तक है, ऐसे वस्तुको कहते हैं द्रव्य । अब जो भी द्रव्य है उसका कोई न कोई स्वरूप जरूर है । स्वरूप न हो तो उसका अभाव हो जायगा । तो जो स्वरूप है वही स्वभाव है । तो द्रव्य अनादि अनन्त है । उसका स्वभाव अनादि अनन्त है । अब उस स्वभावको पहिचाननेके लिए अभेददृष्टिसे गुणभेद करके बताया जा रहा है । जैसे आत्मा चित्स्वरूप है, बस बात समाप्त । इसके आगे अब गाड़ी नहीं चल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रही । इतने से तो कोई समझा नहीं, गाड़ी तो चलानी पड़ेगी अन्यथा तत्त्व ही न समझा जा पायगा । तो लो अब व्यवहारनयसे उस स्वभावमें भेद करके समझाया जा रहा है । जहाँ स्वभावमें भेद किया और भेद करके जो समझमें आया उसका नाम गुण है । देखो यह गुण समझाया तो गया भेददृष्टिसे, किन्तु असत्य नहीं है । जिस प्रकार बताया है उस प्रकारसे वस्तु तक पहुंचा जाता है । अगर कोई बात असत्य हो तो उसके सहारे सत्यपर कहाँ पहुंच जायेंगे, उस अखण्ड वस्तु तक कैसे पहुंच जायेंगे ? इसलिए एक स्वभावके भेद करके गुण बताये गए कि वे गुण भी अनादि अनन्त हैं ।

अब यहाँ द्रव्य और गुणोंकी परस्पर चर्चा है । द्रव्यके बिना गुण नहीं, गुणके बिना द्रव्य नहीं । जैसे कोई समझ लो पुद्गल द्रव्यका दृष्टान्त लो—पुद्गल परमाणुका लक्षण क्या है ? रूप, रस, गंध, स्पर्श । पुद्गलका लक्षण जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हो । पुद्गल द्रव्य न हो तो रूप, रस, गंध, स्पर्श कहाँसे होगा ? रूप, रस, गंध, स्पर्श न हो तो पुद्गलद्रव्य कहाँसे होगा ? और दृष्टान्त लो जीवद्रव्य और उसके गुण क्या हैं ? ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द वगैरह । अगर एक जीवपदार्थ नहीं है तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी कहाँसे हो ? अगर दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदिक नहीं हैं तो द्रव्य भी नहीं रह सकता । क्या है कोई ऐसा द्रव्य जो गुणरहित हो, जिसमें साधारण असाधारण कोई भी गुण न हो ? मायने न अस्तित्व है, न वस्तुत्व है, न द्रव्यत्व है न कोई असाधारण है । पदार्थ हो जाय तो कभी नहीं हो सकता । तो क्या निष्कर्ष निकला ? द्रव्यके बिना गुण सम्भव नहीं और गुणोंके बिना द्रव्य सम्भव नहीं । जैसे कोई फल खरीदा तो उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों हैं कि नहीं ? चारों हैं । फल न हो तो ये चारों हैं क्या ? नहीं हैं । ये चारों न हों और कोई ऐसा फल लाकर दिखाओ जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श कुछ न हो । चलो बाजारसे आज ऐसा कोई अनहोना फल लाकर दिखाओ । कैसा फल चाहिए, जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये कुछ न हों । ऐसा कोई आर्डर दे सकेगा ? हाँ दे सकेगा । ··· कंजूस (हँसी) तो द्रव्यके बिना गुण नहीं और गुणके बिना द्रव्य नहीं । तो द्रव्य गुण ये कोई ऐसे भिन्न-भिन्न नहीं हैं जो अलग-अलग पड़े हों । है बात एक ही तदात्मक है । गुणमय ही द्रव्य है, मगर अपेक्षा के वशसे उनमें भेद किए जाते हैं । तो भेद तो कर दिया कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदिक गुण हैं और द्रव्य बता दिया, पर उनका अस्तित्व तो एक ही है । ऐसा नहीं कि द्रव्य अलग सत् है, गुण अलग सत् है । इसलिए वास्तवमें द्रव्य और गुणमें भेद नहीं, किन्तु अभेद है ।

द्रव्य और गुणको स्वतंत्र-स्वतंत्र पदार्थकी मान्यताकी शोधना—उक्त वार्ताको सुनकर यह सोचा जा सकता है कि यह कैसे समझें कि द्रव्यके बिना गुण नहीं होते और गुणके बिना द्रव्य नहीं होते ? क्या कोई आदमी ऐसे भी हैं जो ऐसा मानते हों कि द्रव्यके बिना ही गुण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जाते हैं और गुणोंके बिना ही द्रव्य हो जाते हैं ? यहाँ गुण और द्रव्यका अर्थ धनका न लेना याने कमानेकी कुशलता हो तो उसे कह लो गुण और धन कमाये उसे कह लो द्रव्य, और उसकी पुष्टिमें कुछ एक उदाहरण लौकिक दे दो। 'सर्वेगुणाः कांचनमाश्रयन्ति ।' सारे गुण धन का आश्रय करते हैं, तो ये तो सब लौकिक मोहियोंकी बातें हैं। यहाँ गुणके मायने हैं पदार्थोंमें रहने वाली अनादि अनन्त शक्तियाँ और द्रव्यके मायने हैं एक अखण्ड वस्तु। देखो द्रव्यके बिना गुण नहीं होता और गुणके बिना द्रव्य नहीं होते। तो यह आशंका हुई ना कि क्या कोई लोग ऐसे भी होते जो द्रव्यके बिना ही गुण मान लेते। खाली गुण है द्रव्य कुछ नहीं, पदार्थ कुछ नहीं, और कोई ऐसे भी दार्शनिक हैं क्या कि जो गुणके बिना द्रव्य मान लें ? खाली द्रव्य है, पदार्थ है गुण आदिक कुछ नहीं। हाँ हैं ऐसे दार्शनिक जिनमें मुख्य है मीमांसक। उन्होंने ७ पदार्थ माने हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। ये ६ तो भावात्मक हैं और एक है अभाव नामका पदार्थ, जो अभावात्मक है। तो पदार्थ तो वह ही कहलाता जो स्वतंत्र है। कोई किसीके आधीन नहीं। तो द्रव्य, गुण ये स्वतंत्र हैं ना ? गुणकी सत्ता अलग है, द्रव्यकी सत्ता अलग है मीमांसकोंके यहाँ, पर वस्तुतः ऐसा है नहीं, फिर मानने क्यों लगे ऐसा ? भाई बुद्धि ही तो है, बुद्धि तो एकमें भी बहुत भेद कर देती है। जैसे एक पुद्गल द्रव्य है, उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श समझमें आ रहे हैं, रूप समझमें खूब आ रहा कि इस पुद्गलमें रूप है और बल्कि जिस समय रूप समझमें आ रहा, उस समय रस, गंध, स्पर्श ये समझमें नहीं आ रहे। दूर चीज है, भींत है, उसका रूप तो समझमें आ रहा, पर रस, गंध, स्पर्श ये समझमें नहीं आते। जब ऐसी स्थितियां होती हैं लोगोंकी तो क्यों न वे इस बात पर अड़ जायें कि रूप अलग चीज है, रस अलग चीज है, गंध अलग है, स्पर्श अलग है, वह भींत अलग है, ऐसा कोई मनचला सोच नहीं सकता क्या ? जब इन बातोंका जुदा-जुदा करके ज्ञान बन रहा है तो ऐसा सोचनेमें क्या दिक्कत ? तो भले ही सोच तो डालें वे, पर वास्तविकता नहीं समझे। अरे वह चीज एक ही है, आम एक ही है, उसका जब रसनाइन्द्रिय द्वारा परिचय किया तो रस समझमें आया, और घ्राण द्वारा परिचय किया तो गंध समझमें आया, छूकर समझा तो स्पर्श समझमें आया और देखकर समझा तो रूप समझमें आया, पर ये रूप, रस, गंध, स्पर्श अलग-अलग हों सो बात नहीं। आप कहेंगे कि हमें क्यों ज्यादा समझाते ? सब जानते हैं कि रूप, रस, गंध, स्पर्श अलग नहीं होते, एक ही आधार है, एक ही प्रदेश है वस्तुमें, पुद्गलमें, कहीं ऐसा नहीं है कि इस हिस्सेमें तो रूप है, इसमें रस है, क्या है ऐसा ? आमके एक हिस्सेमें रूप हो और आगे पीछे रस हो, क्या ऐसा है ? ऐसी बात नहीं है। जहाँ डंठल होता है ठीक उस जगह रस तो नहीं होता तब ही तो लोग उस आमको मसककर डंठल वाली जगहसे कुछ पानीसा निकाल देते हैं, फिर चूसते हैं। अरे तो उसमें मीठा रस नहीं है

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो न सही, मगर रस तो है। चाहे कैसा ही हो।

गुणोंमें भी गुणोंको स्वतंत्र-स्वतंत्र माननेकी मान्यताका शोधन—रूप, रस, गंध, स्पर्श पुद्गलोके उसी प्रदेशमें है चारोंके चारों, फिर क्यों अमझा रहे ? क्या कोई लोग ऐसे हैं कि रूप, रस, गंध, स्पर्शको एक जगह न मानते हों, अलग-अलग मानते हों और यहाँ परस्पर भिन्न-भिन्न हों, क्या कोई लोग हैं ऐसे ? हैं, तब ही तो समझाना पड़ता है, निरंशवादी, जिसका एक भेद बौद्ध भी है। निरंशवादियोंके सिद्धान्तमें यह बताया है कि रूप क्षण पूर्ण वस्तु है, किसीकी अपेक्षा नहीं करता। रस क्षण अलग वस्तु है, गंध क्षण अलग वस्तु है, स्पर्श क्षण अलग वस्तु है, और इतना ही नहीं, नीलक्षण, पीतक्षण, रक्तक्षण, रंगोंमें भी जितने भेद हैं वे इतने ही स्वतंत्र-स्वतंत्र अलग-अलग पदार्थ हैं। तब ही तो समझानेकी जरूरत पड़ती है कि ये रूप, रस आदिक भिन्न-भिन्न नहीं, किन्तु एक ही अखण्ड द्रव्यके गुण हैं, ऐसी ही बात जीवमें लगा लो। जीवमें ज्ञान, दर्शन, सुख दुःख, आनन्द ये क्या अलग-अलग हैं ? एक ही जगह हैं। कहीं उपाधिके सम्बन्धसे सुख दुःख हों, उपाधिका सम्बन्ध नहीं तो आनन्द हो गया। कैसे ही हो, चाहे विभाव हो, चाहे स्वभाव हो रहता, तो जीवके प्रदेशोंमें ही ना ? भिन्न-भिन्न कहाँ ? अच्छा तो कोई लोग हैं क्या ऐसे जो ज्ञानको अलग मानते हों, सुख दुःखको अलग मानते हों, आनन्द इच्छाको अलग मानते हो ? हाँ हैं। नैयायिक सिद्धान्त है ऐसा जो ये अलग-अलग चीज मानते हैं और भी हैं। जैनोंमें भी कुछ लोग ऐसे ही ख्याल के हो सकते हैं। तो बात यह बतलायी जा रही है कि जितने गुण हैं वे गुण अलग-अलग कुछ नहीं हैं, एक ही अस्तित्वमें हैं, एक ही आधारमें हैं, वह आधार है द्रव्यका। द्रव्यके बिना गुण नहीं और गुणके बिना द्रव्य नहीं, क्योंकि द्रव्य गुणोंमें अभिन्नताका भाव है। व्यतिरेक कुछ नहीं है, इसलिए द्रव्य गुणमें चूंकि ये अभिन्न सत्त्वसे निष्पन्न हैं, सत्ता इनकी न्यारी न्यारी नहीं है, इस कारण इनमें अभेद है। द्रव्य और गुण ये अभिन्न प्रदेशमें निष्पन्न हैं। द्रव्यके प्रदेश अलग, गुणके प्रदेश अलग, ऐसा नहीं है, इस कारणसे इनमें भिन्नता नहीं। द्रव्यका और गुणका एक ही काल है। जबसे द्रव्य है, जब तक द्रव्य है तब ही से गुण है, तब ही तक गुण है। सा शाश्वत एक क्षणकी भी लहुराई, जेठाई (छोटा, बड़ा) पन नहीं है। सब सहजात हैं, एक ही रूप है। तो एक ही कालमें इन सबका उत्पाद व्यय ध्रौव्य सब कुछ एक ही साथ एक ही प्रदेशमें होता है। इस कारण द्रव्य गुण अभिन्न है और एक ही स्वरूप है। तो यों द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे द्रव्य और गुणोंमें अभेद है। इस कारणसे ये भिन्न-भिन्न नहीं हैं। अच्छा, यह वस्तुतथ्य तो जाना जा रहा है, पर ऐसा सब कुछ जानकर हमको शिक्षा क्या मिलती है कि अपने आपके द्रव्यको देखो। मैं आत्मा द्रव्य हूं, निरन्तर परिणमता रहता हूं, अपना कोई स्वभाव रख रहा हूं, उस ही स्वभावमें इसमें परिणमन चल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा। उस स्वभावके भेद करें। अनन्त गुण हैं, उन गुणोंका, स्वभावका जो सही परिणमन होना चाहिए याने अपने आप अपने ही सत्त्वसे परकी अपेक्षा बिना, परके सम्बन्ध बिना जो उसकी हालत होनी चाहिए वह हालत है निर्विकार शुद्ध आत्मद्रव्य। जिसे कह लो सिद्ध भगवान। उनमें लगा लो द्रव्य गुण पर्याय, सब एक रस रहते हैं और वहाँ द्रव्य, गुण पर्याय का समझना कुछ कठिन है बनिस्वत हम आपके द्रव्य गुणपर्यायके। हम अपनी पर्यायमें जल्दी क्यों समझ लेते हैं कि हमारे ये सब उल्टे उल्टे हैं। देव, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, क्रोध, मान माया, लोभ, झट समझमें आ जाता है कि परिणम रहा है यह जीव। सिद्धकी बात नहीं समझमें आती जल्दी कि वे परिणम रहे हैं, क्योंकि वहाँ विषमता तो नहीं है। कोई दूसरी चीज डबल पड़ी हो किसी चीजमें, जैसे गेहूंमें चने मिले हैं तो बड़ी जल्दी समझमें आता है क्योंकि ये भिन्न चीज हैं। ये पड़े हैं, दूरसे ही देख लिया। तो वह भगवान एकरस हैं, द्रव्य गुण पर्याय सब एक तन्मय हैं, वह अवस्था प्राप्त है। वहाँ ही अनन्त आनन्द है। विषमता में लाभ नहीं तो वह चीज प्राप्त कैसे हो? वह शुद्धस्वरूप हमको कैसे मिल जाय? शुद्धका ध्यान करें तो शुद्धस्वरूप मिल जायगा। अशुद्धका ध्यान करेंगे तो अशुद्ध ही अशुद्ध बने रहेंगे।

शुद्ध अंतस्तत्त्वकी आराध्यता—जिसको शुद्ध बनाना है उसको जरूरत है कि शुद्धका ध्यान करे। अब देखो शुद्धका कहाँ ध्यान करना? जो अरहंत सिद्ध भगवान हैं वे शुद्ध हैं ना? उनका ध्यान करनेसे मिल जायगा क्या मोक्ष? आप लोग कहेंगे कि हाँ मिल जायगा मोक्ष, क्योंकि श्रद्धा बनी है ना, मगर न मिलेगा। देखिये यह बात सुनकर घबड़ाना नहीं। साक्षात् और परम्पराका भेद समझना है। जो अरहंत हैं, सिद्ध हैं वे परवस्तु हैं, उनके निर्विकारता होती रहती है। अब वहाँ ही तुम्हारी आँख गड़ी है, वे भगवान हैं, बल्कि स्थितिमें क्या किया तुमने कि अपने ज्ञानको अपनेसे हटाकर बहुत दूर ले जाकर उस सिद्ध क्षेत्रमें या उस दूसरी जगहमें तुमने ध्यान बनाया—वे हैं सिद्ध भगवान, वे हैं अरहंत, वे समवशरणमें हैं। देखो इसमें भी फर्क तो आया। अभी आपकी कोई बम्बईमें मानो दुकान है वहां ध्यान दो, वह है दुकान, तो जैसे वहां ध्यान दिया, वह है दुकान, ऐसे ही यहां ध्यान दिया कि वे हैं भगवान जो लोकके अन्तमें बिराजमान हैं तो एक सीमा तो बनी एक समान, मगर इन दोनोंमें अन्तर बहुत है। वह तो स्वरूपकी सुध दिलानेके काबिल रख रहा है वह अनुराग, शुद्ध आत्माका अनुराग। हमको शुद्ध आत्मद्रव्यमें प्रवेश करानेके काबिल बनाये रखे ऐसा है वह ध्यान, और जो दुकानके प्रति ध्यान बनाया, उसमें यह बात तो नहीं है। तो इन दोनों ध्यानोंमें अन्तर है। इससे कह सकते हैं कि अरहंत सिद्धका ध्यान परम्परया मोक्ष का कारण है। जब सिद्ध भगवानके स्वरूपका ध्यान करते हैं तो चूंकि उनका स्वरूप एकरस-

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम है। द्रव्य, गुण, पर्याय सर्व शुद्ध है तो वह ध्यान होनेसे तनिक जरा और दृढ़तासे ध्यान बने तो वह पराश्रय छूटकर अपने शुद्ध आत्मस्वरूपका भान हो जाता है तो आखिरमें निश्चय से सहारा किसका लिया गया ? निज शुद्ध आत्माका। इतनी बात सुनकर आप चौंक सकते हैं कि खुदमें कहाँ धरा शुद्ध द्रव्य। जिसका हम सहारा लें और बाहरमें अरहंत सिद्धके आत्मा में वह शुद्ध आत्मद्रव्य है। उसके लिए तुम कह रहे कि उसके विकल्पमें साक्षात् मुक्ति नहीं है और यहाँ शुद्ध आत्मद्रव्य नहीं है, रागद्वेष मोह भरा है, यहाँ सहारा लें कैसे ? तो भाई सुनो— शुद्ध आत्मद्रव्यके मायने यहाँ यह नहीं है कि जहाँ राग नहीं, द्वेष नहीं, मोह नहीं, पवित्रता है, निर्विकार दशा है उसे शुद्ध आत्मद्रव्य कहा जा रहा है। बड़ा ध्यान देनेकी बात है, किन्तु एकत्व, एकाकी, एक, अकेला आत्मा ही आत्मा यह ध्यानमें दो, इसका क्या मतलब ? उस आत्मद्रव्यके साथ कर्म न सोचें, विभाव न सोचें, नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव पर्याय न सोचें, औरकी बात तो दूर रहो, जो भीतर जानकारी, अवस्थायें होती हैं उनपर भी ध्यान न दें, उन सब विकल्पोंको हटावें। केवल एक आत्मतत्त्व, अब उसके साथ स्वभाव भी आयगा, स्वभाव बिना द्रव्य नहीं होता, स्वभावरूपमें ही द्रव्यका परिचय बनेगा, सो स्वभावमय जानो। शब्द नहीं हैं बतानेको, परन्तु करके जान लो। सारे बाहरी बातोंके ख्याल छोड़कर विश्रामसे जब आप अपनी ओर झुकते हुये आरामसे बैठोगे तो आ जायगा वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप। जिसकी ख्यातिके लिये सर्व विशुद्ध ज्ञानाधिकार बनाया गया समयसारमें उसे शुद्ध आत्मद्रव्यकी बात कह रहे हैं। कैसे मिले ? कैसे ज्ञानमें आये ? तो निर्विकल्प समाधिके बलसे, जो एक सहज परम आनन्दका अनुभव हुआ, प्रतीति हुई, उस समय किया हुआ सुसम्वेदन ज्ञान। ज्ञान अपने सहज ज्ञानस्वरूपको जान रहा है यह स्थिति है, उस ज्ञानस्थितिके द्वारा यह शुद्ध आत्मद्रव्य जाना जाता है। क्या रागद्वेषादिक भाव नहीं, विकल्प नहीं, शरीर नहीं ? अरे आँखें खुली तो हैं तो सही, अब नहीं है उसकी दृष्टिमें। और क्या है ? अनन्तआनंद, अनंतशक्ति, अनन्तज्ञान। इनसे भरा हुआ सहज अनन्त चतुष्टय निज एक शुद्ध जीवास्तिकाय नामक शुद्ध द्रव्य है उसे जानें, उसका मनमें ध्यान करें, वचनसे बोलें और उसके अनुसार चलें, यह है द्रव्यगुणकी अभिन्नताका ज्ञान करनेका काम।

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥१४॥

वस्तुके किसी भी एक धर्मको समझनेके लिये उद्यत होनेपर सप्तभंगोंका औचित्य— द्रव्यकी सिद्धिका प्रकरण चल रहा है। द्रव्यके विषयमें तीन लक्षणों द्वारा काफी प्रकाश दिया गया। द्रव्य सत् लक्षण वाला है, द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है, द्रव्य गुण पर्यायमय है, ऐसे परस्पर सहयोगी तीन लक्षणों द्वारा द्रव्यके स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है, और भली-भाँति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न्याय-विधिसे उस द्रव्यके अस्तित्वकी प्रसिद्धि की गई है। उस जाने हुए द्रव्यके विषयमें अब यहाँ सर्व अपेक्षाओंसे द्रव्यका परिचय कराया जा रहा है। जब कभी यह धर्म उपस्थित हो अस्ति अथवा नास्ति तो एक कोईसी भी बात चर्चाके लिए हो जाय तो उस एक बातके दिये जानेपर उसके भङ्ग ७ हो जाते हैं। उसका कारण यह है कि जो एक बात पेश की, जैसे द्रव्यके विषयमें द्रव्य अस्ति है, यह बात पेश की तो किसी अपेक्षासे ही तो यह बात रही, तो उसके विपक्ष नयसे यह जोड़ना पड़ेगा कि स्याद् नास्ति। अब एकके कहते ही दो तो हो ही गए। वस्तुके बारेमें कोई कुछ कहे एक तो वह और एक उसके खिलाफ, ऐसी दो बातें एकके कहते ही आ गईं। अब उन दो बातोंको एक साथ बोला न जा सकेगा, क्योंकि दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न हैं। उन दृष्टियोंका वाच्य भिन्न है, उन सबको एक निगाहसे एक बोला जाय इस कारण तीसरी बात भी आ जाती है कि अवक्तव्य है। तो सप्तभङ्गीमें पहले तीन भङ्ग ये हैं—स्याद-अस्ति, स्याद नास्ति और स्याद् अवक्तव्य। ऐसे तीन न जानना कि स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद अस्तिनास्ति। किन्तु तीन भङ्ग हैं—अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य। प्रसिद्धि यद्यपि लोगोंमें ऐसी है कि जब भङ्ग बोलेंगे तो पहले अस्ति, फिर नास्ति, फिर अस्तिनास्ति, लेकिन ऐसा प्रयोग करना क्रमरहित है। क्रम क्या है कि पहले इकहरे भङ्ग बताओ। तो इकहरे भङ्ग ये हैं अस्ति नास्ति और अवक्तव्य। अस्ति नास्ति तो संयोगी भङ्ग हैं, वह स्वतंत्र अकेला भङ्ग नहीं है। इसलिए पहले एक-एक भङ्ग बताना चाहिए, फिर दो-दो के संयोग वाले बताने चाहिएँ, फिर तीन-तीनके संयोग वाले कहने चाहिएँ। द्रव्यके बारेमें कहा जा रहा—द्रव्यं स्यात् अस्ति, याने द्रव्य कथञ्चित् है, कौनसी अपेक्षा आयी ? अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है। इस 'है' के कहते ही विपक्षकी बात आ जाती है। द्रव्यं स्यात् नास्ति, किसी अपेक्षासे नहीं है, किस अपेक्षासे नहीं है ? परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे नहीं है।

प्रस्तुत पक्ष और विपक्षका तथा अवक्तव्यताका एकत्व दर्शन—देखो हर एक चीजमें ये दो बातें अनिवार्य हैं कि नहीं ? मोटे रूपसे ही देख लो—जैसे कहा कि यह चौकी स्यात् अस्ति, चौकी किसी अपेक्षासे है, किस अपेक्षासे है ? चौकीमें जो द्रव्य है, क्षेत्र है, काल है, भाव है उसकी अपेक्षासे है, ऐसा कहते ही विपक्षकी बात भी आ जाती। चौकी स्यात् नास्ति, चौकी किसी अपेक्षासे नहीं है। किस अपेक्षासे नहीं है ? चौकीको छोड़कर बाकी जितने पदार्थ हैं भींत, दरी, आदमी वगैरा, इनके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नहीं है। बताओ चौकीमें ये दो बातें जरूर हैं कि नहीं ? चौकी अपने स्वरूपसे है दूसरेके स्वरूपसे नहीं है। यदि आप यह कहें कि हम दो नहीं मानते, एक मानते हैं तो भला कौनसा एक मानते ? दो बातें अभी रखी हैं। चौकी अपने स्वरूपसे है, दूसरी बात क्या कि चौकी अन्य चीजकी अपेक्षासे नहीं है। इन दो में से कौन-सी बात बोलते हो और किसको मना करते हो ?अगर कहो कि हम

http://sahjanandvarnishastra.org/

नास्तिकी बात मना करते हैं, सिर्फ एक ही बात कहेंगे कि चौकी स्यात् अस्ति तो मना किसे किया ? चौकी दरी चटाई भींत आदिकके स्वरूपसे नहीं है, इसको मना कर रहे, तो इसको मना करनेका अर्थ क्या हुआ कि चौकी दरी, चटाई, भींत आदिकके रूपसे है। नास्तिको मना करने का अर्थ क्या है ? अस्ति। तो जब चौकी, दरी, चटाई आदिकके स्वरूपसे हो गयी तो अब चौकी तो न रही। खतम हो गई चौकी। देखो नास्तित्वका भी कितना बल है ? पदार्थमें नास्तित्व धर्म है, उसका भी कितना महत्त्व है ? स्वरूप, वस्तुकी सत्ता बनी रहती है नास्तित्वके बलपर। जैसे अस्तित्त्वके बलपर पदार्थ है ऐसे ही नास्तित्त्वके बलपर भी पदार्थमें सत्ता है। तो मना तो नहीं किया जा सकता कि चौकी अन्य द्रव्योंके स्वरूपसे नहीं है, इस धर्मको कोई मना नहीं कर सकता। अच्छा अब कोई कहे कि हम पहली बातको मना कर देंगे। क्या थी पहली बात ? चौकी अपने स्वरूपसे है, लो इसको मना कर दिया तो इसका अर्थ क्या निकला कि चौकी अपने स्वरूपसे नहीं है। तो चौकी कहाँ रही ? सत्ता ही मिट गई। चर्चा किसकी करते ? तो अस्ति और नास्ति—ये दो धर्म हुए पदार्थमें। दो बातें लो सिद्ध हो गईं। ये स्वतंत्र बातें हैं। अब कोई प्रश्न करे कि तुमने ये दो बातें किस अपेक्षासे कहीं ? हम तो एक बारमें ही तुम्हारे मुखसे सुनना चाहते हैं कि पदार्थ कैसा है ? एक बारमें कह दो, देर मत करो। वस्तुका स्वरूप समझनेको हम बहुत तेज कमर कसकर आये हैं। हम धीरे धीरे न सुनना चाहेंगे। हमें तो एक बारमें बता दो कि पदार्थ कैसा है ? देर करके क्यों बताते ? पहले कहा—स्यात् अस्ति, फिर बताओगे स्यात् नास्ति। इतनी देरसे न कहो, एक बारमें बताओ कि द्रव्य क्या है ? तो भाई एक बात एक साथ कही ही नहीं जा सकती कि वस्तु क्या है ? इस कारण अवक्तव्य है। अब ये तीन धर्म हो गए, तीनकी अपेक्षा है। द्रव्य अपने स्वरूपसे है, द्रव्य परके स्वरूपसे नहीं है। द्रव्यमें दोनोंको एक साथ नहीं कहा जा सकता ऐसा अवक्तव्य है। ये तीन स्वतंत्र बातें हुई।

वस्तुमें संयोगी चार भंगोंका दिग्दर्शन—अब चलो—द्रव्य अपने स्वरूपसे है, ऐसा होने पर भी द्रव्य परस्वरूपसे नहीं है, यह भी एक अपेक्षा है, इसे कहेंगे स्यात् अस्ति नास्ति। द्रव्य अवक्तव्य होनेपर भी अपने स्वरूपसे है, इसे कहेंगे स्यात् अस्ति अवक्तव्य। द्रव्य अवक्तव्य होनेपर भी परके स्वरूपसे नहीं है—यह हुआ नास्ति अवक्तव्य। द्रव्य अवक्तव्य होने पर भी स्वरूपसे है, पर रूपसे नहीं है। कहीं सर्वथा अवक्तव्य मत समझ लेना अन्यथा सब चुपचाप बैठो। कुछ बात भी न बोली जा सकेगी क्योंकि अवक्तव्य है। तो इस तरह द्रव्यमें अस्तिधर्मके नातेसे ७ भङ्ग होते है। ऐसे ही और भी उदाहरणोंमें ले लो।

वस्तुके सभी धर्मोंमें स्याद्वादकी योजना—बताओ जीव नित्य है कि अनित्य ? जीव सदा रहता है ना ? जो सत् है वह कभी मिटता नहीं, जीव है वह मिटता नहीं, इसके मायने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं कि जीव नित्य है। किस दृष्टिसे कहा ? द्रव्यदृष्टिसे। जीव नित्य है, सदा है, अनादि अनन्त है। अच्छा देखो एक बात पहले बहुत बार आयी कि वस्तुमें द्रव्य और पर्याय ये दो बात मानना तो अनिवार्य ही है। गुणकी तुम्हारी मर्जी, उसमें तुम कल्पना नहीं करना चाहते तो मत करो, भेददृष्टि नहीं रखना चाहते तो मत बोलो, मगर पर्यायको मना नहीं कर सकते क्योंकि द्रव्यका स्वरूप ही है यह कि सदा रहता हुआ भी प्रति समय परिणमता रहता है। यदि ऐसा न हो तो पदार्थ है ही नहीं बन सकता। तो द्रव्य और पर्याय ये दो अनिवार्य हैं। तो जीवके बारेमें या किसी भी द्रव्यके बारेमें पूरा वर्णन द्रव्य और पर्याय दोनोंसे करेंगे तो कहलायगा। तो द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य है और पर्यायदृष्टिसे जीव नित्य नहीं है। ये दो बातें आयीं। स्यात् नित्यं अस्ति, स्यात् नित्यं नास्ति। नित्य है एक भङ्ग, अनित्य है दो भङ्ग। अब एक साथ एक बारमें बताओ कि कैसा है द्रव्य ? तो एक बारमें कहा नहीं जा सकता इस कारण अवक्तव्य है। तीन इकहरे भङ्ग हो गए। द्विसंयोगी भङ्ग, तीन और अपनी द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे अनित्य है, इन दो अपेक्षाओंको एक मूडमें लाकर रखा, इसलिए वह एक भङ्ग (चौथा) कहलाया। मूड (आशय) से भङ्ग बनता है। फिर अवक्तव्य होनेपर भी जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य है। यह ५ वां भङ्ग है। जीव अवक्तव्य होनेपर भी अनित्य है यह छठा भङ्ग हुआ। अब तीनोंका संयोगी भङ्ग। अवक्तव्य होने पर भी जीव द्रव्यसे नित्य है, पर्यायसे अनित्य है। ये ७ भङ्ग हो गए। देखो—सप्तभङ्गी व्यवहारकी मूल जड़ है। इन ७ दृष्टियोंसे वस्तुका परिचय करने पर पूरा द्रव्य बनता है। किसी आदमीके बारेमें सोचो, एक आदमीको लक्ष्यमें लेकर कहो। यह पुत्र है। है ना पुत्र ? पिताकी अपेक्षासे पुत्र है। स्यात् पुत्रः। अच्छा तो स्यात् पुत्रः, एक अपेक्षासे पुत्र नहीं है। किस अपेक्षासे? पुत्रकी अपेक्षासे पुत्र नहीं है, भाई आदिककी अपेक्षासे पुत्र नहीं है। पिताको छोड़कर बाकी सबकी अपेक्षासे पुत्र नहीं है। एक बारमें तो बताओ ? अवक्तव्य है यह पुरुष, जिसका हम परिचय करा रहे ? अवक्तव्य है और पुत्र भी है, अपुत्र भी है, पिताकी अपेक्षा पुत्र है और अपिताकी अपेक्षा अपुत्र है। और अवक्तव्य होने पर भी पुत्र है, अवक्तव्य होनेपर भी अपुत्र है। अवक्तव्य होने पर भी पुत्र और अपुत्र है। किसी भी जगह लो, मुखसे कुछ बोला कि उसमें ७ भङ्ग आ गए। यह सप्तभङ्गीका तत्त्वविज्ञान पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको कहता है और इस जीवको मोहसे बचाता है। एक बार कोई अजैन विद्वान जैन हो गया तो उसका लोग मजाक उड़ायें कि अब तो तुम सप्तभङ्गियोंमें मिल गए क्योंकि जैन लोग तो सप्तभङ्गियोंका शासन मानते हैं। तो वह विद्वान बोला कि भाई क्या बतायें ? मुझपर और आशयमें रहनेसे इतना मैल जम गया था कि ७ भङ्गियोंके बिना वह मैल दूर नहीं हो सकता। इसलिए हम सप्तभङ्गीमें हो गए। भङ्गके मायने क्या ? धर्म। ७ प्रकारके धर्मोंकी योजनाका नाम है सप्तभङ्गी।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सप्तभङ्गीके परिचयसे शिक्षण—सप्तभङ्गीके विज्ञानसे हमें क्या शिक्षा मिलती है ? भली प्रकार परख कर लेनेपर जो एक फल मिलता है किसी भी काममें. किसी भी पुरुषार्थका फल मिलता है, परमविश्राम मिलता है। लोकमें भी तो दुनियाके बहुत काम करके आप चाहते क्या हैं ? इकट्ठा पूरा आराम मिल जाय। अच्छा तो इसी प्रकारसे सप्तभङ्गों द्वारा पदार्थका खूब स्वरूप जानकर आपको चाहिए क्या ? परमविश्राम। वो कैसे मिलता ? भली-भाँति जीवका परिचय कर लो। परिचय करनेके बाद अपने आप ही यह विदित हो गया कि जीवमें सार तत्त्व है सहज चैतन्यस्वरूप। बस यह उपादेय है। कामकी बात अनेक परिश्रमोंके बाद मिली। जैसे कोई रोटी यों ही न खा लेगा। बहुत परिश्रमके बाद रोटी मिलेगी। पहले कमायी करेगा, फिर वह रोटी बनाने बैठेगा, बड़ा श्रम करेगा, और उसके बाद जब भोजन करने बैठता तो बहुत मौज और आरामसे हर्षित होता हुआ बैठता कि हमने अथक परिश्रम किया और अब उसका फल पा रहे हैं। तो ऐसे ही समझिये ज्ञानके क्षेत्रमें हमने नाना दृष्टियों से वस्तुका स्वरूप समझा तो इतना समझ करके अब हमें करना क्या है ? अपना जो सहज शुद्ध आत्मद्रव्य है उसमें रमण करना है यह फल है। सब चीजोंके भारी-भारी जाननेका क्या फल है उनका जानना छोड़ दो, आरामसे बैठो। वाह बहुत बढ़िया फल बताया। बहुत-बहुत जाननेके बाद द्रव्यसे, पर्यायसे, भेदसे, अभेदसे, स्वसे, परसे सारी बात समझ लेनेके बाद अब कह रहे कि जो कुछ तुमने समझा, जो तुमने विकल्प किया उनको छोड़ दो और उन विकल्पों से हटकर आरामसे बैठ जावो। तो कोई एक नया आदमी कह उठेगा कि आपने बहुत अच्छा कहा, इसीलिए तो हम कुछ जानना नहीं चाहते। कौन बहुत-बहुत पुस्तकें पढ़े, द्रव्यके भेद अभेद पढ़नेमें कौन दिमाग लगाये, क्योंकि आप ही तो कहते हो कि जाननेका फल है कि जानना छोड़ दो तो हम पहलेसे ही छोड़ रहे। लोग तो जिन्दगीभर परिश्रम करके जाननेके बाद छोड़ेंगे, हम अभीसे छोड़ रहे तो ऐसा छोड़ना काम न देगा, क्योंकि अज्ञान बसा है अज्ञानमें, विकल्प हट कैसे सकेगा ? तो सर्व अपेक्षाओंसे वस्तुका परिचय करके एक सारभूत जो एक निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यमात्र अंतस्तत्त्व है उसको दृष्टिमें लो, वह मैं हूं, इस प्रकारका प्रयत्न करके विश्राम लो, इसके लिए हैं बहुत-बहुत प्रकारकी जानकारियाँ।

द्रव्यपर्यायात्मक वस्तुमें द्रव्यदृष्टि व पर्यायदृष्टिसे भंगोंके निर्माणकी समीचीनता—देखिये—अनेकान्त होता है पक्ष और विपक्षकी दृष्टिसे। अब कुछ दिनोंसे ऐसा अनेकान्त चला दिया कुछ मनचले लोगोंने। कैसा यह है अनेकान्त ? पदार्थ नित्य है, पदार्थ अनित्य नहीं है ऐसा क्यों चलाना पड़ा कि जो हमने समझा उसकी हठ रह जाय, उसके विपक्षमें सिद्धि न बने। जैसे पर्याय सब नियत हैं, पर्यायें अनियत नहीं हैं। सुनो—यदि है और नहीं, इन दो शब्दोंने और लुभा दिया लोगोंको, पर हुआ कहाँ अनेकान्त ? अनेकान्त होता है द्रव्य औ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर्याय दो दृष्टियोंसे। वह तो एक ही दृष्टिकी बात रही। जैसे कहा जीव नित्य है, एक यह भङ्ग, दूसरा भङ्ग…जीव अनित्य नहीं है, तो भला यह बतलावो—किस दृष्टिसे जीव नित्य है? द्रव्यदृष्टिसे। और किस दृष्टिसे जीव अनित्य नहीं है? द्रव्यदृष्टिसे। एक वह दृष्टि जब आयी तो भङ्ग कहाँ बना? पुनरुक्त हो गया इसलिए स्याद्वादकी हँसी उड़ाना अज्ञानसे और दूसरेका पद फैलाना, यह तो बड़ा पाप है। जो सही बात है उसको छुपाकर अपनी प्रसिद्धिके लिए एक नये ढंगकी बात कहना, यह कोई ज्ञानीपनका काम नहीं है। जैसे घट घट है, घट पट आदिक नहीं है, तो इसमें दो दृष्टियाँ आ गईं—स्व और परकी दृष्टि, भिन्न दो दृष्टि। अगर यह कहो कि घट-घट है, अखण्ड नहीं है तो एक दृष्टि रहेगी, वहाँ दो दृष्टियाँ नहीं हैं—द्रव्य और पर्याय ये दो दृष्टियाँ चलती हैं। उनके आधारसे अनेकान्तकी सृष्टि हुई, क्योंकि इन दो को कभी छोड़ा नहीं जा सकता। पदार्थ द्रव्यपर्यायमय है। केवल द्रव्य द्रव्य ही नहीं है, पर्यायरहित नहीं है, और केवल पर्याय पर्याय ही नहीं है, द्रव्यरहित नहीं है। इसलिए इन दो दृष्टियोंके आधारसे भङ्ग बनाया जाय तो अनेकान्त बनेगा अन्यथा नहीं, क्योंकि और तरह तो सभी दार्शनिक अनेकान्ती हो गए। कैसे कि बौद्ध कहते हैं कि पदार्थ क्षणिक है तो दूसरा संग ले तो साथमें पदार्थ अक्षणिक नहीं है। उस पदार्थको अगर अनेकान्त एक माडर्न टाइपका बन गया तो उनका भी अनेकान्त कैसा? ब्रह्मवादी कहते हैं कि ब्रह्म अथवा सत्त्व कूटस्थ नित्य है, दूसरा भंग बना दो अनित्य नहीं है, वे भी अनेकान्ती हो गए, फिर तो कोई एकान्तवादी ही न रहा। एक ही दृष्टिकी बात अस्ति और नास्तिसे कही जाय तो कोई भी एकान्ती नहीं। इससे द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि—इन दोनों दृष्टियोंसे धर्मका निर्णय करना चाहिए। यहाँ तक बात क्या आयी? पदार्थ अनेकान्तात्मक है, अनेकान्त और स्याद्वादमें अन्तर क्या है? वैसे एक ही घरकी बातें हैं, इसलिए चाहे कभी किसी शब्दसे बोल दो, कुछ हर्ज नहीं। कभी पुरुष अपनी स्त्रीको बुलाये तो वह लड़का या लड़कीका नाम लेकर बुला लेता है, स्त्रीका नाम नहीं लेता और स्त्री पतिको बुलाती तो लड़केका नाम लेकर कहती है—ऐ फलाने, तो यह अपने घरकी बात है, किसीका भी नाम ले लो, बात ठीक है, तो इसी तरह जब एक ही बात की घोषणा है स्याद्वाद और अनेकान्त, तो कोई स्याद्वाद कहता है, कोई अनेकान्त, पर अन्तर यह है कि अनेकान्त तो वस्तुका नाम है और स्याद्वाद कथन शैलीका नाम है, यह अन्तर है, क्योंकि अनेकान्तका अर्थ है अनेकान्तः अस्मिन् स अन्तः, जिसमें अनेक धर्म हों उसे अनेकान्त कहते हैं। अनेकान्त क्या हुआ? पदार्थ सहित बुद्धि और स्याद्वाद क्या हुआ? स्या मायने अपेक्षासे व अपना कथन करना, अपेक्षासे कथन करना, इसका नाम है स्याद्वाद। तो स्याद्वाद द्वारा अनेकान्त वस्तुका परिचय होता है।

सर्व अपेक्षाओंसे विदित वस्तुमें भूतार्थताके परिचयकी सुविधा—देखो जब कोई बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब तरफसे समझ ली जाती है तो उसकी समझ दृढ़ हो जाती है। कोई आदमी आया आपके घरका अतिथि जो बड़े शहरमें रहता है, आपके घरके ६ रास्ते हैं, आते ही वह घर तो आ गया, मगर रास्तेका परिचय नहीं है, सो वह घरके पीछेके रास्तेसे आया तो वह वहीं डोलता रहेगा, कुछ न जान पायगा। सभी रास्तोंका, आपके मकानके सब ओरके रास्तोंका परिचय हो तो वह दृढ़ परिचय है। बनारसमें एक ब्राह्मण विद्वान् था। जैन न्याय पढ़ाते-पढ़ाते उसको जैनधर्मपर दृढ़ श्रद्धा हुई। तो उस ब्राह्मणके अनेक बिरादरीके लोग उसके पास आये और बोले—साहब आप यह क्या कर रहे? अपने कुलकी बात छोड़ रहे और जैनशासनकी महिमा आप बखानते रहते हैं, यह क्या है स्याद्वाद? स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य। एक पागलों जैसी बात इस धर्ममें कही गई है, कहीं संदेह मिटता ही नहीं, और वही संशय वाला धर्म आप अपना रहे, ऐसा आप क्यों कर रहे? तो वहाँ उस ब्राह्मण विद्वानने कहा तो कुछ नहीं। वह अपने घरकी फोटो ले आया। उसने पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण इन चारों दिशाओंसे अपने मकानका फोटो खिचवा रखा था। सबसे पहले पूरब दिशासे खींची गई फोटो दिखायी और पूछा कि बताओ यह किसका फोटो है? तो वे बिरादरीके लोग बोले—यह तो आपके मकानका फोटो है।···और यह दूसरी?····यह भी आपके मकानका ही फोटो है।····कैसे? ····यह मकानके पश्चिम दिशासे ली गई फोटो है, फिर तीसरी फोटो दिखाया तो फिर वही उत्तर दिया कि यह भी आपके मकानका फोटो है पर मकानकी उत्तर दिशासे ली गई फोटो है। चौथी फोटो दिखायी तो फिर वही उत्तर मिला—यह आपके मकानकी दक्षिण दिशासे ली गई फोटो है। तो वह ब्राह्मण बोला—बस यही उत्तर जैनशासनका है। जब द्रव्यदृष्टिसे फोटो लिया तो पदार्थ नित्य लगा, पर्यायदृष्टिसे फोटो लिया तो पदार्थ अनित्य लगा। तो तब वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक है। इस प्रकार दोनों दृष्टियोंसे परीक्षा करें तो वस्तुका परिचय होता है। पूर्ण परिचय करके अपनी सब पर्यायोंमें व्यापक अनादि अनंत अहेतुक अन्तः द्रव्यत्व का परिचय करें। इस आत्मपरिचयसे विशुद्ध आनंद जगता है।

भावस्य णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवये पकुव्वंति॥१५॥

सदुच्छेद व असदुत्पाद न होनेपर भी गुणपर्यायोंमें उत्पादव्ययका संदर्शन—इससे पहली १४ वीं गाथामें सप्तभङ्गीका वर्णन किया गया था। द्रव्य स्यात् अस्ति, स्यात नास्ति आदिक रूपसे बहुत विवेचन हुआ। उस विवेचनको सुनकर कोई दार्शनिक यह शंका रख सकता है कि कोई द्रव्य हो तब तो उसके बारेमें अस्ति नास्ति आदिक भङ्ग बनायें, पर कोई पहले से सत् नहीं है कि जिसकी बादमें अस्ति नास्तिकी बात कही जाय। जो उत्पन्न हुआ है वह पहले न था, एक अपूर्व नया ही बनता है। जो उत्पन्न हो चुका अब वह आगे नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

टिकता। आगे तो कोई नया बनेगा। तो असत्का ही उत्पाद होता है और सत्का विनाश होता है, ऐसा क्षणिक एकान्त मानने वाले कह रहे हैं। कुछ न था और हो गया, असत्का ही तो उत्पाद हुआ। असत्का उत्पाद हुआ तो वह सत् बन गया। अब उसका ही तो नाश हो गया। सर्वथा क्षणिक एकान्तमें सत्ता एक समयको ही रहती है, अगले समयमें पदार्थका विनाश है, उत्पन्न होनेसे पहले पदार्थ नहीं है, इस तरहसे जगतमें सब निष्पत्ति चल रही हैं, ऐसा सिद्धान्त मानने वाले यह आशंका रखते हैं कि जब असत्का उत्पाद है और सत्का विनाश है तो सप्तभङ्गी फिर कहाँ ठहरेगी ? इस ही आशंकाके उत्तरमें इस गाथाका अवतार हुआ। इस गाथामें यह कहा जा रहा है कि सत्का नाश नहीं होता, असत्का उत्पाद नहीं होता। किन्तु पदार्थ है और वह गुण अपने गुणकी पर्यायोंमें उत्पाद व्यय किया करता है। ऐसा तो कोई दार्शनिक नहीं मानता है। एक क्षणिकवादियोंको छोड़कर असत्का उत्पाद। एक भागवतगीता है, जिसके विषयमें बताते कि व्यास जी ने रचा तो वहाँ भी यह बात मानते कि "न सतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" याने जो है नहीं उसका सद्भाव नहीं होता और जो है, सत् है उसका कभी अभाव नहीं होता। क्या क्या है ? जैनशासनकी ही तो घोषणा है। पदार्थ है, अनादिसे अनन्तकाल तक। कहीं असत्का उत्पाद नहीं होता और जो पदार्थ है, अनन्तकाल तक रहेगा, सत्का विनाश नहीं है, किन्तु उस वस्तुमें गुणकी पर्यायें चलती रहती हैं, शक्तियोंके परिणमन चलते रहते हैं, शरीर ही में उत्पाद व्यय हुआ करते हैं, मूलभूत वस्तुमें उत्पाद व्यय नहीं होता, इसका स्पष्टीकरण यह है कि जो चीज है, जैसे एक जीव है, द्रव्य है, तो उसका द्रव्यरूपसे विनाश नहीं है। अर्थात् जीव द्रव्य ही न रहे ऐसा असंभव है, उसकी अवस्थाओंका ही विनाश है, वस्तुका विनाश नहीं और जीवद्रव्यके परिणमन चल रहे हैं, उत्पाद चल रहे हैं तो उन उत्पादोंमें कहीं अन्य द्रव्यका उत्पाद नहीं हो गया। वह जीवका ही उस प्रकारका परिणमन चल रहा है। तो जो द्रव्य है उसका विनाश नहीं और उत्पाद होनेपर किसी अन्य द्रव्यका उत्पाद नहीं होता। वस्तु है, अपने गुणोंमें उत्पाद व्यय करता है।

उदाहरणपूर्वक वस्तुकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताका दिग्दर्शन—जैसे एक अंगुली अभी सीधी है, अब टेढ़ी कर दी तो टेढ़ी कर देनेमें किसी चीजका नाश तो हुआ है, मगर अंगुली का नाश नहीं हुआ। अंगुलीका जो सीधा परिणमन हुआ, उस सीधे परिणमनरूप अवस्थाका नाश हुआ, अंगुलीका नाश नहीं हुआ। और जब अंगुली टेढ़ी कर दी गई तो वहाँ एक टेढ़ी अवस्थाका उत्पाद हुआ, कहीं अंगुलीको छोड़कर अन्य द्रव्य नहीं उत्पन्न हो गया, अंगुली ही रही। गुण पर्यायोंमें दृष्टान्त लो। एक आमके पेड़में लो—शुरू-शुरूमें वह नीला है, जब जरा बड़ा हुआ तो वह हरा हो गया, तो वहाँ आमका विनाश नहीं हुआ, और न आमको छोड़कर

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्य कुछ बन गया क्या ? हरा हो जानेसे जामुन बन जाय, केला बन जाय, ऐसा तो वहाँ नहीं दिखता और नीला मिट जानेसे आम मिट जाय, ऐसा तो नहीं है वहाँ। एक दृष्टान्त है यह स्थूल। ऐसे ही कोईसा भी पदार्थ उस पदार्थका परिणमन हुआ, नई अवस्था हुई। सो कहीं उस अवस्थामें पदार्थका उत्पाद नहीं हुआ, कोई नया पदार्थ नहीं बन गया और न उस पदार्थका विनाश हुआ। द्रव्य रह गया अनादि अनंत, उसकी अवस्थायें चलती रहती हैं, उनका उत्पादव्यय है। कैसा सीधा वस्तुका सुगम प्ररूपण है कि वहाँ कुछ युक्तियाँ नहीं बनानी पड़तीं, कुछ कृत्रिमता नहीं करनी पड़ती। जैसा है वैसा ही व्याख्यान किया गया। जैसे मिट्टीसे घड़ा बना तो घड़ेसे पहले क्या था ? वह एक पिण्ड था, उसका बना दिया घड़ा। तो मिट क्या गया ? लौंधा। तो अवस्था मिटी, कहीं मिट्टीका विनाश नहीं हुआ, और बना क्या ? घड़ा। तो घड़ा बननेसे कोई नया द्रव्य नहीं बन गया, किन्तु वह मिट्टी ही तो है जो पहलेसे सत् है। द्रव्यदृष्टिसे न उत्पाद है, न विनाश। जीव संसारमें रुल रहा। मनुष्यभव पाकर उस जीवने ऐसा पौरुष किया कि अपने आपके स्वरूपको देखनेमें, उसके श्रद्धानमें, उसमें रमनेमें उस जीव को मोक्षलाभ हो गया। तो संसारपर्यायका नाश हुआ और मुक्तिपर्यायका उत्पाद हुआ। नाश वहाँ जीवद्रव्यका नहीं हुआ कि संसारपर्याय मिट गई तो लो जीव ही मिट गया। मोही जन तो ऐसा विश्वास किए हुए हैं कि हमारा यह संग मिट गया तो मैं ही मिट गया, यह शरीर मिट गया तो मैं ही मिट गया और ये क्षणिक दार्शनिक यह कहते हैं कि वह मूलभूत पदार्थ ही मिट गया। पदार्थ तो एक समयको आता है, फिर रहता ही कहाँ ? ऐसा तो यहाँ नहीं हुआ। मुक्त पर्याय हो जानेपर संसारअवस्थाका तो विनाश है, संसारपर्यायका विनाश हो जानेपर मुक्तपर्यायका उत्पाद है। सो गुणपर्यायमें उत्पादव्यय होता है, कहीं जीवका नाश हो गया हो और जीवको देखकर अन्य कोई द्रव्य बंध गया हो मुक्त होनेपर ऐसा तो नहीं है। जो जीव था वही अब निरुपाधि हो गया, और जब ऐसा है कि द्रव्य अनादि अनन्त है और ऐसे प्रत्येक पदार्थ अनादि अनन्त हैं और उनमें परस्पर अत्यन्ताभाव है तथा निरन्तर पर्यायोंमें उत्पादव्यय किया करते हैं तो सप्तभङ्गी घटती गई। स्यात् अस्तिमें भी सप्तभङ्गी बन गयी, स्यात् नित्यकी भी सप्तभंगी हो गई, स्यात् अवक्तव्यकी भी सप्तभङ्गी हो गई। कैसा स्पष्ट पदार्थ का स्वरूप है। फिर वे दार्शनिक उन पदार्थोंमें जबरदस्ती कोई अपनी बात लाना चाहते हैं।

क्षणिकत्वैकान्तवादमें संवाद और प्रवर्तनका लोप—देखो वस्तु कथञ्चित नित्य है, कथञ्चित अनित्य है, ऐसा माने बिना कोई इस भवकी जिन्दगी चला सकता क्या ? दुकान, व्यवहार आदिक कोई कर सकता क्या ? मानो ऐसा एकान्त कर लिया कि जीव तो क्षण-क्षण में नया-नया बनता है और बना कि मिट गया, ऐसा मानने वाले दुकान चला लेंगे क्या अपनी ? भोजन भी खा सकेंगे क्या ? अरे जीव क्षणभरको हुआ और मिट गया तो धर्म कौन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करे ? कौन प्रवृत्ति करे ? एक समय आत्मलाभका है, दूसरा समय कुछ काम करनेको था सो दूसरे समय तो रहता नहीं तो कोई काम ही नहीं कर सकता, और फिर मान लो कोई कहे कि काम कोई नहीं कर सकता, मगर जो नया आत्मा पैदा हुआ और उस सिलसिलेमें जिस धारामें वह पैदा हुआ तो पूर्व जीवोंका संस्कार रहता है, इसलिए आगे-आगेका जीव अपना व्यवहार बनाता रहता है। जैसे कोई अफसर स्थगित कर दिया गया तो वह दूसरेको चार्ज सम्हाल देता है, ऐसे ही क्षणिकवादी कहते हैं कि आत्मा तो एक समयमें उत्पन्न हुआ और मर गया, मगर वह अपना सर्वस्व एक नये आत्माको सौंप देता है। तरकीब तो अच्छी दृढ़ निकाली, मगर यह न सोचा कि उस नये आत्माको अपना ज्ञान दे गया वह ताकि नया आत्मा पहली बातका स्मरण करता रहे तो आत्माको तो वह नया आत्मा अत्यन्त निराला है, अन्य-अन्य है तो और शरीरमें उत्पन्न होने वाले आत्माको क्यों नहीं सौंप जाता यह ज्ञान ? उसी शरीरमें होने वाले आत्माको ही क्यों सौंपा ? और सौंपता क्या ? वह तो हुआ और गुजर गया। सौंपनेको समय ही कहाँ मिला ? कोई प्रवृत्ति नहीं हो सकती। तब ही तो एक कथा बहुत प्रसिद्ध है कि एक क्षणिकवादी सेठकी गाय एक ग्वाला चराने ले जाया करता था। उस ग्वालेने खूब चराया। जब महीना पूरा हो गया तो वह ग्वाला सेठके पास जाकर कहता है कि मालिक हमारी चराई दीजिए, हमारा महीना पूरा हो गया। तो वह क्षणिकवादी सेठ कहता है अरे काहेकी चराई ? देखो जिसने तुमको गाय चरानेको दी थी वह अब नहीं रहा और जिसको गाय चरानेको दी थी वह भी नहीं रहा, पैसेका क्या सवाल ? तो ग्वाला अपना मुख लेकर चला आया। अब वह सोचने लगा कि सेठसे कैसे पैसे वसूल किए जायें ? उसकी समझ में आ गया। दूसरे दिन उसने गायको अपने घर बाँध लिया, सेठके घर न भेजा। तो अब सेठको चिन्ता हुई, वह पहुंचा ग्वालेके घर, ग्वालेसे पूछा—अरे भाई तुमने गाय हमारे घर क्यों नहीं भेजी ? तो ग्वाला बोला—देखो सेठजी ! जिसने गाय दी थी वह अब नहीं रहा और जिसने गाय चरानेको ली थी वह भी अब नहीं रहा, तो गाय लेने-देनेका क्या सवाल ? सेठने माफी मांगी, अपनी भूलपर पछताया। जब ग्वालेको चराई दी तब गाय वापिस पायी। तो पदार्थको द्रव्यदृष्टिसे नित्य और पर्यायदृष्टिसे अनित्य न माननेपर व्यवहार नहीं चल सकता।

नित्यत्वैकान्तवादमें भी संवाद और प्रवर्तनका लोप—जो लोग नित्य एकान्तवादी हैं, वस्तु है और ज्योंकी त्यों रहती है, वस्तुमें परिणमन नहीं होता, ऐसा कूटस्थ नित्य कहने वाले भी कुछ नहीं कर सकते। रोजिगार क्या करें ? कौन करे ? परिणमन तो होता ही नहीं। कौन खाये पिये ? परिणमन तो होता ही नहीं। सर्वथा नित्यमें व्यवहार नहीं, सर्वथा अनित्यमें व्यवहार नहीं। व्यवहार धर्म वाले भी मुक्ति नहीं पा सकते और सर्वथा अनित्य मानने वाले भी मुक्ति नहीं पा सकते। जीव है वह उपाधिके संसर्गमें, मलिन अवस्थामें है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपाधिके अभावमें उसकी पवित्र अवस्था हो जाती है। चीज वही रही, वस्तु वही रहा, जीव वही रहा, ऐसी जीवद्रव्यकी बात है। सभी द्रव्योंकी बात ऐसी है। दृष्टान्तमें जीव ले लो। जीवद्रव्यमें प्रति समय पर्यायें बनती रहती हैं और नवीन पर्याय बननेके मायने यह नहीं हैं कि जीवातिरिक्त अन्य कुछ द्रव्य बन गया हो और पुरानी पर्याय मिटनेके मायने यह नहीं हैं कि जीवद्रव्य ही खतम हो गया। अपने आपपर घटित करो—मैं द्रव्यदृष्टिसे नित्य हूं, सदा काल रहने वाला हूं। लगता भी यह ही है। बचपनमें भी हम थे, जवानीमें भी हम थे, बुढ़ापेमें भी हम ही हैं। इससे पहले भवमें भी हम थे, तो हमारा उत्पाद होनेकी तो जरूरत क्या? विनाश कभी हो सकता नहीं। हम न हों तो उत्पादकी जरूरत समझें। हम सत् हैं, उत्पादकी क्या वहाँ बात? और जिस जिसका भी उत्पाद होता है, कहीं कोई अपूर्व चीज नहीं उत्पन्न होती। जो है उसकी ही एक दशा नई बन गई। इस तरह जो भाव है, द्रव्य है, वस्तु है उसका तो नाश नहीं है और जो है नहीं उसका उत्पाद नहीं है। पर उत्पाद व्यय चल तो रहा है, वह सब गुण पर्यायोंमें चल रहा है।

दृष्टान्तपूर्वक स्थायित्व और सर्गसंहारका परिचय—एक दृष्टान्त और लो—गायका दूध ले लो, उसे क्या बोलते? गोरस। दूधका दही बन गया तो भी वह गोरस ही तो रहा, अर्थात् दूधका दही बन गया तो कहीं गोरस नहीं मिट गया याने दूध मिट गया उसके मायने यह नहीं कि गोरस मिट गया। और दही बन गया तो इसके मायने यह नहीं कि वह और कुछ बन गया, गोरस न रहा, किन्तु अन्य कुछ बन गया, ऐसा नहीं है और उन दोनों अवस्थाओंमें गोरसपनेका ध्रौव्य है। ऐसी ही हमारी बात है। लोग क्यों घबड़ा जाते कि उनको द्रव्यदृष्टिसे अपने सहज सत्त्वका परिचय नहीं है। हाय मैं मिट गया, यह मिट गया, यह मोहकी दुनिया, यह कितनी विडम्बना है, उसमें कितनी आपत्तियाँ भरी हैं? रंच भी मोह इस जीव को बरबाद करने वाला है। कोई कहे कि हमको दुनियामें किसीसे मोह नहीं रहा, सिर्फ एक बच्चेसे या एक अपनी स्त्रीसे मोह है, बाकी अनन्त जीवोंके प्रति हमारा मोह खतम हो गया है। सो देखो बहुत सम्यक्त्व तो मेरे पैदा हो गया, क्योंकि अन्य किसी जीवमें हमको ममता नहीं है। हममें ९९ प्रतिशत सम्यक्त्व तो पैदा हो गया है, सिर्फ एक प्रतिशत सम्यक्त्व होना हममें बाकी रह गया है, क्योंकि हममें सिर्फ एक स्त्री भरका मोह रह गया है, तो उसका यह कहना मिथ्यात्व है। अरे एक भी प्राणीमें ममता है तो वहाँ सारा मोक्षमार्ग ढक गया। अब तो वह धर्मके मार्गमें चलने वाला ही न रहा। धर्मकी धुनमें लोग काम तो बहुत-बहुत कर डालते, पर जो असली बात है मोह मिटना सो धर्म है इसको गौण क्या करते? इसका उद्देश्य ही नहीं है कि धर्म इसमें मिलता है। व्रत कर लिया, दशलक्षण कर रहे, सोलहकारण कर रहे, उपवास चल रहे, शुद्ध धोती पहिनकर खा रहे, कोई छुवे नहीं, बस वहाँ तो याद है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि हम धर्म कर रहे, पर यह याद भी नहीं रखता, इस ओर दृष्टि भी नहीं जाती कि धर्म तो मोहके विनाशका नाम है सो हमने वह कितना विनाश कर पाया ? और कोई तत्त्वज्ञान उत्पन्न करके मोहका विनाश करे और वह न कर पाये व्रत, तपश्चरण तो उसका मोक्षमार्गमें नाम तो आ ही गया। धर्म करनेकी चाह है। तो पहली बात यह मानो कि मेरा किसी भी प्राणी में मोह मत जगे। अरे छोड़ना तो है ही सब। रहेगा तो कुछ नहीं, पर यहाँ ज्ञानबलसे सही बात विचारकर छोड़ दें तो यहाँ आत्मानुभव करते रहेंगे, वह सत्य आनंद तो मिलता रहेगा। मोहके त्यागमें धर्म है और उसकी अपनेमें परख कर लें। अगर आपका धन आपके परिजनों पर ही खर्च हो पाता है, आपके ममताके साधनोंमें ही खर्च हो पाता है, अन्यके लिए एक पैसेकी भी गुंजाइश नहीं, इतना कठिन जिसके जड़ वैभवोंमें लगाव है उसे आप क्या कहेंगे ? मोही ही कहेंगे ना, धर्मात्मा तो न कहेंगे। मोहका त्याग करे तो धर्म है। मोहका विलास बनाये तो धर्म नहीं। चाहे ऊँचेसे भी ऊँचे कठिन तपश्चरण कोई कर ले, पर यदि मोह है तो वहाँ धर्म नहीं।

सकलसंकटमूल मोहके विनाशका उपाय—अब जीवोंमें मोह न रहे, इसके लिए उपाय क्या है ? मोह नाम किसका ? दो या अनेक वस्तुओंमें परस्पर भिन्नताका बोध न रहे और इसका यह कुछ है, ऐसा अज्ञान रहे उसे कहते हैं मोह। तो मोह मिटाना है तो क्या करना है ? ऐसा ज्ञान जगाना कि जिस ज्ञानमें यह स्पष्ट जंचे कि मेरा कहीं कुछ नहीं। अकिंचनोहं। मैं केवल अपने ही चैतन्यप्रकाशमात्र हूं। ज्ञानी और अज्ञानीकी पटरी नहीं बैठती, क्योंकि ज्ञानी तो मोक्षका त्याग करता है। बच्चोंमें भी मोह नहीं, वैभवमें भी मोह नहीं, और अज्ञानी लोग यों देखते कि यह पागल हो रहा क्या ? न घर सम्हालता, न बच्चोंको देखता और अह-निश अपनी धुनमें मस्त रहता है। तो मोहियोंकी और निर्मोहीकी कहाँ पटरी बैठी ? निर्मोही की प्रक्रिया अलौकिक है और मोहियोंकी प्रक्रिया संसारमें रुलनेकी है। पर जो इतना विजीप है कि जिसको यह चाह न रही कि लोग हमारी प्रशंसा करें वह पुरुष ज्ञानी है और वह अपनी अन्तर्धुनमें रहकर अपना कल्याण कर लेता है। दुनियाके ये लोग मेरे प्रभु हैं क्या ? जो ऐसी आशा लगायें कि ये तो मुझे अच्छा समझें, ये तो मेरे हृदयके गुण समझें, क्या पड़ी है ? कोई प्रभु हैं क्या मेरे, जो भविष्यको सुधार दें या बिगाड़ दें ? तो अन्य द्रव्यसे हमारा क्या सम्बंध है ? आया है इस जीवमें और परिणम गया है कुछ ज्ञान साधन तो इसका सदुपयोग बनायें। मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूं। श्रद्धा बनायें, पकड़ें अपने अन्तःनाथको। मैं सहज ज्ञानमात्र हूं, अन्य कुछ नहीं हूं। दूसरेकी चिंता रखनेसे कहीं उसका पालन नहीं होता, दूसरेकी उपेक्षा रखनेसे कहीं उसका विनाश नहीं हो जाता। दूसरेका अच्छा होना, बुरा होना, यह सब उसकी क्रिया पर-निर्भर है। तो जब वस्तुका ऐसा अलौकिक स्वरूप है, पृथक् हैं परस्पर तो बस यह ज्ञान

http://sahjanandvarnishastra.org/

जहाँ जगा वहाँ मोह नहीं ठहरता। मोहमें कायरता जगती है। अपने भीतरी दिलको तौल लो। मोहमें अपना विघात है। मोह दूर हुआ कि निराकुलता रहती है। यह मोह मिटता है तत्त्वज्ञानसे, पदार्थोंके स्वरूपके निर्णयसे। एक पदार्थका दूसरा कुछ भी नहीं लगता। बिल्कुल स्पष्ट बात है, सामने है। जब एकका दूसरा कुछ नहीं है, ऐसा दिखेगा तो यह परसे कुछ न चाहेगा, और परमें कुछ करनेके लिए कमर न कसेगा। सहज वृत्ति बने, इतना साहस अन्तः जगे तो इस जीवका उद्धार हो सकता है। केवल एक साधारण ऊपरी मन, वचन, कायकी चेष्टा करनेमें धर्म नहीं। जहाँ धर्म है वहाँ उसका मधुर फल अवश्य मिलेगा—शान्तिलाभ। ऐसी ही एक अलौकिक शान्त दशा पानेके लिए वस्तुस्वरूपका निर्णय चल रहा। वस्तु वहीका वही अनादि अनन्त है और उसका पर्यायोंमें उत्पाद और व्यय हुआ करता है।

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ॥१६॥

सर्व बाधाओंको दूर करनेका उपाय अन्तस्तत्त्वका परिचय—सर्व बाधाओंको दूर करनेका उपाय सिवाय तत्त्वज्ञानके, सिवाय तत्त्वदृष्टिके अन्य कुछ न किसीके हुआ और न कभी अन्य हो सकेगा। जीव यदि एक अपने आपके स्वरूपको ही निरख ले और यहाँ ही संतुष्ट हो सके तो वह कृतार्थ है। केवल एक मोहबुद्धि ही है जो किसी परपदार्थके सम्बंधसे अपने आपको यह जीव सुखी शान्त समझता है। वह केवल भ्रम है, जिसका फल बुरा होता है। तो चाहिए यह कि सब तरफसे ध्यान हटकर आत्माका जो सहज चैतन्यस्वरूप है, यही मेरा सर्वस्व है, इस ही में सदा रहना है और अपने स्वरूपके अनुसार दृष्टि बन गई तो पवित्रता हो जाती है और सारे संकट दूर हो जाते हैं। वह तत्त्वज्ञान क्या है? तत्त्व क्या है, उसके विषयमें सब वर्णन चल रहा है। तत्त्व वह है जो सत् है अर्थात् पदार्थ, जिसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता है, जो गुण पर्यायोंमें तन्मय है, अपने स्वरूपसे है, अन्य सबके रूपसे कतई नहीं है, ऐसा अन्य सबसे निराला स्वयं कोई एक याने प्रत्येक पदार्थ तत्त्व है। मैं भी एक पदार्थ हूं, अपने स्वरूपसे हूं, अन्य अनन्तानन्त जीवोंसे जुदा हूं, समस्त पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, कालसे जुदा एक अमूर्त शुद्ध चैतन्यस्वरूप यह मैं आत्मा अपने लिए सर्वस्व हूं। अपनेमें आत्मा की पहिचान करना है—मैं क्या हूं?

पदार्थव्यक्तित्वका परिचय—पदार्थकी पहिचान बनती है, उसकी शक्ति जानें, उसकी अवस्था जानें। दो परिचयोंसे पदार्थका परिचय होता है। तो आत्माका स्वरूप बतला रहे हैं कि आत्मामें गुण क्या है और आत्माकी पर्यायोंका क्या हुआ करता है, इन दो बातोंका इस गाथामें प्रतिपादन है। लोकमें समस्त पदार्थ ६ जातिके हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। अन्य दार्शनिकोंने बहुत कोशिश की यह समझनेकी, बतानेकी कि सारे पदार्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कितने होते हैं, मगर किस कुञ्जीसे इसका उत्तर मिलता है उस कुञ्जीको छोड़ देनेसे पदार्थोंकी संख्या अथवा नाम सही नहीं कर सकता। कुञ्जी यह है कि एक परिणमन जितनेमें पूरेमें हो और जिससे बाहर न हो वह एक पदार्थ कहलाता है। याने एक पदार्थकी अवस्था जो भी बने वह उस पदार्थकी एक देशमें न बनेगी, पूरेमें बनेगी। अगर एक देशमें बने तो समझो वह एक पदार्थ नहीं है, अनेक पदार्थ है। जैसे चौकीका खूंट काट डाला या आग लग गई तो सारी चौकी तो नहीं जलती। तो वह चौकी एक चीज नहीं है। वह अनन्तपरमाणुओंका समूह है, सो कुछ जल गई, कुछ नहीं जल रही। अगर एक चीज हो तो जो भी अवस्था बनेगी, वह पूरेमें बनेगी, आधेमें न बनेगी। यह एक पदार्थकी पहिचान है और वह अवस्था उस एकके प्रदेशसे बाहर न रहेगी। यह एक पदार्थकी पहिचानका उपाय है। यह तो हुई व्यक्तिगत बात। अब ऐसे पदार्थ अनन्तानन्त हैं।

पदार्थोंकी जातिका परिचय—सर्व पदार्थोंमें अब जातिकी बात देखो—जिस रूपसे जितने पदार्थ पूरे एक समान हों, जरा भी अन्तर न आये तो वे एक जातिके पदार्थ कहलाते हैं। मगर और बातमें पूरे समान हैं केवल एक बातमें फर्क है तो भी वे ६ जातिके पदार्थ न होंगे। वह जाति न्यारी हो जायगी। जैसे जीव एक जाति है, इसमें कितने जीव आ गए? अनन्त। सिद्ध महाराज भी, निगोदिया जीव भी, अन्य संसारी जीव भी, अरहंत भगवान, सब एक जातिमें आ गए, उनमें जरा भी फर्क नहीं। भव्य और अभव्य जीवमें फर्क नहीं है। उसकी योग्यता, पर्याय, होनहार, इनका भेद पड़ गया, मगर जीवका जो निजमें स्वरूप है उस स्वरूपकी दृष्टिसे भव्य और अभव्यके भेद न पड़ेंगे। अगर भव्य जीव बिल्कुल अन्य जातिके हों और अभव्य जीव अन्य जातिके हों तो पदार्थ ६ प्रकारके न कहकर ७ प्रकारके कहे जाते। इस जीवमें भव्य अभव्यका भी अन्तर नहीं स्वरूपदृष्टिसे। चाहे वह कभी मुक्त न जा सके, मगर स्वरूप चेतन है और वह सबमें एक समान है। शक्ति, ज्ञान, दर्शन आदिक सब जीवोंमें एक समान हैं। भव्यमें भी उतनी ही शक्तियाँ हैं, अभव्यमें भी उतनी ही शक्तियाँ हैं। फर्क शक्तिकी व्यक्ति होनेकी शक्तिमें है याने जिसमें आत्मशक्ति व्यक्त न हो सके उसे अभव्य कहते हैं, जिसमें आत्मशक्ति व्यक्त हो उसे भव्य कहते हैं, मगर शक्तियाँ सबमें एक समान हैं। अगर एकसमान शक्तियाँ न होतीं तो भव्य जीवके केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण ये कर्म होनेकी जरूरत भी न थी, क्योंकि केवलज्ञानकी शक्ति ही नहीं है अभव्यमें तो केवलज्ञानावरण किस-लिए? तो अभव्यमें भी केवलज्ञानकी शक्ति है और उसका आवरण करने वाला केवलज्ञाना-वरण सदा रहेगा। यह अन्तर तो है, मगर स्वरूपमें शक्तिमें भेद नहीं है। तो एक जीव जाति है जिसमें अनन्तानन्त जीव आये। पुद्गल जाति याने कुछ पदार्थ ऐसे हैं कि मिलकर एक पिण्ड बन जायें और बिछुड़ भी जायें। ऐसी कला केवल पुद्गलमें नहीं है। जीव जीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परस्पर मिल नहीं सकते । धर्म अधर्म कोई भी पदार्थ नहीं मिलते । यहाँ तक कि जीव और पुद्गल भी परस्परमें मिलकर पिण्ड नहीं होते । पुद्गल पुद्गल ही मिलकर पिण्ड बन जायें और बिखरकर परमाणु एक रह जाय, ऐसी कला जिन पदार्थोंमें है उनका नाम है पुद्गल । पूरण और गलन—यह प्रकृति जिसमें पायी जाय उसे पुद्गल कहते हैं । पुद्गल जातिमें अनन्तानन्त पदार्थ हैं, जीवसे भी अनन्तानन्तगुणे पदार्थ हैं, क्योंकि सिद्धसे अनन्तगुणे हैं संसारी जीव और एक एक संसारी जीवके साथ अनन्त परमाणुओंका शरीर लगा है, कर्म लगे हैं, तो एक जीवके साथ ही अनन्त परमाणु हैं, फिर अनन्तानन्त जीवोंके साथ कितने हैं ? तो जीवोंसे अनन्तानन्त गुणे पुद्गल द्रव्य हैं । धर्मद्रव्य एक है उसमें एक यह ही कला है कि जीव पुद्गल चल सकते हैं एक जगह । यह तो एक निमित्तनैमित्तिक योगकी बात है । जैसे पानी हो तो उसमें मछली चल सकती है. ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है । तो इस लोकमें धर्मद्रव्य एक है, जिसके होने से ये जीव पुद्गल चल सकते हैं । अधर्मद्रव्य एक है जिसके होनेसे चलता हुआ जीव पुद्गल रुक सकता है । कोई भी काम एक हो रहा हो और उसके खिलाफ कोई दूसरा काम हो तो कोई बाह्य निमित्त होता है तब होता है । अगर बाह्य कारण न हों तो जो परिणमन चल रहा वही वही परिणमन एक समान चलता रहेगा । जीव पुद्गल चलते रहें और चलते हुएमें रुक सके तो इसमें भी कोई कारण है । एक साधारण सहयोग, उसे कहते हैं अधर्मद्रव्य । आकाश अमूर्त है और जहाँ सब पदार्थ ठहर सकते हैं । कालद्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु अवस्थित है और वह वहीं रहता हुआ समय-समय पर्यायके रूपसे परिणमन करता है । जिसे कहते हैं बर्तना । उसी बर्तनाका स्थूल रूप मिनट घड़ी घंटा सेकेण्ड आदिक बन जाते हैं । ऐसे लोकमें ६ जातिके पदार्थ हैं, उन सब पदार्थोंमें शक्तियाँ क्या हैं और उनकी अवस्थायें कैसे बनती हैं, यह बात जाननेकी होती है, क्योंकि पदार्थमें शक्ति और पर्याय ये स्पष्ट समझमें आये तो यह सुगमतया भान रहेगा—एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य कुछ भी नहीं लगता । भेदविज्ञान पानेके लिए पदार्थोंका स्वरूप जानना अत्यन्त आवश्यक है ।

जीवके गुण व पर्यायोंकी चर्चनीयता—जीवके विषयमें इस गाथामें गुणपर्यायोंका जिक्र है । जीवके गुण हैं चेतन और उपयोग । ये दो बातें कही गई हैं—चेतना और उपयोग । कहीं दो लक्षण नहीं हैं अलग अलग कि किसी जीवमें चेतना लक्षण हो, किसी जीवमें उपयोग लक्षण हो, मगर ये दो बातें बतानेका कोई रहस्य है । चेतनाका अर्थ है चेतना, अपने आप को चेतना, यह ही एक मात्र दृष्टि है । अब अपने आपको यह जीव अगर सही रूपमें चेतता है तो उसे कहते हैं ज्ञानचेतना । अगर कोई जीव अपने आपको किसी बाहरी पदार्थ, बाहरी भावके कर्ता रूपमें चेतता है कि मैं इसका करने वाला हूं तो वह कहलाया कर्मचेतना । कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीव कर्मफलके रूपसे अपनेको चेतता हो—मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, मैं आनन्द भोग रहा हूं, मैं सुख भाग रहा हूँ, किसी भी प्रकार भोगनेकी बात अपने आपमें लगायें तो वह कर्मफल चेतना है। तो चेतना भेद बताकर तो यह बात दर्शायी गई कि जीव अपनेको चेतते हैं। अब कैसे चेतते हैं, इसकी विशेषतापर संसार और मोक्षमार्गकी बात है। अपनेको मैं शुद्धज्ञानमात्र हूं। केवल ज्ञानात्मक जानन हो यह ही तो कर्तापन है। एक जानन रहे, यह ही भोक्तापन है। ज्ञानके इन परिणामोंके अतिरिक्त मेरेमें और कुछ कर्ताभोक्तापन नहीं है, ऐसी चेतनाकी दृष्टिसे जीवका गुण चेतना कहा है और उपयोग एक बाह्य विस्तार समझनेके लिए कि यह जीव क्या क्या जानता है, कहाँ कहाँ उपयोग चलता है, फिरता है, यह बाहरी विस्तार समझनेके लिए उपयोग गुण बताया गया है। जैसे उपयोग गुणकी कितनी ज्ञानपर्यायें हैं ? भेद और चार दर्शन पर्यायें हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, ये तो अपूर्ण हैं मगर समीचीन हैं। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये मिथ्या हैं, फिर भी ये सातोंके ही सातों ज्ञान अशुद्ध कहलाते हैं, क्योंकि कर्मका क्षयोपशम साथ है। कर्मका आवरण लगा हुआ है इस ज्ञानीके साथ, ऐसी दशामें ज्ञान हुए हैं, इस कारण ये ज्ञान अशुद्ध कहलाते हैं। शुद्ध तो एक केवलज्ञान है, क्योंकि कर्मका अभाव हो गया। ज्ञानावरण कर्म रहा नहीं, इस कारण वह ज्ञान तो शुद्ध पर्याय है, शुद्ध दशा है, बाकी ७ ज्ञान अशुद्ध हैं। उन अशुद्धमें भी दो भेद पड़ते हैं। अशुद्ध होते हुए भी सही, अशुद्ध लेते हुए मिथ्या, ऐसे ८ प्रकारके जिसके ज्ञानपरिणमन हैं उस गुणका नाम है उपयोग। इसी तरह चार दर्शन होते हैं, जिनमें केवल दर्शन तो अशुद्ध अवस्था है और चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन ये अशुद्ध अवस्था हैं, क्योंकि इनके साथ आवरण लगे हुए हैं। आवरणके क्षयोंके अनुसार चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन होता है, इस तरह ये उपयोगके भेद बताये, यह तो हुआ गुण। अब इसका और विस्तार बनायें तो श्रद्धान, चारित्र, आनन्द आदिक अनेक गुण हैं। मगर जीवके जिस गुणकी पकड़से लक्ष्यसे जीवकी बात चलती है अच्छी-बुरी, मोक्षमार्ग चले, संसारमार्ग चले वे ये दो गुण हैं—चेतन और उपयोग।

पदार्थोंकी द्रव्यपर्यायोंका दिग्दर्शन—अब देखो जीवमें पर्यायें क्या होती हैं ? तो जीव द्रव्यमें चूंकि जीव प्रदेशवान द्रव्य है, सभी द्रव्य प्रदेशवान होते हैं और गुण भी है तो गुणोंके जो परिणमन होंगे उनका नाम तो है गुणपर्याय और जो प्रदेशमें परिणमन होगा उसका नाम है द्रव्यपर्याय। देव, नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य ये द्रव्यपर्याय हैं। इनमें प्रदेशोंके प्रसारकी शकल बन जाती है। जैसा देह पाया उसी आकारके जीवके प्रदेश बने। तो यह कहलायी द्रव्यपर्याय, और जो गुण हैं ज्ञानादिक, उनकी अवस्थाको गुणपर्याय कहते हैं। तो जीवकी पर्याय जाननेमें जो प्रतिपादन हैं वे दो तीन तरहसे पाये जाते हैं, मगर उनमें लक्ष्य एक है, समझ एक है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक पद्धति यह है कि यह जानें कि जीवमें पर्यायें दो तरहकी होती हैं—(१) द्रव्यपर्याय और (२) गुणपर्याय । मायने जीवके प्रदेशका आकार बने, वह तो है द्रव्यपर्याय। अगर केवल जीव-द्रव्यके ही आकार देखे जा रहे और विशुद्ध एक लक्ष्यसे देखे जा रहे तो उसे कहेंगे शुद्ध द्रव्य-पर्याय । वे हैं सिद्ध भगवान । और जीव पुद्गलके मेलसे जो पर्याय बनती है वह है अशुद्ध पर्याय—देव, नारक आदिक । तो चार गतियोंकी जो पर्यायें हैं वे विभाव द्रव्यपर्याय कहलाती हैं, यह द्रव्यपर्यायोंका भेद हुआ । द्रव्यपर्याय वही है, अनेक द्रव्योंके मेलसे जो परिणमन बने, आकार बने उसे कहते हैं द्रव्यपर्याय याने अनेक पदार्थोंमें एक हैं, ऐसी जानकारीका जो विषय-भूत है वह द्रव्यपर्याय है । जैसे पशु, मनुष्य, काठ, इनको देखकर कोई एक ही बात तो समझी जाती है और चेष्टासे जहाँ शरीर जाय वहाँ जीव जाय, जहाँ जीव जाय वहाँ शरीर जाय, तो ऐसे अनेक द्रव्योंमें एकताकी प्रतिपत्तिका जो कारण है, अनेकोंमें एक प्रतिपत्ति बननेमें जो बात बनती है वह है द्रव्यपर्याय । सो अनेक द्रव्योंकी मिलकर जो बात बनती है वह तो है अशुद्ध पर्याय और एक ही द्रव्यका जो आकार रहता है वह है शुद्ध द्रव्यपर्याय । तो ऐसी जो ये द्रव्यपर्यायें हैं, अनेक पदार्थ मिलकर बन जायें तो ऐसे अनेक पदार्थ एक ही जातिके हैं तो उनका नाम है समानजातीय द्रव्यपर्याय । जैसे जितने पुद्गल स्कंध दिखते हैं ये सब समान-जातीय द्रव्यपर्याय हैं याने अचेतन पुद्गल परमाणु मिल-मिलकर यह पिण्ड बना । समान-जातीय द्रव्यपर्याय केवल पुद्गलोंको होगा । और असमानजातीय द्रव्यपर्याय ये जीवके होते हैं, याने जीव और पुद्गल परमाणु शरीरके अणु, कर्मके अणु, इन सबके बन्धनमें जो एक दशा बनती है वह है असमानजातीय द्रव्यपर्याय । तो समानजातीय द्रव्यपर्याय होना और असमान-जातीय द्रव्यपर्याय होना, यह सब अशुद्ध द्रव्यपर्याय कहलाती है, क्योंकि अनेकके मेलसे बना, मायारूप है, बिखर जायगा । स्वभावकी बात नहीं है, इसलिए इसे अशुद्ध पर्याय कहा गया ।

पर्यायोंके यथार्थपरिचयका महत्त्व—पर्यायोंके सही परिचयसे यह बात सामने आ जाती कि यह पुत्र है या घरका कोई है तो यह है क्या ? समानजातीय द्रव्यपर्याय है । हमसे इसका क्या मतलब ? बहुतसे परमाणु मिल गए व यह जीव है, इसका कर्म इसके साथ है, यह असमानजातीय पिण्ड है, मेरेसे उसका कोई ताल्लुक नहीं है । केवल मोहमें कल्पनासे मानते । दूसरेका लड़का हो वह क्या कोई और तरहसे बना हुआ है ? अरे जैसे आपका यह लड़का बना है अनेक द्रव्योंके मेलसे ऐसे ही दुनियाभरके बच्चे, वे भी अनेक द्रव्योंके मेलसे बने हैं । जरा भी फर्क नहीं है कि यह तो आपका कहलाये और यह गैर कहलाये । स्वरूपको ओरसे किसी भी जीवमें, बच्चेमें कोई भेदकी बात न आनी चाहिए । और भेद आता है तो वह सब मोह और रागका परिणाम है । स्व-परका परमें भेद है नहीं, सब जुदे-जुदे हैं । तो समानजातीय अनेक द्रव्यपर्यायोंके जान लेनेसे यह स्पष्ट विचार रहता है कि मेरा क्या मतलब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इससे ? भिन्न वस्तु है, केवल एक गृहस्थीमें गुजारा करनेके लिए ही परस्परमें राग है, पर एकका दूसरा कुछ नहीं है। समानजातीय द्रव्यपर्याय, देखिये ये सब भींत हैं, सोना है, चाँदी है, वैभव है, उसके प्रति एक ममता जगती है, वह वैभव है क्या ? अनेक परमाणुओंका पिण्ड है। जब तक इकट्ठा है, बिखर रहा तो बिखर रहा, वह कोई सारभूत तो नहीं है। मकान हो, जेवर हो, कोई भी वस्तु हो वह सारभूत चीज नहीं है, मायारूप चीज है, अनेक परमाणुओंके मेलसे बना है, सो जब तक मिला हुआ है सो मिला है, बिखर गया तो बिखर गया। इन सब पर्यायोंके बोधसे ममत्वके विनाशका उपाय बनता है। तो ये अनेक द्रव्यपर्याय जीव पुद्गलमें ही सम्भव हैं, अन्य द्रव्यमें नहीं, क्योंकि सम्बन्ध दो प्रकारके होते हैं एक तो संश्लेष सम्बन्ध और एक सम्बन्ध। तो सम्बन्ध तो हमारा सभी द्रव्योंसे है। जहाँ जीव है वहाँ ही पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक सभी पदार्थ हैं। तो सम्बन्ध है ना, मगर इन सम्बन्धोंसे कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सब अपने-अपनेमें अपने अनुसार परिणम रहे हैं। संश्लेश सम्बंधका इससे निकट सम्बंध है, जैसे जीवका कर्म, जीवका शरीर। सो जीवका धर्म अधर्म, आकाश, काल किसीके साथ भी संश्लेष सम्बन्ध नहीं है और द्रव्यपर्याय बनती है तो संश्लेष सम्बन्धमें बनती है, केवल क्षेत्रावगाहके सम्बन्धसे भी नहीं बनती। इस कारण धर्मादिक द्रव्योंमें द्रव्यपर्याय नहीं होती। यह तो द्रव्यपर्यायोंकी चर्चा हुई।

जीवके गुणपर्यायोंका दिग्दर्शन और उसके परिचयका लाभ—अब गुणपर्याय देखिये तो गुणपर्याय समझनेकी कुञ्जी यह है कि एक ही द्रव्यका परिणमन जहाँ देखा जा रहा है वह गुणपर्याय है। भले ही कषायादिक भी तो गुणपर्याय हैं और वे कर्म-अनुभावका निमित्त पाकर होते हैं, सो भले ही कितने ही निमित्त हों, पर परिणमा तो केवल जीव ही कषायरूप। इस कारणसे वह गुणपर्याय कहलाता है। एक ही द्रव्यमें जो पर्याय बनती है दूसरे द्रव्यकी मिलकर नहीं बनती परिणति, वह सब गुण पर्याय कहलाती है या यों कहो कि अन्वयरूप जो परिणति हैं, उनमें जो एकत्वको किए हुए हो वह गुण है और उसकी ये पर्यायें गुणपर्याय कहलाती हैं। जैसे पुद्गलमें देखो किसी भी फलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श बदलते भी रहते हैं तो यह परिणमन जीवमें देखो तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञानादिकके परिणमन चलते हैं। ये गुण पर्यायें कहलाती हैं। अब गुणपर्यायोंको दो रूपमें देखिये—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभाव-गुणपर्याय। और एक होता है सूक्ष्म गुणपर्याय तो सूक्ष्म गुणपर्याय तो अवक्तव्य है जिसे शुद्ध अर्थपर्याय कहते हैं। मायने एक परिणमनके बाद उसमें जो दूसरा परिणमन आता है तो वह षड्गुण हानि वृद्धिरूप लिए आता है और यह अवक्तव्य है, आगमगम्य है। सूक्ष्म बताया गया और अन्य गुणपर्याय दो प्रकारसे हैं—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभावगुणपर्याय। केवलज्ञानादिक स्वभावगुणपर्याय हैं और लेश्या आदिक विभावगुणपर्याय हैं और इन पर्यायों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का बहुत अच्छा व्यापक प्रचार करना है तो यों करना चाहिए कि पदार्थमें दो प्रकारकी पर्यायें हैं—(१) व्यञ्जनपर्याय और (२) अर्थपर्याय। अर्थपर्याय तो सूक्ष्म है। षड्गुण हानि वृद्धिरूप अवक्तव्य जो एक आधार मात्र है, न हो षड्गुण हानि वृद्धिरूप परिणति तो स्थूल परिणति कहाँसे हो ? इसलिए स्थूल परिणमनोंका वह सूक्ष्म षड्गुण हानि वृद्धि एक आधार है और सर्वद्रव्योंमें साधारण है। और व्यञ्जनपर्यायके दो भेद हैं—(१) द्रव्यव्यञ्जनपर्याय और (२) गुणव्यञ्जनपर्याय। द्रव्यव्यञ्जनपर्याय तो आकारका नाम है। जो जो कुछ आकार की पर्याय कही थी वह सब द्रव्यव्यञ्जनपर्यायमें आता है और आकारको छोड़कर शेष जो पर्यायें हैं वे सब गुणपर्याय कहलाती हैं। तो जीवमें गुणपर्याय जो कुछ भी हो रही है उसका सम्बन्ध जीवसे है, अन्यसे नहीं है। तो एक पदार्थका दूसरा पदार्थ कुछ भी नहीं है—यह बात समझनेके लिए प्रत्येक पदार्थका गुण और पर्याय ठीक समझना चाहिए। जिससे यह बोध हो कि किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थके साथ न तो गुणका सम्बन्ध है, न पर्यायका सम्बन्ध है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमें न गुणको रखता है, न पर्यायको रखता है, ऐसी दृष्टि स्पष्ट हो जाती है तो वहाँ ममताको अवकाश नहीं रहता। ममत्व न रहे, इसीमें जीवका कल्याण है।

मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ॥१७॥

पर्यायरूपसे उत्पाद व्यय होनेपर भी जीवत्वका अनुत्पाद व अव्यय—पूर्वोक्त गाथामें जीवकी गुणपर्यायोंका वर्णन था। अब पर्यायोंका उत्पादव्यय होता है और गुण ध्रुव रहता है। उसी विषयसे सम्बंधित बात इस गाथामें कही गई है कि यह जीव पर्याय रूपसे नष्ट होता है और नवीन पर्याय रूपसे उत्पन्न होता है। फिर भी जीवरूपसे न नष्ट होता है, न उत्पन्न होता है, वह तो शाश्वत अनादि अनंत है। पर्यायोंकी जो संतति चलती है धारा, एक पर्यायके बाद दूसरी पर्याय होना और इस तरह पर्याय होते चले जाना, इस पर्याय संततिका कभी विच्छेद नहीं होता, क्योंकि द्रव्यका स्वरूप ही यह है कि वह प्रतिसमय परिणमन रहे और एक परिणमनसे दूसरा परिणमन होनेमें अगुरुलघुत्व गुणकी हानि वृद्धि रूप परिणाम होता है। तो प्रतिसमय जो अगुरुलघुत्व गुणकी हानि वृद्धि चलती रहती है, उससे रचा गया जो स्वभाव पर्याय है उसकी संततिका विच्छेद नहीं होता। सो यह तो वस्तुका स्वरूप है कि इसमें पर्याय संतति चलती ही रहे। अब उनकी उपाधि साथमें है तो सोपाधि पर्याय बन उठती है। तो सोपाधि पर्याय जैसे मनुष्य है, मनुष्यत्वके रूपसे यह जीव विनष्ट हो जाता है और सोपाधि पर्याय ही एक नवीन बनती है तो उस नवीन पर्याय रूपसे उत्पन्न हो जाता है, पर पर्याय रूपमें मनुष्यत्वादि रूपमें नष्ट हो गया, इससे कहीं जीवत्व नष्ट नहीं हो जाता या देवादिक रूपसे उत्पन्न हो गया तो इससे कहीं जीव ही नहीं उत्पन्न हुआ, वह तो अनादिसे ही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस तरह जीवमें उत्पादव्ययध्रौव्य यह द्रव्यपर्यायोंमें और गुणपर्यायोंमें घटित होता जा रहा है। सो इस जीवका विनाश उत्पाद पर्यायार्थिकनयसे है। द्रव्यार्थिकनयसे न उत्पाद है, न विनाश है। पर्यायार्थिकनयसे उत्पाद व्यय चल रहा है, तिसपर भी द्रव्यार्थिकनयसे देखो, पर उत्पाद व्यय नहीं है, किन्तु वह तो वही ही शाश्वत है। यहाँ दोनों नयोंकी दृष्टियोंका विषय बतानेसे नित्य एकान्त और क्षणिक एकान्तका निराकरण स्वयमेव हो जाता है। मनुष्य, देव आदिक रूपसे उत्पन्न हुआ, पूर्वपर्यायसे नष्ट हुआ तो यह ही यह सिद्ध करता है कि द्रव्य सर्वथा याने एकान्त नित्य नहीं है और जीव, जीवत्व वही रहता है। इससे यह सिद्ध होता कि क्षणिक एकान्त नहीं है। तो यह द्रव्यत्वके नातेसे व्यवस्था है, ऐसी ही व्यवस्था समस्त द्रव्योंकी है कि वह नवीन पर्यायसे उत्पन्न हुआ और पूर्वपर्यायसे नष्ट हुआ और उसमें संतति का अविच्छेद नहीं है, उसका आधारभूत द्रव्य सदा रहता है। यह ही बात जीवमें भी समझना है कि वह मनुष्यादिक रूपसे नष्ट हुआ, मगर जीवादिकसे नष्ट नहीं हुआ।

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ ॥१८॥

जीव वस्तुकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताका एक प्रकाश—द्रव्य और जीव उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त हैं, इसीके समर्थनमें यह गाथा बतायी जा रही है। जो द्रव्य पूर्वपर्यायके वियोगसे एक अवस्था बनाता है और उत्तरपर्यायके संयोगसे अवस्था बनती है तो दोनों ही अवस्थाओं को यह आत्मा अपने रूप करता हुआ तो नष्ट और उत्पन्न होता दिखाई देता है, पर दोनों अवस्थाओंमें रहने वाला जो एक तत्त्व है जीवत्व, वह न उत्पन्न होता, न नष्ट होता है। अतएव पर्यायोंके साथ इस जीवद्रव्यका एकपना हो रहा है। सो कह लीजिए कि जन्म है और मरण है, पर जीवद्रव्य तो वही एक है। उसका न जन्म है, न मरण। जैसे कोई मनुष्य पुराने घरको त्यागकर नये घरमें रहने लगे तो उसका मरण नहीं कहा जाता। किसीका भी मरण नहीं है। घर है, अपनेमें है। स्थान है अपनेमें है। यहाँ एक शंका की जा सकती है कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों एक साथ कैसे एक पदार्थमें रहते हैं क्योंकि उत्पाद व्यय तो अनित्यपनेका धर्म है और ध्रौव्य होना नित्यपनेका धर्म है। तो अगर नित्य है तो अनित्य कैसे और अनित्य है तो नित्य कैसे? जैसे ठंढ और गर्मी इन दोनोंका विरोध है, तो जहाँ ठंढ है वहाँ गर्मी कैसे, जहाँ गर्मी है वहाँ ठंढ कैसे? इस शंकाका समाधान यह है कि कोई भी पदार्थ एकान्तसे न नित्य है और एकान्तसे न अनित्य है। जो एकान्ततः नित्य अथवा अनित्य माने वहाँ ही दोष सम्भव है, किन्तु यहाँ नित्यपना अनित्यपना अपेक्षासे है याने मूल तत्त्वकी दृष्टि से तो पदार्थ नित्य है और अवस्थाकी दृष्टिसे पदार्थ अनित्य है। तो जहाँ अपेक्षासे नित्य और अनित्य माना जाय वहाँ यह दोष सम्भव नहीं है। निज अपेक्षासे नित्य माना उसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपेक्षासे अनित्य कहा जाता तो अवश्य ही विरोधकी बात थी, या जिस अपेक्षासे नित्य माना उसी अपेक्षासे अनित्य मान ले तो विरोध है, परन्तु द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यपनेकी अपेक्षा तो नित्यपना है और पर्यायार्थिकनयसे पर्यायकी अपेक्षासे पदार्थमें अनित्यपना है और वे दोनों एक साथ घटित होते हैं। तब मूलमें यह बात युक्त है कि द्रव्य और पर्याय दोनों रूप ही सत् होता है। यदि कोई कुछ है तो वह सदाकाल रहेगा और उसकी अवस्था प्रतिसमय बनती रहेगी। द्रव्य और पर्याय ये दो तत्त्व अनिवार्य हैं पदार्थमें। तो जब द्रव्य और पर्यायका विरोध नहीं है तो नित्य अनित्यका भी विरोध उसमें सम्भव नहीं है, क्योंकि पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्यरहित पर्याय नहीं होता। याने है क्या कोई वस्तु ऐसी कि जिसकी अवस्था कुछ होती ही नहीं और वह सत् हो? या है कोई क्या ऐसी वस्तु कि जिसमें पहले और बादकी अवस्थायें न पायी जाती हों और सत् हो। तो पर्यायमात्र भी कुछ नहीं और जो द्रव्यरूप हो ही नहीं, केवल एक पर्यायरूप ही हो, ऐसा भी कुछ है नहीं, क्योंकि जो किसी रूपमें भी पहले नहीं है, उसका कोई रूप नहीं बनाया जा सकता। असत्का उत्पाद नहीं और सत्का विनाश नहीं। इस कारण द्रव्यार्थिकनयको जब मुख्य करके बोलते हैं तो जीव नित्य प्रतीत होता है और जब पर्यायार्थिकनयको मुख्य करके कहते हैं तो पदार्थ अनित्य प्रतीत होता है। पदार्थमें प्रति समय नवीन नवीन पर्यायें होती रहती हैं। बस नवीन पर्याय हुई उस ही का अर्थ यह है कि पुरानी पर्याय विलीन हो जाती है। इस तरह वस्तु कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य स्वरूप है।

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो ॥१९॥

उत्पाद व्यय होनेपर भी जीववस्तुकी शाश्वत एकरूपता—जीव सत् है उसका कभी विनाश नहीं होता, और जो पर्यायें नजर आती हैं, पर्यायोंरूपसे जीवका होना देखा जाता है तो उसमें कहीं असत् पदार्थका उत्पाद नहीं होता। यदि वास्तवमें जीव मरता हो तो यह कहा जाय कि सत्का नाश हो गया या जीव जन्म लेता हो याने पहले कुछ नहीं है और जब जीव पदार्थ बन गया तो कह सकते कि असत्का उत्पाद हो गया, लेकिन स्थूलदृष्टिसे भी देखो तो जो जीव मरता है वही तो जन्म लेता है। विनाश कैसे होगा? और जो जीव जन्म लेता है वही तो मरता है, तो इसमें सत्का विनाश और उत्पाद नहीं है, किन्तु उस ही सत् की ये अवस्थायें बतायी जाती हैं, और चूंकि अवस्था होनेका ही नाम उत्पाद व्यय है, उस ही समयमें नवीन पर्यायकी दृष्टिसे उत्पाद है और पुरानी पर्यायके रूपसे विनाश है। जीवका न उत्पाद है, जीवका न विनाश है, ऐसी बात समझनेसे यह एक साहस जगता है कि मैं जीव तो सदा रहने वाला पदार्थ हूं। मेरा न नाश है, न जन्म है, और पर्याय रूपसे मैं उत्पन्न और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नष्ट होता हूं। तो जो अब तक अज्ञानकी पर्याय मिलती आयी उसका विनाश हो सकता है और जो शान्ति, निर्मलता, पवित्रता अब तक नहीं उत्पन्न हुई है उसकी उत्पत्ति हो सकती है, ऐसा आत्मकल्याणके सम्मुख जीव अपने आपको हितके मार्गमें प्रेरित कर लेता है। जीवमें मनुष्यपना और देवपना आदिक क्यों होते हैं ? तो यह जीव जैसे भाव करता है उस भावके अनुसार कर्म बन जाते हैं। कर्म यद्यपि अपने आपमें ही हैं और वे अपनी ही सत्ता बनाते हैं तो उन कर्मोंका जब उदय होता तो जैसे-जैसे गति नामकर्मका उदय हुआ वैसे ही उनको फल मिलने लगता है। तो देव और मनुष्य पर्यायोंको रचने वाला देवगति नामकर्म, मनुष्यगति नामकर्म होता है और वह जब तक उदयमें रहता है तब तक उस भवमें मनुष्य आयु समाप्त होनेपर वह उस भवमें नहीं रहता। तो जिनको अपने इस शरीरमें अज्ञान नहीं है, भेद प्रकाश है तो वह अन्त: अपनेको पर्यायरूप नहीं अनुभव करते, इसीलिए उनके आगामी शरीर परम्परा मिलें, ऐसे कर्म नहीं बँधते। जीव तो अमर्यादित है, तीनों काल रहने वाला है। एक जीवद्रव्य है और उसमें पर्याय और गुण दोनों भाव बने रहते हैं। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तो इसकी सत्ता है, दूसरेके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे इसकी सत्ता नहीं है। तो इन पर्यायोंमें अटककर, इन पर्यायोंमें व्यापकर रहने वाला जो एक त्रैकालिक भाव है, चैतन्यस्वरूप है उसमें ही यह मैं हूं ऐसा अनुभव हो तो उसका संसारमार्ग छूटता है। अपना सारा भविष्य अपने इस ही निर्णयपर आधारित है कि मैं क्या हूं, इसका जो उत्तर होगा उस ही रूप इसका परिणाम बनेगा। तो अपने चैतन्यस्वरूपको भूलकर जो शरीरमें 'यह मैं हूं,' ऐसा अनुभव बनता, यह घोर अंधकार है और इस अंधेरेमें रहने वाला जीव अपने आपको विपत्तिसे नहीं बचा सकता। ऐसा यह जीव जीवद्रव्यसे शाश्वत अपने आपमें ही विहार करने वाला है। जो इस शाश्वत स्वरूपकी ओर अपनी धुन लगाये है तो वह नियमत: संसारसंकटोंसे छूटकर उत्तम निर्वाण सुखमें पहुंच सकता है। इस तरह इस जीवद्रव्यका शाश्वतपना इन गाथाओंमें बताया गया है—पर्यायरूपसे उत्पन्न विनष्ट होकर यह जीव वस्तु न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, किन्तु वह शाश्वत एकरूप है।

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूपपुव्वो हवदि सिद्धो ॥२०॥

ज्ञानावरणादिक कर्मके क्षयसे जीवकी अभूतपूर्व सिद्धदशा—ज्ञानावरणादिक कर्मके द्वारा यह खूब अवरुद्ध हुआ है, उन कर्मोंका अभाव करके जीव सिद्ध बनता है जो अभूतपूर्व बात है। सिद्ध होना अभूतपूर्व बात है याने जो कभी हुआ नहीं और हो गया और उस अभूतपूर्वकी बहुत बड़ी महिमा है कि हो जानेके बाद फिर कभी वह मिटे नहीं। तो यहाँ यह संसारी जीव अज्ञानभारसे लदा है। इसका परिचय ऐसे दृष्टान्तसे करिये कि जैसे कोई बाँस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसी ढंगसे रंगा है जहाँ चित्र-विचित्र नाना फोटो भी रचे गए हैं, कुछ भाग अचित्रित है। आवरणसे अब वह समूचा ढका है, तो जितने अंशमें उसका आवरण दूर हुआ, उससे कुछ जाना तो सही कि आत्मस्वभाव दृष्टिसे निर्मल है, लेकिन जो थोड़ा बहुत चित्र-विचित्र रंग देखा तो वहाँ यह बोध होता है कि चाहे यह रंगा हुआ हिस्सा हो, चाहे बिना रंगा, दोनोंमें वही एक बाँस है। इसी तरह जीवकी पर्याय मलिन चल रही है, मगर यह मलिनता तो दम भरके नहीं है, क्योंकि यह केवल एकत्वगत जीवके मलिनता नहीं बनती। बाहरी पदार्थोंके अनुकूल संयोग हो तो इनकी ऐसी स्थितियाँ बना करती हैं। तो उस समय ज्ञानावरणादिक अनुभागका उदय हो तो भावकर्म स्वयं हो जाता है। उन कर्मोंमें बंधसे पहले ही ८ प्रकारका भेद पड़ा हुआ था योग्यतारूपमें। तब ही तो जब जीव कषाय करता है तो कहते हैं कि कितना अधिक अनुभाग बँधा, किस किसका कम, सो बँधते समय उन कर्मोंमें यह भेद पड़ जाता है। बस जैसा उन कर्मोंका उदय है वैसा ही तो जीवका तिरस्कार है। इन आपत्तियोंको जो मेटे वह ही अभूतपूर्व सिद्ध होता है। भीतरमें एक जीवद्रव्यके स्वरूपको निरखकर चिन्तन किया जाय तो चूँकि वह स्वयंका ही रूप है और स्वयं ही चिन्तन करने वाला है और स्वयं उस ही परिणति द्वारा चिन्तन होता है तो वहाँ इस जीवद्रव्यको अपने लिए सर्वस्व एकाकी दृष्टिगत होगा। उस एक समयसार कारणपरमात्मतत्त्व इसका आलंबन होनेसे पूर्व बँधे हुए कर्म खिरते हैं और नवीन कर्म जो आ सकते थे उन सब कर्मोंका बंध रुक जाता है। तो यहाँ त्रैकालिक जीवद्रव्यको अपनी दृष्टिमें रखनेसे कल्याणका मार्ग चलता है।

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो ॥२१॥

जीवके भावभाव, अभावाभाव, भावाभाव, अभावभाव आदिका एक संक्षिप्त दिग्दर्शन—यहाँ तक द्रव्यका सामान्य वर्णन चल रहा है। उसमें जीवद्रव्यके बारेमें यह सब घटित करो। अभिप्रायसे यहाँ उसका तथ्य बताया जा रहा। इस जीवद्रव्यका भावका अभाव, अभावका भाव बना, भावका भाव, अभावका अभाव रहा—ये चार बातें सभी द्रव्योंमें हैं, सो जीवद्रव्यमें भी हैं, सो किस तरहसे? चूँकि जीवद्रव्य नित्य है और वह जीवरूपसे होता रहता है, इस कारण भाव ही भाव, सद्भाव ही सद्भाव रहा और उसी जीवका देव, मनुष्य आदिक पर्याय रूपसे उत्पाद होता हो और उस ही जीवका मनुष्यादिक पर्याय रूपसे व्यय होता हो तो वहाँ जीवके भावका अभाव व अभावका भाव होगा। जीव क्या-क्या करता है? भावका भाव करता है, मायने जीवत्वभाव है और उस जीवत्वभावको बनाये रहता है। अभावका करने वाला है याने पररूपसे जीव असत् है, सो ऐसी बात वह निरन्तर बनाये हुए है। तीनकालमें भी कोई पदार्थ कितना ही छोटा हो, कितना ही बड़ा हो, वह अपना अस्तित्व नहीं मिटानेका। तो इस तरह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह बात निर्दोष हुई कि प्रत्येक वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक होता क्या पूरे गुणकी भी कथा छोड़ दें तो वह द्रव्यमें ही अन्तर्भूत हो जाता है, मगर द्रव्य और पर्याय ये दो बातें प्रत्येक वस्तुमें माननी पड़ती हैं। है ही ऐसा। तो जितना यह व्याख्यान चल रहा है वह द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय—इन दोनोंमें मुख्य और गौणकी विधिसे चल रहा है। सो जब इस जीवको पर्यायकी गौणतासे बताया जाता है तो सहज ही वह बात सिद्ध हुई कि उसमें द्रव्यकी मुख्यता विवक्षित है। तो इस विवक्षामें न जीवका उत्पाद है और न जीवका विनाश है। जब पर्यायकी मुख्यतासे जीवका वर्णन किया जाता है तो नवीन पर्यायको उत्पन्न किया, यह बात आती है। तो पर्यायदृष्टिमें तो उत्पाद व्यय है, द्रव्यदृष्टिसे उत्पाद व्यय नहीं है। यह सब एक स्याद्वादमें प्रसिद्ध है कि जो वस्तुका पूर्णरूपसे परिचय करा दिया जाता है और उन सब धर्मोंके परिज्ञान करनेमें कहीं भी कुछ विरोध नहीं आता है।

[गाथा २६ तकके प्रवचन सहारनपुरमें प्रेस वालेने गुमा दिये हैं।]

॥ पंचास्तिकाय प्रवचन प्रथम भाग समाप्त ॥

Version 1